1998 से निरंतर प्रकाशित

ISSN 2581-446X
वर्ष-9, अंक-5, अप्रैल-मई 2026, ₹100/-

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

RNI. No. MPHIN/2017/73838

कला और कलाकारों को समर्पित
राष्ट्रीय पत्रिका का 29 वाँ वर्ष
140 वाँ अंक

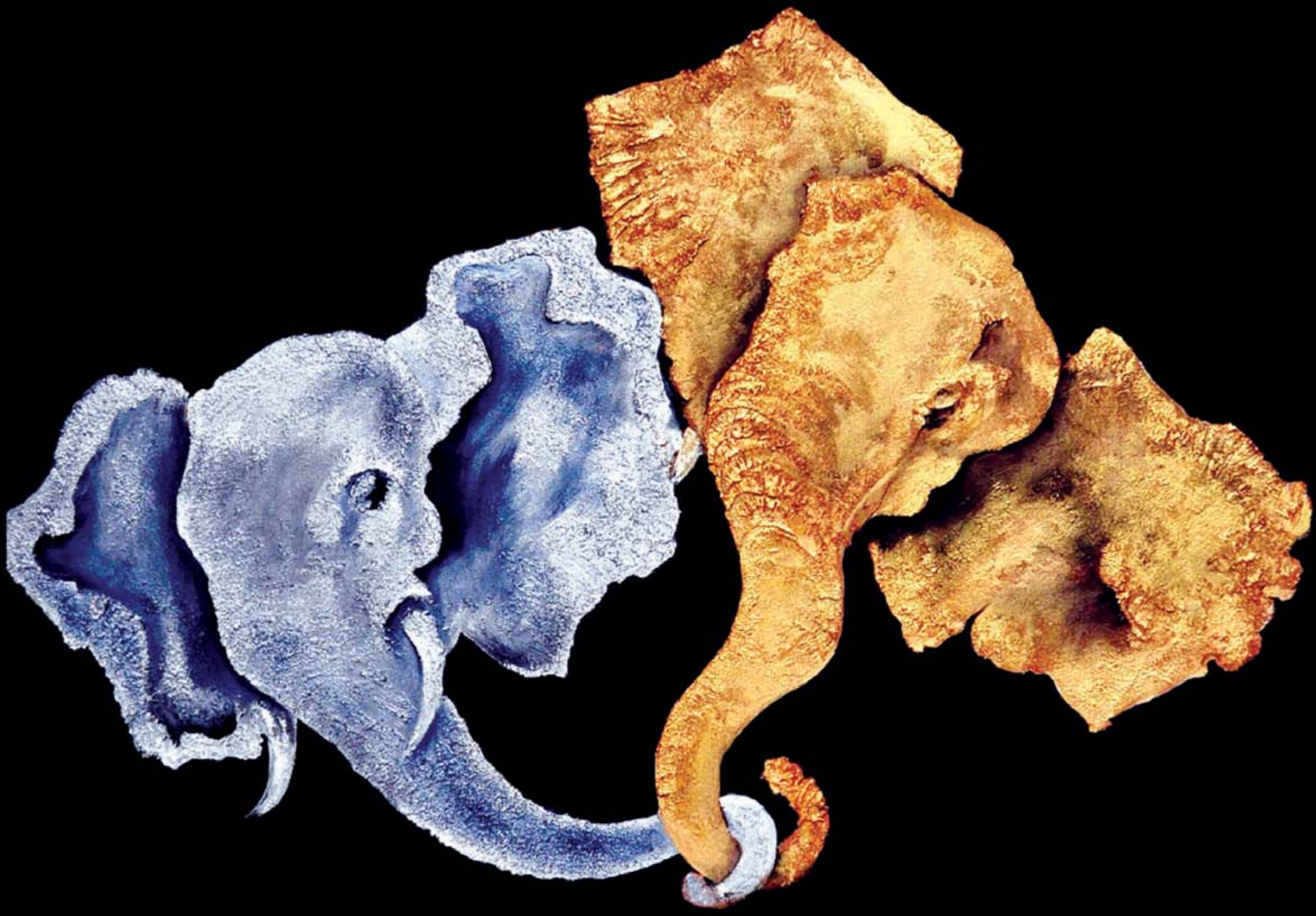

रूपंकर
समकालीन दृश्यकला विशेषांक
(भाग-2)

अतिथि संपादक : चेतन औदिच्य

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

असीम संगीत-आकाश और नये युग की 'आशा'

स्वर-साम्राज्ञी और भारतीय फ़िल्म - संगीत का पर्याय पद्मविभूषण आशा भोसले जी का जाना मानो संगीत-जगत के एक युग का अंत है। उनका व्यक्तित्व और उनकी साधना भारतीय संगीत के आकाश में उस इंद्रधनुष की भाँति है, जिसकी आभा कभी फ़ीकी नहीं पड़ती। उनकी आवाज़ केवल सुरों का मेल ही नहीं बल्कि जीवन की संवेदनाओं को जीवन्त करने वाला एक उत्सव है।

आशा जी की गायकी में निहित मादकता, खनक और चुलबुलापन उनके उस जुझारू कलाकार की भी पहचान है, जिसने हर चुनौती को नए सुर में ढालकर नई रोशनी दी। जहाँ उन्होंने पिता पंडित दीनानाथ मंगेशकर की शास्त्रीय विरासत को सहेजा और बड़ी बहन लता जी की गरिमा का सम्मान किया, वहीं अपनी एक ऐसी मौलिक राह भी बनाई, जो नवाचार और रचनात्मकता का अनूठा संगम है।

उनकी गायकी की सबसे बड़ी विशेषता उसका लचीलापन है। जब वे गाती हैं, तो शब्द केवल सुनाई नहीं देते, बल्कि जिए जाते हैं। जहाँ 'इन आँखों की मस्ती के मस्ताने हज़ारों हैं ' जैसी गज़लों में उनकी आवाज़ की गहराई रूह को सुकून देती है, वहीं 'पिया तू अब तो आजा' या 'दम मारो दम' जैसे गीतों में उनकी ऊर्जा विस्मित कर देती है। उनकी आवाज़ शास्त्रीय संगीत की बारीकियों और पाश्चात्य धुनों की तीव्र लय, दोनों को समान सहजता से आत्मसात् करती है। गानों के बीच उनकी छोटी सी हंसी, हल्की सी आह, हिचकी या शब्दों के बीच का वह सूक्ष्म ठहराव उनकी विशिष्ट पहचान है, जिसने उन्हें एक ऐसी गायिका बनाया जिसे केवल सुना ही नहीं बल्कि महसूस भी किया जा सकता है।

एक जुझारू व्यक्तित्व की धनी आशा जी ने जीवन के संघर्षों और त्रासदियों को कभी अपनी मुस्कुराहट और कला पर हावी नहीं होने दिया। संगीत के प्रति उनका समर्पण ऐसा था कि उन्होंने अपनी सधी हुई आवाज़ से कठिन से कठिन स्वर-सन्निवेशों, खटकों, मुरकियों और तानों को अचूक शुद्धता एवं दक्षता के साथ प्रस्तुत किया। ओ.पी. नैय्यर की लयकारी हो या आर.डी. बर्मन की आधुनिकता,आशा जी ने हर साँचे में ख़ुद को इस तरह ढाला कि वह संगीत उन्हीं के लिए रचा हुआ प्रतीत होता है।

20 से अधिक भाषाओं में लगभग 12,000 गानों को स्वर देकर उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह विश्व संगीत के इतिहास में अतुलनीय है। आशा भोसले जी मात्र एक पार्श्व गायिका ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति का वह अमर स्वर हैं, जो सदियों तक संगीत-साधकों का मार्ग प्रशस्त करता हुआ नयी संभावनाओं को जगाता रहेगा, "जो ख़तम हो किसी जगह ये ऐसा सिलसिला नहीं"... **(चन्द्र मोहन)**

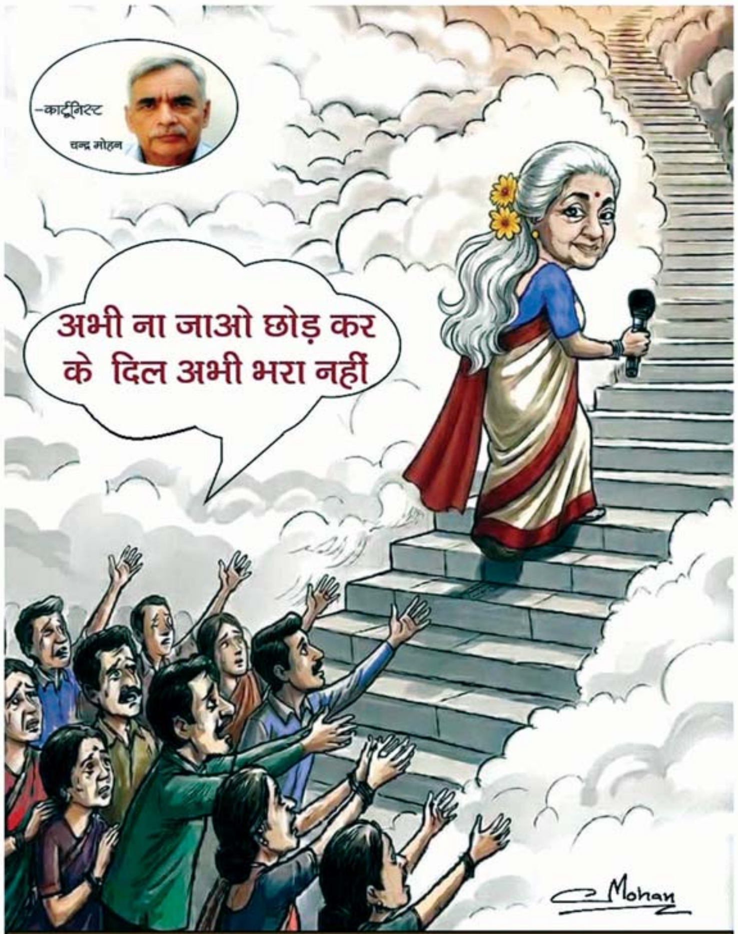

कला समय की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

https://www.kalasamaymagazine.com

https://www.notnul.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+09=29) पूर्णांक-140,

वर्ष-9, अंक-5, अप्रैल-मई 2026, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❉ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❉

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. नारायण व्यास
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव
❉
लोगो
हरचंदन सिंह भट्टी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
❉
कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)
❉
परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
❉
सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
❉
वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखाचित्र: मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
❉
सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
❉
सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी
❉
उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति
❉
नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक
❉
संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
❉
अरुण तिवारी
समसामयिक
❉
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन (10 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

रूपंकर समकालीन दृश्यकला विशेषांक (भाग-2) के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

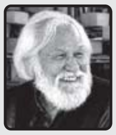

डॉ. कपिल तिवारी (पद्म श्री सम्मान से विभूषित) | विजय शर्मा (पद्मश्री सम्मान से विभूषित) | प्रो. श्याम शर्मा (पद्मश्री सम्मान से विभूषित) | डॉ. ज्योतिष जोशी

हेमंत शेष | अमित कल्ला | अवधेश बाजपेयी | सरोज कुमार सिंह

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र | प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता | पं. कैलाशचंद्र घनश्याम पाण्डेय | डॉ. प्रेम भारती

जय त्रिपाठी | विनय अंबर | डॉ. पूरन सहगल | चन्द्र मोहन

त्रिवेणी प्रसाद तिवारी | डॉ. राजेन्द्र प्रसाद | सतीश व्यास 'आस' | डॉ. किरण मिश्रा

प्रो. डॉ. ऋतु जौहरी | डॉ. मुक्ता मणि मिश्रा | डॉ. रमेशचंद्र मीणा | डॉ. राजकुमार पांडेय

भूपेंद्र कुमार अस्थाना | डॉ. मनीषा आमेटा | डॉ. गगन बिहारी दाधीच

ब्रज रतन जोशी | प्रो. रतन चौहान | विजय कांत आर्य

इस प्रतिष्ठा विशेषांक के अतिथि संपादक

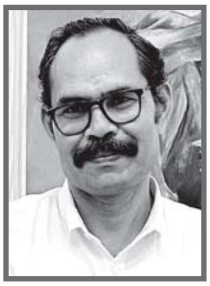

चेतन औदिच्य
अतिथि संपादक
(वरिष्ठ चित्रकार, साहित्यकार, स्तंम्भकार)
मो. 9602015389
Email: chetanaudichya3jan@gmail.com

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से...**
  आँखों की भी आँख है/ चेतन औदिच्य 5
- **संपादकीय**
  एक साधक चित्रकार का चित्र-संसार! 7
- **कला चिंतन**
  भारतीय परंपरा में सौंदर्यबोध और कलादृष्टि/ डॉ. ज्योतिष जोशी 9
  भारतीय लघु चित्रकला : परंपरा, उत्कर्ष और समकालीन../ विजय शर्मा 15
  छपाई कला से छापाकला तक / प्रो. श्याम शर्मा 17
  अवस्थित : गति, चित्त और भारतीय अमूर्तन का .../ अमित कल्ला 19
  यथार्थ की अद्भुत कला: विजेंद्र शर्मा की तूलिका का जादू/ चन्द्र मोहन 22
- **कला संवाद**
  कलाकार की अनुभूति एवं वैयक्तिक संवेदनाओं के.../ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 24
  आँखों को तैयार करना है.../ सरोज कुमार सिंह 27
- **कला-मत**
  बेसब्र समय के सूत्र :अवधेश बाजपेयी / अवधेश बाजपेयी 32
  अर्थ खोजती समकालीन कला / जय त्रिपाठी 36
  समकालीन कला की अर्थवत्ता और आधुनिक कला / विनय अंबर 38
- **कला साधक**
  भारतीय कला ग्रंथों के सारस्वत साधक ... / त्रिवेणी प्रसाद तिवारी 42
  कलासाधक गोपाल आचार्य: एक चलता... / सतीश व्यास 'आस' 44
- **कला लेख**
  प्राणमयी विद्युत धारा के चितेरे : नंदलाल वसु / डॉ. किरण मिश्रा 47
  नीले वर्ण की संकल्पनाः विचार एवं रूपाकार / प्रो. डॉ. ऋतु जौहरी 49
  कला का मनोविज्ञान / डॉ. मुक्ता मणि मिश्रा 52
  भारतीय समसामयिक चाक्षुष कला की अंतर्दृष्टि:... / डॉ. रमेशचंद्र मीणा 55
  अभाव से अभिव्यक्ति तक : मोहम्मद मोईन के .../ डॉ. राजकुमार पांडेय 61
  प्रकृति की गोद में नारी सौंदर्य : मौन में रची .../ भूपेंद्र कुमार अस्थाना 66
  भारतीय और पाश्चात्य कला : संवाद, विभेद .../ डॉ. मनीषा आमेटा 68
  पाबू जी की पड़ का अद्भुत कथा-चित्रांकन एवं ..../ डॉ. पूरन सहगल 69
- **कला भाव**
  संवाद में संवाद / डॉ. गगन बिहारी दाधीच 71
  ब्रज रतन जोशी की एक कलाकार-कवि पर आत्मीय ... / ब्रज रतन जोशी 73
- **कला कविता**
  हेमंत शेष की कविताएं / हेमंत शेष 75
  प्रो. रतन चौहान की कविता / प्रो. रतन चौहान 76
  विजय कांत आर्य की कविताएं / विजय कांत आर्य 78
  डॉ. किरण मिश्रा की पञ्च तत्व कविताएं / डॉ. किरण मिश्रा 79
- **अद्वैत -विर्मश**
  तुलसी की विनय पत्रिका का अद्वैत दर्शन / आचार्य प्रभुदयाल मिश्र 83
- **प्रसंगवश-उत्सव**
  हनुमान शिल्प / पं. कैलाशचंद्र घनश्याम पाण्डेय 89
- **पुनर्पाठ-संस्कृति**
  प्रकृति के तीन जीवन/डॉ. कपिल तिवारी 92
- **पुस्तक : समीक्षा**
  ओरछा की महिमा अयोध्या के समान / प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता 93
  मानस में सनातन संस्कृति के सूत्र / डॉ. प्रेम भारती 95
  बूंद में समुद्र / आचार्य प्रभुदयाल मिश्र 96
- **आयोजन**
  आचार्य शंकर का दर्शन भारतीय संस्कृति धर्म और आध्यात्मिक... 97
- **समवेत** **102-106**

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - चेतन औदिच्य
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

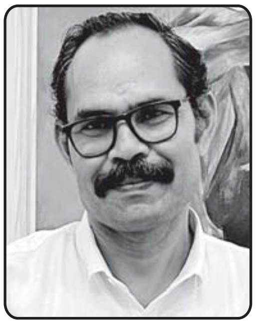

आँखों की भी आँख है

"देखना" केवल आँखों की क्रिया नहीं है , बल्कि भारतीय चिंतनधारा में यह अनुभूति, चेतना और आत्मा का समवेत उद्यम है। जिसकी प्रज्ञा-दृष्टि जितनी मात्रा में त्रिगुणों से निगूढ होगी, उसकी दृष्टि उतनी ही मात्रा में दृश्य के तल पर पंहुचेगी। दृश्य को समझेगी। कोई दृष्टा या देखने वाला, दिखाई दे रहे दृश्य के, मात्र चक्षु-अनुभव तक पहुंचेगा, कोई चेतना के तल पर , और कोई आत्म-प्रज्ञा स्थिति तक पँहुचेगा।

पश्चिमी कला चिंतकों ने भी देखने के प्रत्यय में अनुभव और चेतना को स्वीकार किया है। किंतु उनकी समस्त आलोचना शरीर की चेतना पर जाकर रुक जाती है। उनका अनुभव शरीर-चेतना का अनुभव है। जबकि भारतीय दृष्टि में यह चेतना आत्मबोध अथवा साक्षात्कार (आँखों के सामने उपस्थित वास्तविक आकार) की चेतना है। विश्व की पहली कविता की, पहली पंक्ति, का पहला ही शब्द— अग्निमीळे पुरोहितम् — इस ओर इशारा कर देता है कि कलाकार के भीतर का अग्नि-तत्व (चेतना) ही उसकी दृष्टि को जीवित करता है। कलाकार द्वारा देखने में उसकी चेतना केवल शरीर की चेतना नहीं है, उससे कहीं आगे की चेतना है। हम केन उपनिषद के इस सुंदर सूत्र से समझ सकते हैं कि 'देखना' कितना विराट, कितना मनोरम और कितना अबूझ है—"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्"--- जिसे मन नहीं देख सकता, वही चेतना मन को देखने की शक्ति देती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि देखने का मूल स्रोत इन्द्रिय नहीं, बल्कि चेतना है, और यह केवल शरीर की नहीं है। यही प्रस्थानबिंदु भारतीय कला में देखने के वैराट्य और औदात्य को प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य कलादृष्टि को अभी यहाँ तक पंहुचने में समय लगेगा।

भारतीय कला जगत में कला आलोचना के नाम पर दो-चार विदेशी और दो-चार भारतीय नाम गिना कर इतिश्री कर ली जाती है। जबकि यहां के कला ऋषियों ने अपने तत्वदर्शन में कलाकारों के लिए गहरे विमर्श रख छोड़े हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् की यह पंक्ति देखिए —"द्रष्टा दृश्यम् न पश्यति, पश्यन्नेव न पश्यति"--- देखने वाला वास्तव में ख़ुद को नहीं देखता, फिर भी वही देख रहा है। इसे सरल किया जाए तो किसी कलापूर्ण स्थिति में मनभावन रूपक निकलता है कि देखने वाला

"द्रष्टा" और दिखाई दे रहा "दृश्य" कैसे एक-दूसरे में डूब जाते हैं। भारतीय कला में यह अद्वैत का विमर्श है।

छांदोग्य उपनिषद—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"--- कह कर कला की उदारता को ही अभिव्यक्त करता है, कि जो कुछ दिख रहा है, सब ब्रह्म है। अर्थात

दृश्यकृति और सत्य में कोई विभाजन नहीं है। जो दिख रहा है वही सत्य का विस्तार है

कला के हर रूप में अर्थ और रस संभव है। कला का

"साधारण" ही "असाधारण" है।

यही सूत्र कलाकार का, उस स्थिति में बचाव करता है, जब कलादृष्टि-शून्य व्यक्ति किसी कलाकार द्वारा रची गई तीक्ष्ण-अमूर्त कृति पर प्रश्न कर बैठता है कि " यह क्या बना दिया!" वस्तुतः आज के कला परिदृश्य में ऐसी कोई व्यवस्था दिखाई नहीं देती, जहाँ हमारी चिंतन परंपरा में भरतमुनी, अभिनव गुप्त आदि-आदि काला ऋषियों द्वारा उद्घाटित किए गए सूत्रों पर कोई यह कहने वाला हो कि कलाकार की रस दशा का उत्स-आसव यहाँ है, यह है, यहीं है। भारतीय मनीषा के सूत्र केवल काव्य, नाट्य या किसी एक ही विधा के रसज्ञ-भावकों के लिए ही नहीं है, वरन् समस्त अनुशासन के साधकों के लिए है। यहीं से देखने पर भावों का उदात्तीकरण जन्म लेगा। कृति और कृतिकार में सह-अनुभूति बनेगी। यह

"द्रष्टा" और दिखाई दे रहा "दृश्य" कैसे एक-दूसरे में डूब जाते हैं। भारतीय कला में यह अद्वैत का विमर्श है। छांदोग्य उपनिषद- "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"- कह कर कला की उदारता को ही अभिव्यक्त करता है, कि जो कुछ दिख रहा है, सब ब्रह्म है। अर्थात दृश्यकृति और सत्य में कोई विभाजन नहीं है । जो दिख रहा है वही सत्य का विस्तार है कला के हर रूप में अर्थ और रस संभव है। कला का "साधारण" ही "असाधारण" है।

रस ही होगा जो हमें हमारे अहम् से ऊपर उठा कर सार्वभौमिक चेतना में प्रवेश कराएगा। कितनी बड़ी बात है जो यह कहती है कि, इंद्रियां अंतिम नही हैं — चक्षुषश्चक्षुः” — आँखों की भी आँख है।

कलाओं की लगभग समस्त व्याख्याओं में इस पक्ष को भुला दिया गया है कि, “क्या द्रष्टा अर्थात देखने वाले को देखा जा सकता है? इसका अर्थ यहाँ पहुंचता है कि द्रष्टा की दृष्टि कभी नष्ट नहीं होती। देखने वाला स्वयं दृश्य नहीं बन सकता। क्योंकि दृश्य सदैव परिवर्तित होगा। वह अस्थायी होता है। किंतु दृष्टि सदैव रहती है, वह स्थायी चेतना है। ऐसे में—

“मैं क्या देख रहा हूँ” — से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि “कौन देख रहा है”। यह 'कौन' ही दृष्टि या देखने का अदृश्य आधार है। इसी के हेतु कला जन्म लेती है और लेती रहेगी।

समकालीन दृश्यकला को अर्पित विशेषांक के इस दूसरे भाग में भी कला के विविध पक्षों को सम्मिलित किया गया है। इस हेतु हमारे आग्रह पर अनेक उद्भट विद्वानों ने लिखा है, यह उनकी कृपा है। उनमें सर्वश्री ज्योतिष जोशी, पद्मश्री विजय शर्मा, पद्मश्री श्याम शर्मा, हेमंत शेष, प्रो. रतन चौहान, अवधेश बाजपेयी, सरोज कुमार सिंह, विजयकांत आर्य, डॉ. ब्रज रतन जोशी, डॉ किरण मिश्रा, अमित कल्ला, विनय अंबर, डॉ. ऋतु जोहरी, डॉ. गगन बिहारी दाधीच, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, त्रिवेणी प्रसाद तिवारी, डॉ मुक्ता मिश्रा, भूपेंद्र अस्थाना, डॉ. राजकुमार पांडेय, डॉ. मनीषा आमेटा इत्यादि की रचनाएं सम्मिलित हैं। कला समय की ओर से इन सभी के प्रति आभार ज्ञापित करते हैं। मैं व्यक्तिश: कला समय के प्रधान संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास जी के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने अतिथि संपादक का गुरुत्तर दायित्व मुझे सौंपा। उनकी उदारता प्रणम्य।

यह अंक अपने विधतापूर्ण कलेवर के कारण कला-चिंतक विद्वानों, कलाकारों और कला प्रेमियों के लिए उपादेय साबित होगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। अंक आपके हाथ में है, आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा है।

शुभमस्तु

Chetan Audichya

चेतन औदिच्य

कला समय

आगामी विशेषांक

आगामी अंक
जून-जुलाई 2026

लोक नाट्य विशेषांक

अतिथि संपादक- डॉ. पूरन सहगल
(लोक साहित्य अध्येता)

डॉ. पूरन सहगल
अतिथि संपादक
(लोक साहित्य अध्येता)
मो. 9424041310

मालवी लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति पर निरंतर शोध कार्य अब तक 109 पुस्तकें प्रकाशित अनेक सम्मानों से पुरस्कृत एवं सम्मानित। दलित चेतना के सतर्क चिंतक, लेखक एवं समाजसेवी, विख्यात कहानीकार, समीक्षक, वार्ताकार, शिक्षाविद् एवं प्रवक्ता।

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु: 'लोक नाट्य' विषय पर आपके आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, संस्मरण सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 जून 2026 है।

– संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com **मो.- 94256 78058**

एक साधक चित्रकार का चित्र-संसार!

कलाकार का ब्रश रंगों में सिर्फ आकृतियाँ भर नहीं उकेरता, बल्कि एक समूची कथा लिखता है अपनी तूलिका से...!!

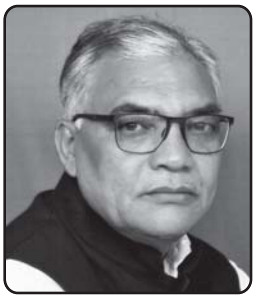

'एक ही ब्रश कठोर भी होता है, कोमल भी। तूलिका तो एक ही है – उसे कठोर करना है, कहाँ कोमल यह कलाकार की साधना पर निर्भर है। आखिर जो सौन्दर्य विचारों में छिपा है उसे निकालना कला साधना का ही तो हिस्सा है। सच कहें तो कला जीवन का सौन्दर्य है। जो हम देखते है, सुनते हैं, महसूस करते हैं, उसे अपनी कला के माध्यम से व्यक्त करते हैं।'

'आपको कुछ दीख गया है, उसमें आप अपनापन जोड़ो,
अपनी क्रिएटिविटी उसमें जोड़ो फिर जो निकलेगा वह कला होगी।'

- एन.एस बेन्द्रे

एक चित्रकार ने आहिस्ते – आहिस्ते पहले मन पर छवि अंकित की, फिर रंगों के जरिए कागज पर उतार दिया। यह एक साधक चित्रकार का रंग-संसार है। आचार्य नन्दलाल बोस अपने कला विद्यार्थियों को पढ़ाते समय तीन महत्वपूर्ण बातों पर अधिक बल देते थे – प्रकृति परंम्परा और मौलिकता। मौलिकता में हम अपने मौलिक सोच और विचार को भी साथ लेकर चलते हैं। वरना कला सिर्फ नकल होकर रह जाएगी। वे कहते हैं-'एक ही ब्रश कठोर भी होता है, कोमल भी। तूलिका तो एक ही है – उसे कठोर करना है, कहाँ कोमल यह कलाकार की साधना पर निर्भर है। आखिर जो सौन्दर्य विचारों में छिपा है उसे निकालना कला साधना का ही तो हिस्सा है। सच कहें तो कला जीवन का सौन्दर्य है। जो हम देखते है, सुनते हैं, महसूस करते हैं, उसे अपनी कला के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कला जीवन की भट्टी से आती है। जितना हम सादगी से भरे होते हैं, हमारे अन्दर कला उतनी ही तीव्र रूप लेती जाती है। और हमारी अभिव्यक्ति ही कला की सम्पूर्णता है। वस्तुत: यह एक बड़ा भ्रम है कि हम केवल शिल्प पर ही जोर देते हैं और उसी को ही कला मान लेते हैं जबकि अच्छी कला में शिल्प और वस्तु दोनों ही घुल-मिलकर आते हैं और वही कला को पूर्णता प्रदान करते हैं। जो जितना बड़ा कलावादी होगा वह उतना ही बड़ा कलाकार होगा, बशर्ते वह केवल शिल्प का झाग न फैलाए। कथ्य और रूप दोनों को जीवन के सामानान्तर चलते हुए एकदम खपाकर या मिलाकर प्रस्तुत करें तभी वह कला होगी। अन्तत: कला समाज के लिए ही है, समाज से परे उसका कोई अर्थ नहीं।

'रूपभेदा: प्रमाणनि भाव लावव्योजनम्।
सादृश्यम वर्णिका भंगम् अति चित्रम षडंगकम्। -'चित्रसूत्र'

अर्थात – रूपभेद प्रमाण, भाव, लावण्य – योजना, सादृश्य तथा वर्णिका भंग (रंग तूलिकादि) ये चित्र के छ: अंग होते हैं।

उसी तरह-एक चित्र फलक में कलातत्वों की महत्ता को विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्र में ही वर्णित श्लोक में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

'रेखां प्रशंसन्त्याचार्या: वर्तनां च विचक्षणा:।
स्त्रियोंभूषणमिच्छन्ति, वर्णाद्यमितरे जना:।।'

अर्थात – रेखा, वर्ण, वर्तना और अलंकरण इन चारों से चित्र का स्वरूप होता है, इनमें भी रेखा मुख्य है। चित्र विद्या के आचार्य चित्र की प्रशंसा में रेखा को महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। रेखांकन अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। रेखा चित्र कला की आत्मा है। वस्तुत: इसका भारतीय चित्रकला में भी महत्वपूर्ण स्थान है, जो अजन्ता, मुगल एवं राजस्थानी चित्रों में उल्लेखनीय है। वह कलाकार के अच्छे अनुभव एवं अभ्यास का प्रतिफल है।

दिनेश अत्रि अपनी रचना के माध्यम से कहते हैं – 'आता नहीं था बनाना। तय हुआ मेरा पहला चित्र वह बनाएगा, मैं सिर्फ देखूँगा। बनते हुए चित्र को देखना देखते हुए चित्र का बनना होता। इस तरह वह मेरा बना चित्र होता। मैंने कैनवस, ब्रश, रंग, मंजूषा सब उसके हवाले कर दिए।

... धूसर बेढब धब्बे धीरे-धीरे आकार लेने लगे। पहाड़ उठने को हुआ सूरज डूबने नदी निकलने को हुई बादल झुकने, चिड़िया उड़ने को हुई खरगोश दुबकने। हरे भूरे होने के वृंत पर ठिंकंकी लपत चटखने को हुई। पंखुड़ियाँ कसमसाई तितली पंख समेटने को हुई। ... वह उठने को हुआ और उठकर चल दिया ... वह लौटने को हुआ और नहीं लौटा। चित्र अपने होने की ललक में संपूर्ण मेरा अंतिम चित्र हुआ।

उसी तरह लवली गोस्वामी भी अपनी इसी तरह की रचना के माध्यम कहती हैं – 'कला के पक्ष में'

गहरे प्रेम की स्मृतियाँ दीवार में लगी पेंटिंग में चित्रित लहर के जैसी होती हैं। आप चाहें तो उस चित्रकार को गालियाँ दे सकते हैं, जिसने चित्र बनाकर उस लहर को सदा के लिए पेंटिंग में कैद कर दिया। निस्संदेह वह जिम्मेदार लहर की गति छीनकर उसे निरे रेख में बदल देने के लिए। प्रेम को स्मृति में बदल देने के लिए भी कोई तो जिम्मेदार होता ही है, लेकिन आप आज उस लहर की स्मृति को देख पा रहे हैं, तो उसी चित्रकार की बदौलत।

कविता भी ऐसा ही एक स्मृति -चित्र है। कविता किसी स्मृति को पोंछकर मिटा देने से सौ गुना बेहतर समाप्ति है। ऐसे ही किसी चीज को उसकी आसन्न नियत मृत्यु के विरूद्ध कला में पुनर्निमित करना समय की सनातन ज्यादतियों के विरोध में कला का दुस्साहसपूर्ण उलगुलान है। अब मेहरबान, यह शिकायत तो मत कीजिए कि चित्र में चित्रकार ने अपनी कल्पना मिलाई। यह उसकी कला थी, जिसने सही-गलत को लेकर इतनी बहसों को जन्म दिया। वरना रोज हजारों लहरें जन्म लेती हैं, रोज हजारों प्रेम मरते हैं! एक टिप्पणी के अनुसार जब चित्रकला पर विचारों का प्रभुत्व होता है। तब चित्रों में कथानात्मक भाव पैदा होने का धोखा हो जाता है। अत्यधिक बौद्धिकता कला की स्वाभाविकता उसकी सहजता पर हावी होकर संयोजन की हानि ही करती है। यही कारण है कि काव्यात्मक भावना की अभिव्यक्ति सर्वाधिक सराहनीय मानी जाती है। कला के बहार कोई अर्थ या दृष्टि नहीं होती जिसके नजदीक पहुँचने या जिसका अनुवाद करने की चेष्टा कला करती हो। कला अपना अर्थ अपने ऐन्द्रिक रूप से ही अर्जित करती है। उसकी आकांक्षा न प्रतिनिधित्व करने की है, न ही बखान करने की। ईमानदारी से वह अपने अलावा किसी का प्रतिनिधित्व कर भी नहीं सकती। कला सच्चाई का न तो अनुवाद है न ही उसकी अनुरचना। कला सच्चाई है। वह किसी और सच्चाई के प्रति जवाबदेह नहीं। कलाकार दरअसल एक अपूर्णता का अनुभव करता है और उस अपूर्णता या उस शून्य को भरने के लिए कला का सृजन करता है। मनुष्य का जो अधूरापन है उसकी क्षतिपूर्ति कला करती है। कला अभिव्यक्ति का माध्यम होने से इसमें सर्जक व दर्शक दो पक्षों की मौजूदगी अपेक्षित है। क्योंकि जब तक सर्जक द्वारा सृजित या अभिव्यक्त कला दर्शक तक नहीं पहुँचती सर्कल पूरा नहीं होता, जो अभिव्यक्ति की मूल भावना को नष्ट करता है इस लिए अपेक्षित है कि कलाकार द्वारा जो सिरजा जा रहा है वह न सिर्फ दर्शकों तक पहुँचे बल्कि उससे सार्थक संवाद भी स्थापित करे। जिससे कला लोगों और समाज से हमराह हो सके।

वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता पद्मभूषण से सम्मानित विदुषी पुपुल जयकर जी का कथन है कि-'वस्त्र भारतीय परम्परा का प्रतीक चिन्ह है। ऋग्वेद और उपनिषद में ब्रह्माण्ड की परिकल्पना एक वस्त्र के रूप में की गई है जो कि ईश्वर द्वारा बुना गया है। यह सृष्टि भी एक अनंत वस्त्र की तरह है, जिसे इसके ताने-बाने ने चौकड़ी की तरह बुना है। इसलिए सम्पूर्णता की महत्ता समझने के लिए इस बिना सिले वस्त्र जैसी साड़ी या धोती को प्रतीक मानना चाहिए, जिस पर कि इस संसार के पवित्र चित्र अंकित हुए हैं। यह सिर्फ शरीर ढकने का माध्यम नहीं है वरन यह बिना सिला वस्त्र 'सम्पूर्णता' का द्योतक है। 'इस संबंध में काल जंग ने कहा है कि- ये सारे विश्व के लिए अनिष्टकारी होगा अगर भारतीय स्त्रियाँ अपना परम्परागत वस्त्र 'साड़ी' पहनना छोड़ देगी।' इसी के साथ-साथ जैन, राजस्थानी और पहाड़ी शैली के लघुचित्र शैली के चित्रों में पारदर्शी लंहगा और उतनी ही पारदर्शी ओढ़नी का आवरण स्पष्ट दिखाई देता है। परन्तु साड़ी के वर्तमान स्वरूप के प्रमाण 18वीं शताब्दी में महेश्वर में ऊकेरी गई मूर्तियों में स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते हैं। चित्रकारों और मूर्तिकारों ने बहुत ही सावधानी से साड़ी के क्रमिक विकास को अपने-अपने माध्यमों में अंकित किया गया है। वेदों में कला का महत्व यह दर्शाता है कि भारतीय संस्कृति ने प्रारंभ से ही कला को साधना, धर्म और जीवन के समन्वय का माध्यम माना है। जिसमें अजंता की कला भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला का शिखर है, यहाँ के भित्ति चित्र न केवल धार्मिक कथाओं का चित्रण है। तत्कालीन समाज, संस्कृति और जीवन-मूल्यों का दर्पण भी है। स्त्री सृजन की पर्याय है, आत्मा है। यदि वह कभी सृजनकर्त्री नहीं है, तब भी वह सृजन की प्रेरणा तो है ही। क्योंकि स्त्रियों ने कला को अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के लिए हर युग में लड़ाई लड़ी है। प्रकृति यहाँ चित्र की प्रेरणा मात्र नहीं है, इन चित्रांकन में प्रकृति जैसे स्वयं अपना विस्तार करती है। मनुष्य और प्रकृति के द्वैत में प्रकृति रचना की प्रेरणा हो सकती है, स्वयं अपना विस्तार नहीं। शब्द में जहाँ तक संभव है, चित्रकथा अपना मर्म प्रकट करती है लेकिन सदा ही समष्टि के प्रकाश को व्यक्त करने शब्द और भाषा अमूर्त्त होने लगते हैं, वे शब्द की कथा से चित्र की कथा में छलांग लगा देते हैं। भारतीय परम्परा में मनुष्य और प्रकृति के संबंध की इस पूर्णता को लोक चित्रों से अधिक मुखरता के साथ रचना का कोई अन्य माध्यम प्रकट नहीं करता। सब शब्द और स्वर जो मनुष्य की प्रार्थनाओं में व्यक्त होते हैं, अन्तत: अनन्त आकाश में चले जाते हैं, दीवाल और जमीन पर बनी चित्र प्रार्थना को भी भूमि पर ही रहना होता है। यह एक अद्भुत विश्व है। इसे समझने परम्परा के देश काल में विकसित एक पूरी सांस्कृतिक यात्रा को समझना आवश्यक है।

'कला समय' का यह द्वितीय सोपान हमें आपको सोंपते हुए हम पूरी तरह आश्वस्त हैं हम कृतज्ञ हैं अतिथि संपादक विद्वान हस्ताक्षर श्री चेतन औदिच्य जी के जिन्होंने लगातार चार महिनों तक 'कला समय' के रूपंकर समकालीन दृश्य कला विशेषांक हेतु दुर्लभ शोध सामग्री से इन दो भागों के अंकों को पूर्णता प्रदान की तथा देश के नामचीन कलाकारों लेखकों, साहित्यकारों को कला समय परिवार में जोड़कर समद्ध परिवार बनाने में आदरणीय चेतन जी की महति भूमिका को हम हृदय की गहराईयों से आभार आपका। साथ ही सभी लेखकों, कलाकारों के प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। 'कला समय' में आपका रचनात्मक सहयोग वंदनीय है। आगे भी आपका यह सहयोग मिलता रहेगा ऐसी अपेक्षा है। हमारे सुधी पाठकों से अनुरोध है कि अपनी महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया और बहुमुल्य सुझावों से हमें अवश्य अवगत कराने की कृपा करें।

अक्षय तृतीया की आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएं।

।।शुभमस्तु।।

- भँवरलाल श्रीवास

भारतीय परंपरा में सौंदर्यबोध और कलादृष्टि

डॉ. ज्योतिष जोशी

डॉ। ज्योतिष जोशी सुपरिचित हिंदी आलोचक, विचारक और कलाविद हैं। आपने साहित्य, कला, नाटक और नाट्य आलोचना के क्षेत्र में व्यापक और महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने परंपरा, सभ्यतागत विमर्श और संस्कृति के मूल्यांकन के क्षेत्र में भी उत्कृष्ट कार्य किया है। इनकी 28 मौलिक पुस्तकें हैं जिनमें दो उपन्यास, एक जीवनी और शेष आलोचना की पुस्तकें हैं। इन्होंने ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली की पत्रिका 'समकालीन कला' के संपादक एवं कार्यवाहक सचिव तथा हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार के सचिव के रूप में भी कार्य किया है। डॉ। जोशी को देवीशंकर अवस्थी सम्मान, स्पन्दन आलोचना सम्मान, प्रमोद वर्मा आलोचना सम्मान, साहित्यिक कृति सम्मान, साहित्य सेवा सम्मान तथा राजभाषा गौरव पुरस्कार सहित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, संगीत नाटक अकादमी तथा माखनलाल चतुर्वेदी संचार और पत्रकारिता विश्वविद्यालय की अध्येता वृत्तियाँ मिली हैं। हाल तक ये प्रधानमंत्री संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में प्रोफेसर संवर्ग के अंतर्गत वरिष्ठ फ़ेलो रहे और अब संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की संस्था इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली में टैगोर राष्ट्रीय फेलो हैं।

सौन्दर्यबोध

भारतीय परंपरा में रागबोध यानी सौन्दर्यबोध का विस्तार बड़ा है, उसे समझने-समझाने के लिए हजारों वर्षों से नाना अवधारणाएँ आई हैं. पर पश्चिम की तरह यहाँ कोई सीमित 'एस्थेटिक्स' की अवधारणा नहीं है। है तो 'रस शास्त्र', जो विभिन्न विचारकों का अनुभवसिद्ध प्रतिफलन है और वह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित इस रस सूत्र पर आधारित है- 'विभावानुभाव संचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' यानी विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यह पाँच तत्व विभाव. अनुभाव, सचारी, संयोग और निष्पत्ति बड़े महत्वपूर्ण कारक हैं जिनके कारण रस या आस्वाद, या कहें कि राग बोध उत्पन्न होता है। व्यावहारिक रूप में विभाव कारण है तो अनुभाव कार्य है और संचारी है सहचारी। कलाओं में और समस्त जीवन-व्यवहार में इन्हीं के प्रभाव से हममें रागबोध जन्मता है यानी हम सौन्दर्य को देख पाते और जी पाते हैं।

विभाव दो हैं- आलंबन और उद्दीपन। आलंबन वह है जो पाठक, दर्शक या सर्व-साधारण; जिसमें सहृदयता है, उसमें सुप्त वासना के रूप में मौजूद रहता है और अवसर पाकर प्रकट हो जाता है। उद्दीपन वह माध्यम है जो आलंबन भी हो सकता है, तो उसका बाहरी रूप भी। यह वह कारक है जिससे भावक में सुप्त वासना जन्मती है। अनुभाव, कार्य है जो सोए हुए वासना भाव को अनुभूति के बाद कार्य में बदल देता है, व्यक्ति उससे क्रियाशील हो जाता है। वह सुप्त भाव को अनुभव योग्य बना देता है। और संचारी, जो सहकारी है, वह अनुभव को (चेतना से लेकर समस्त इंद्रियों तक सुप्त भाव के प्राकट्य को अनुभवजन्य बनाकर) संचारित कर देता है. इस स्थिति में आकर भावक पूर्व स्थिति से भिन्न स्थिति में पहुँच जाता है।

यही रसबोध है, रागबोध है और सौंदर्य-बोध है जो समस्त इन्द्रियों सहित भावक के चित्त को वशीभूत कर लेता है और यह अपने को उस उद्भुत बोध में विलीन पाता है।

सौन्दर्यबोध का या रागबोध का इससे विलक्षण, वैज्ञानिक और ग्राह्य सिद्धांत पूरी दुनिया में आज तक नहीं आया। केवल यूनानी दार्शनिक अरस्तु के विरेचन का सिद्धांत इसके आसपास दिखता है. पर वह भावक के साधारणीकरण के भरत सिद्धांत के पासंग में भी नहीं है। विरेचन जिसे अंग्रेजी में 'कैथारसिस' कहते हैं. एक प्रकार से शुद्धि-सिद्धांत है। इसमें वे करुणा और त्रास के रेचन से यानी उद्रेक से भावक के मन में आनंद की प्राप्ति बतलाते हैं जो यूनानी त्रासदी के दर्शकों और पाठकों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। एक क्षण, जो शोक और अवसाद का आता है जिसमें आँसू झरते हैं, जिसके बाद भावक का चित्त प्रशांत हो जाता है और वह आनंद पाने लगता है। यह एक तरह से अपने गुरु प्लेटो द्वारा इस आक्षेप का एक प्रतिवाद ही था कि 'काव्य हमारी वासनाओं को पोषित करने और भड़काने में सहायक है. इसलिए निन्दनीय और त्याज्य है।' ज्ञातव्य है कि प्लेटो ने लेखकों, कलाकारों के अपने आदर्श नगर-राज्य से निकालने की सिफारिश की थी।

पर करुणा तथा त्रास के उद्रेक से भावात्मक परिष्कार और उसका आनंद में समाहार, अरस्तु के कैधारसिस का प्रयोजन भले हो, वह प्रक्रिया और व्यवस्था में घटित नहीं दिखता। बहरहाल भरतमुनि के रससिद्धांत की चार मुख्य व्याख्याओं को देख लें। इसके पहले यह समझ लें कि साधारणीकरण के सिद्धांत को सभी परवर्ती आचार्यों ने महत्वपूर्ण माना, पर उसकी स्थितियों को भिन्न-भिन्न बताया।

(i) इस कड़ी में पहले आचार्य भट्ट लोलट हैं जो लोक और काव्य दोनों ही स्तर पर रस को समझते हैं। उनका सिद्धांत 'उत्पत्तिवाद' है। वे बल देकर कहते हैं कि रस या राग का प्रामाणिक आस्वाद व्यवहार के स्तर पर होता है। काव्य या नाटक के चमत्कारिक प्रभाव से भ्रमवश वह नट-नटी में अपना आरोपण कर लेता है, पर रसोद्रेक तो प्रामाणिक रूप से व्यावहारिक जीवन में होता है और

व्यक्ति उसका अनुभव करता है। आरोपवाद वस्तुतः नट-नटी पर आरोपण है, वे इसे व्यवहार के स्तर पर उत्पत्तिवाद मानते हैं।

(ii) शंकुक दूसरे आचार्थ हैं जिन्होंने इस पर 'अनुमितिवाद' का सिद्धांत दिया। वे अनुमान को रसोद्रेक का आधार मानते हैं। मंचस्थ 'आश्रय' में 'स्थायी भाव' का अनुमान किया जाता है और अनुमान की मापक सामग्री है- विभाव, अनुभाव तथा संचारी।

(iii) भट्ट नायक ने साधारणीकरण पर 'भुक्तिवाद' का सिद्धांत दिया और बताया कि काव्य तथा नाट्य से अभिव्यक्त वासना का आस्वाद न तो मूल पुरुष लेता है और न नट। उसका आस्वाद सहृदय लेता है। यानी वह उसे मुक्त करता है. भोगता है। इसके लिए सहृदयता आवश्यक है। इसे उन्होंने तीन शक्तियों-अभिधा, भावना तथा भोग में देखा और कहा कि जब सहृदय का केंद्रित मन आलंबनाकार होकर तन्मय हो जाता है तो विक्षेप शून्य हो जाता है। विश्राति सुख का भोज करने लगता है। यही विश्राति भोग है-रसास्वाद है।

(iv) इस कड़ी में चौथे आचार्य अभिनव गुप्त हैं जिन्होंने 'अभिव्यक्तिवाद' का सिद्धांत दिया और कहा कि विश्रांति यानी मानसिक एकाग्रता पूर्णता बोध है। पूर्णताबोध आत्मबोध है और आत्मा आनंदमय है। और यही रसास्वाद है। इसकी व्याख्या पंडित जगन्नाथ ने की और अभिनव तथा मम्मट के सूत्रों को व्याख्या करके बताया कि जिस प्रकार कटोरे से ढँका हुआ दीपक अपने स्वरूप को प्रकाशित करता हुआ सन्निहित पदार्थों को भी प्रकाशित करता है-उसी प्रकार जब विभावादि सामग्री की समुदित प्रतीति से प्रकाशमय चित्त पर से व्यवधान का आवरण हटता है तब यह अपने प्रकाशमय स्वरूप से आनंदमय रूप के साथ सन्निहित रति आदि स्थायी भाव को भी प्रकाशित करता हुआ विशिष्ट रूप से रस का अनुभव कराता है।

सौन्दर्यबोध की भारतीय दृष्टि का एक आधार करुण रस है जिसे राग, आस्वाद या आनंद की तरह देखा जाता है। भारतीय मन सर्वत्र सौन्दर्य को देखता है और उसे अपने बोध का हिस्सा पाता है। भवभूति ने 'एको रसः करुणेव' कहकर करुणा को भावों का मूल माना और उसे प्रेम के अतीव रूप में देखा जिसमें कातरभाव और वियोग-भाव है। भारतीय चिन्तन में रस स्वरूप आत्मा का अनुभव ही जीवन का गंतव्य है। हर तरह के सुख का आधार यह रस है चाहे भक्ति हो, प्रेम हो, बासना हो; या गृहस्थ जीवन का कोई भी कर्म क्यों न हो। प्रतीति इस रस का एक बड़ा तत्व है 'प्रतीति परमार्थ हि काव्यम्' और रस 'आस्वादनात्मा अनुभव' है। यह सौन्दर्य कहीं प्रतिभा है तो कहीं चारुत्व है। स्वयं अभिनव गुप्त ने स्वरूप और संघटनानिष्ठ चारुता को काव्य का सौन्दर्य कहा। फिर आनंदनर्द्धन ने इसे लावण्य, चारुता तथा रमणीयता जैसे नाम दिए।

एक बांग्ला पद है-

'भावेर 'अंज' न माखि जे दिके पालटि आँखि नेहारि जगत एइ असीम सुंदर।।'

अर्थात् जिसके हृदय में प्यार है. उसकी आँखें उसी से रजित हो जाती हैं। फिर सर्वत्र सौन्दर्य ही दिखाई पड़ने लगता है। सौन्दर्य न तो रूप है. न रंग, न आकृति, न शिल्प, न तकनीक और न कौशल। यह सब उसके उपरी आवरण हैं। वह अपने अस्तित्व में निरावरण है, उसका कोई परिधान नहीं है। कला के पास सृष्टि नहीं दृष्टि होती है। जो उस दृष्टि को आत्मसात् कर लेता है, वहीं कलाकार होता है। भारतीय कलादृष्टि मानती है कि किसी वस्तु में सौंदर्य को देख लेना कलात्मक व्यापार नहीं। कलात्मक व्यापार है ऐसी दृष्टि देना, जो सौंदर्य देख सके। चित्र, मूर्ति, शिल्प सब स्थिर हैं, पर यह सब कलाकार की दृष्टि के गतिशील प्रतिमान हैं, गति नहीं तो कला भी नहीं है। भारतीय सौंदर्य दृष्टि ही भारतीय कला-दृष्टि है। यही दृष्टि सभी ललित कलाओं में दिखती है और उसका उत्स बनती है।

भारतीय कलादृष्टि में कला को परिक्रमा नहीं, यात्रा कहा गया है। यह एक वृत्त में घूमकर पुनः वहाँ नहीं पहुँचती, जहाँ से उसने परिक्रमा आरंभ की। बल्कि वह जहाँ से अपनी यात्रा आरंभ करती है, वह वहाँ पुनः नहीं लौटती चरन् वह अपने संकल्प के गतव्य तक पहुंचने का सतत् यत्न करती है यह उसका निरंतर चलते जाना उस परम को पाना है जो उसके द्वैत को मिटाकर उसे अद्वैत बना है। रस से राग से, आस्वाद से, चारूता से और लावण्य आदि से सज्जित यह सौन्दर्य, आचार्य शुक्ल की दृष्टि में 'रमणीय' है।

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी-रस सौन्दर्य और प्रेम को तत्वत: एक ही कहते हैं। जो आनंद दे. वह सुंदर है, जिसे हम प्यार करें वह सुंदर। हमारी वाङ्मय परंपरा में काव्यशास्त्र, आगम और भक्ति तथा शास्त्रीय ग्रंथों में लौकिक, काव्यीय और अलौकिक सभी प्रकार के क्षेत्रों के सौंदर्य का विवेचन है इसमें काम और प्रेम का समन्वय है। कहा गया है- 'सुष्ठु उनति आद्रीकरोति चित्तमिति सुंदरः।' यानी सुंदर वह है जो चित्त को सिक्त कर दे, भिंगो दे। तन्मय कर दे, डुबो दे। चित्त डूबता है रस में, आनंद में, रमण करता हुआ। यह सुंदर गुण रूप में सौंदर्य-भाव में प्रकट होता है पर परंपरा-प्रसूत भारतीय सौन्दर्यबोध से समन्वित कलादृष्टि भक्ति-दर्शन के समतुल्य है यह अतिशय प्रेमासक्ति है। न रूपासक्ति, न कामासक्ति, वह केवल प्रेमासक्ति है। केवल प्रेम में आसक्ति। प्रिय में आसक्ति नहीं, इसमें प्रिय की प्राप्ति पर भी बल नहीं है। प्रेम बना रहे, इस पर बल। प्रेम में बने रहना मुख्य है. प्रेमी नहीं। इस कामना की सिद्धि प्रेम का स्वभाव बनना है।

यह सर्वस्व-समर्पण है, विसर्जन है, अपना विलय है. जिसमें समाधि है- स्व-पर के विवेक से मुक्त हो जाना है बचा रह जाता है भाव, जिसपर हमारी लोकदृष्टि गर्व करती है-

'सेष, गनेस, महेस, दिनेस सुरेसहु
जाहि निरंतर गावै
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद
अभेद सुबेद बतावै
नारद से सुक ब्यास रहे पचि
हारे तऊ पुनि पार न पावैं

ताहि अहीर की छोहरियाँ
छछिया भर छाछ पै नाच नचावै'

यह जो प्रेमभाव है, माधुर्य भाव, विसर्जन भाव. जिसमें प्रेम सर्वोपरि है, प्रिय नहीं, वही भारतीय परंपरा का रागबोध है. सौन्दर्य बोध है जिसे रवीन्द्रनाथ ने 'आत्मा का संस्पर्श कर सब कुछ बदल देनेवाला' कहा है। यह ध्यान है, सम-विषम के पार जा सकने वाला भाव जिसे 'ध्यानावस्थितदगतेन मनसा' कहा गया है। यह भाव ध्यान में अवस्थित होकर मन से उपजता है भारतीय परंपरा का सौंदर्य बोध यही परम तत्व है और कदाचित कला दृष्टि का सारतत्व भी।

बृहदारण्यक उपनिषद् भी हालाँकि रूप की कल्पना से इन्कार न कर उसकी प्रतिष्ठा करता है. पर वह भी सौन्दर्य को प्रेम के अतीव भाव का ही कीर्तन और स्व का विसर्जन मानता है-

'स आदित्यः कस्मिन् प्रतिष्ठित
इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः
प्रतिष्ठिमिति रूपेष्विति चक्षुषा
हि रूपाणि पश्यती कस्मिन्नु
रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति
हो वाच हृदयेन हि रूपाणि
जानाति हृदये हयेन रूपाणि प्रतिष्ठितानि'

अर्थात् वह आलोक पुज आँखों में प्रतिष्ठित है। आँखों की प्रतिष्ठा रूप में है और रूप-ग्रहण की सामर्थ्य, उसकी स्थिति हृदय में है। यह भाव ही सौन्दर्यबोध या रागबोध है जिसे भारतीय परंपरा में नाना स्तरों पर समझाने की चेष्टा हुई है।

बिहारी का यह दोहा देखिए-

'या अनुरागी चित्त की,
गति समुझे नहीं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम रंग
त्यों-त्यों उज्जलु होय।'

प्रेमी मन की गति कौन जाने। यह जैसे-जैसे स्याम रंग में रंगता जाता है, वैसे-वैसे और निर्मल और उज्जवल होता जाता है। वह भाव का प्रभाव है। भाव ही परम है जिसके बने रहने की साधना में जीवन बिता देने की कामना मुक्तिमय हो जाती है।

पश्चिम का सौन्दर्यबोध

यह तो विदित ही है कि जिस प्रकार पश्चिमी परंपरा में 'सांस्कृतिक चेतना' और 'दृष्टि भेद' के कारण 'रस' पर कोई व्यवस्थित विचार नहीं है, उसी प्रकार भारतीय परंपरा में सौंदर्य पर व्यवस्थित विचार नहीं है, उसे हम 'रस' के आसंग से ही समझते हैं।

18वीं शताब्दी में वाम गार्टन नाम विचारक ऐसा पहला व्यक्ति है जिसने इंद्रिय संवेद्य सौन्दर्य पर विचार किया और कहा कि काव्य, चित्र, संगीत आदि कलाओं में सूर्य चन्द्रमा के उदय आदि प्रकृति खंड़ों में जिस विलक्षण तत्व को देखकर मन रम जाता है, वही दृष्टिगोचर होकर 'सौंदर्य' हो जाता है।

प्लेटो सौन्दर्य को तत्व-मीमांसा के अन्तर्गत समझता है और उसे 'सत्य की खोज' में देखता है। वह कहता है ज्ञानेन्द्रिय गोचर पदार्थ या प्राणी विशेष हैं जिनकी स्वतंत्र या निरपेक्ष सत्ता नहीं है. फलतः वे सत्य नहीं है। सत्य वह है जो प्रत्यय-स्वरूप है। सुंदर दर्पण है तो सौन्दर्य उसमें प्रतिफलित सामान्य-सौंदर्य प्रत्यय विम्ब है। सौदर्य का निकष ऐसी उपयोगिता है जो शुभ और आत्मोन्नति का साधक हो। कुल मिलाकर प्लेटो का 'सौंदर्य' नीतिमूलक व्याख्या है. ऐसा अरस्तु ने माना। अरस्तु ने सौन्दर्य को भारतीय मत के रसबोध के समानांतर 'विरेचन' का सिद्धांत दिया जिसे हम देख चुके हैं। उसमें मूल बात यह है कि काव्य का कथानक और पात्र इतिहास की घटना-राशि और पात्र की तरह देशकाल-बद्ध 'विशेष' नहीं रहते, वरन् सामान्य या संभाव्य सत्य बन जाते हैं जिससे उनकी देश-काल-व्यक्ति-बद्ध लौकिकता विगलित हो जाती है वहाँ सोमा तथा लौकिक लाभ-हानि का प्रसंग ही संभव नहीं है फलतः करुणा और भय का लौकिक प्रभाव रह जाता है-उनका शोधन हो जाता है और अपने इस शोधित रूप में वे ही भावनाएँ आनंदप्रद हो जाती हैं। यह विरेचन 'रस की भारतीय अवधारणा' से किंचित मेल दिखाता है।

अरस्तु के बाद सिसरो ने रेटरिक यानी 'वाग्मिताशास्त्र' पर अपना विचार दिया और कहा कि रंगों की एक निश्चित अनुकूलता और अंगों का अनुपात एक साथ प्रस्तुत हो तो उसे 'सौदर्य' कहेंगे।

लौंजाइनस ने 'औदात्य की अवधारणा' दी और काव्य में औदात्य तथा तज्जनित आह्लाद के लिए प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना। महान विचार, भावनाओं की तीव्रता के साथ भाषिक व्यवस्था पर बल उसके औदात्य संबंधी मत की मुख्य बातें हैं।

हेगेल सौन्दर्य में वस्तु और कला के सामंजस्य को प्रभावी मानता है। वह कहता है कि जब विचार या विषय, रूप की अपेक्षा प्रशस्त और उत्कृष्ट होता है तभी रचना में उदात्त गुणों की सृष्टि होती है। इसमें वह लेखक के चारित्रिक गुण को प्रभावी मानता है।

प्लाटिनस का कहना है कि रचनाकर का सीधा संबंध परोक्ष की सत्ता से होता है। देवी अनुग्रह और चारित्रिक श्रेष्ठता से रचना में सौंदर्य आता है।

इमेनुअल काट सौन्दर्य को ज्ञान, सुख-दुःख की अनुभूति और अतिन्द्रिय संवेदना में देखता है। वह इस सौदर्य को प्रेय तथा श्रेय सुख में नहीं मानता। वह कहता है- सृष्टा और दृश्य के बीच अज्ञान सामजस्य के परिणाम स्वरूप घटित वेदना ही सौंदर्य वेदना है। इसमें सृष्टा और भावक दोनों हैं।

क्रोचे ने सौंदर्यशास्त्र को अधिक तार्किक बनाने का प्रयत्न किया। उसने तत्व मीमांसा के अप्रमाणिक क्षेत्र से निकालकर उसे अनुभव क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया। वे कांट और हीगेल की तरह इतिहास की वस्तु न रहे। उसने कला को अनुकृति नहीं, आध्यात्मिक सृष्टि माना। उसने कला को स्वय

प्रकाश ज्ञान कहा और यह प्रतिपादित किया कि जब तक कलाकार की गहरी अनुभूति किसी संस्कार को अनुप्राणित नहीं करती, तब तक वह कोई रूप ग्रहण नहीं करती और न उसमें सौंदर्य आता है।

इसमें आवश्यक बात है- कलाकार द्वारा अमूर्त को मूर्त करना और विभिन्न तत्वों को एक सूत्र में पिरोना। यही मानस जब सफल हो जाता है तो उसमें रचना आंतरिक रूप से प्रकाशित हो जाती है जिसे स्वयं प्रकाश कहा जाता है। इसमें ही सौंदर्य होता है।

सौंदर्य पर मार्क्स तथा फ्रायड ने भी विचार किया। मार्क्स ने कहा कि सौंदर्य चाहे प्रकृक्ति का हो या कला का हो, वह श्रम का परिणाम है; और उसका स्वयं कोई उद्देश्य नहीं है। मानव हित से परे कला का कोई अस्तित्व नहीं है। जबकि फ्रायड ने सौंदर्यबोध के मूल में यौन-वृत्ति को रखा। यौनेच्छा, रति-भाव और ऐन्द्रिक सुख को सौंदर्य का आधार मानकर फ्रायड ने उसे निरी भौतिक एषणाओं से मिला दिया। बाद में जार्ज सान्तायन ने साधारण आदमी के अनुभव को कला का अनुभव कहा और उस अनुभव को सुंदर बताया। अस्तित्ववादी सार्त्र ने कहा कि कला मनुष्य के जीवन और सपूर्ण सत्य का रूप देकर सुंदर बनाती है। होने का अर्थ बंधन मुक्त है और मुक्ति है दायित्वों के प्रति जागरुकता।

हर्बर्ट रोड ने मानव को आदिम वृत्तियों का पुंज कहा और विकास के अर्जित मुखौटे के भीतर छिपे आदिमपने की आकांक्षा में सौंदर्य को देखा।

बाद में नाना विचारकों और वादों के प्रवर्तकों ने सौंदर्य को अनेक रूपों में देखा, पर भारतीय विसर्जन-भाव को न छू सका। भारतीय सौन्दर्य भाव विसर्जन है इसीलिए ध्यान और आराधना है।

कलादृष्टि

कला यदि संवाद है तो रूप उसकी भाषा। यह रूप जब रेखाओं और रंगों के माध्यम से लकड़ी, पत्थर, चित्रफलक आदि पर उत्कीर्णन के माध्यम से आँखों के सामने उतरता है तो यह कलाकार की उस अदृश्य चेतना की परिणति होता है जो घनीभूत होकर अभिव्यक्ति के लिए आतुर हो उठती है। चित्र या शिल्प भी ठीक उसी तरह रचे जाते हैं जैसे कविता। पर रचना के बारे में कलाकार की जो दृष्टि होती है, वही दृष्टि समीक्षक की नहीं होती।

भारतीय कलादृष्टि के बारे में यह तथ्य विद्यमान है कि भारतीय मनीषियों ने उन बिन्दुओं की तलाश की है जो कलाकार और कला समीक्षक को समान धरातल पर लाते हैं।

(i) इसमें पहला धरातल है रस और दूसरा आनंद। तैत्तिरीय उपनिषद के सूत्र 'रसौ वै सः' (रस ही आनन्द है।) का प्रत्येक उस भारतीय सर्जक ने पालन किया जिसका नाम हम आदर से लेते हैं- वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास आदि ने अपनी रचनाओं में रस और आनंद को बड़े ही स्वाभाविक स्वरूप में व्यक्त किया।

(ii) दूसरा धरातल है- समग्रता की पहचान। समग्रता की पहचान हमारे रागबोध और सौंदर्य दृष्टि दोनों में है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में सौंदर्य और राग दोनों परस्पर संयुक्त हैं। हमारी दृश्यकलाएँ इसीलिए हमारी कला की सच्ची प्रतिनिधि है।

समग्रता भारतीय कलादृष्टि की पहचान है, इसीलिए वह इतिहास या जातीय आधार पर विभाजित नहीं है। यह दृष्टि सम्बद्धता पर बल देती है. वह सम्बद्धता में है, अलग-अलग उपादानों में नहीं। इसमें केन्द्र पर बल नहीं है, वरन् सम्पूर्ण संसार पर है जिसमें केन्द्र भी है तो परिधि भी।

चूँकि भारतीय कलादृष्टि एकांगी नहीं है इसीलिए वह केवल कलात्मक सरोकारों की बात नहीं करती, न जुड़ती है। वह तो लोक से, राग से, रस से, सौन्दर्य से और जीवन के प्रत्येक व्यापार से जुड़ती है। उसका सबसे सुंदर पक्ष यह है कि उसकी लोक-दृष्टि और कलादृष्टि में अंतर ही नहीं है। कला शब्द का प्रयोग लगभग सभी अर्थो में होता है। कला शब्द 'कला' से बना है जिसका अर्थ-भेदना, खंड-खंड करना, तोड़ना आदि है। यह उसका खंडरूप ऐसा है जिसके बिना सम्पूर्ण अपूर्ण है। एक तरह से कला का यह पैमाना ही है जो संपूर्णता को मापती है। खंड-खंड में सम्पूर्ण सोलह कलाओं वाले कृष्ण समग्र पुरुष इसीलिए माने गए। कला हमारे जीवन का रागात्मक संस्कार है।

भारतीय कलादृष्टि में सौंदर्य के अनुपात के बजाय 'लावण्य' की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया। लावण्य वह होता है जो अंतर की दीप्ति को देह के माध्यम से उजागर करता है। इसीलिए जब दैहिक सौंदर्य को देह के माध्यम से अभिव्यक्ति करने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो कालिदास को दीपशिखा से अधिक कोई दूसरी उपमा नहीं सूझी-

'रघुवंशम्' में वे कहते हैं-

'संचारिणी दीपशिखैव राजो यं यं व्यतीयाय पतिंवरासा।
नरेंद्र मार्गाट्ट इव प्रपैदे विवर्णभावं स स भूमि पालः ।।'

चलती संचरित होती दीपशिखा से यहाँ नायिका उपमित है जो स्वयंवर में जिस किसी राजा के सामने खड़ी होती है उसके अन्दर की आभा से उसका मुखमंडल जगमग करने लगता है और वह जैसे ही माला लिए आगे बढ़ती है, वह राजा विवर्ण यानी निस्तेज पड़ जाता है।

इसी दृष्टि से देखें तो हमारे मंदिर की सरणियों, दक्षिण के मंदिरों का मनोरम स्थापत्य, दीदारगंज की यक्षी, ग्यारसपुर की शाल भजिका, गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प, अजंता की भव्य मूर्तियों, किशनगढ़, मेवाड़, कांगड़ा और बसोहली के लघुचित्रों, भारतीय नृत्य शैलियों और संगीत के शास्त्रीय रागों में हमें उसी दिव्यता के दर्शन होंगे जिसमें रस और आनंद का समन्वय है और जो समस्त जगत के मंगल से जुड़े हैं।

मुख्य बात यह भी है कि भारतीय कला जितना बाह्य जगत का उत्सव है, उससे कहीं ज्यादा अन्तर्जगत का। भारतीय कला अनुरक्ति की अभिव्यक्ति है इसलिए उसे आरोपण नहीं निरूपण कहा जाता है क्योंकि वह अन्दर से प्रस्फुटित भाव-सत्य का सहज सौन्दर्य होती है- इस कलादृष्टि को आसक्ति के मध्य अनासक्ति को छूनेवाला महत् भाव माना जाता है। हमारी दृश्यकलाएँ, संगीत के राग, नृत्य की विविध शैलियों की भाव-मुद्राएँ आसक्ति के माध्यम

से अनासक्ति और देह से विदेह हो सकने की यात्राएँ हैं जिसे भौतिकवादी पश्चिम कभी समझ न सका और जिसका प्रतिवाद निरन्तर भारतीय कला-आचार्यों ने किया है।

भारतीय कला-दृष्टि की बड़ी विशेषता साझेदारी की है। वह परस्परता में विकसित होती है। वह निजस्व का प्रतिकार है-उसमें एक साथ कई कलाओं और अभिव्यक्तियों का सम्मुचय होता है इसलिए वह पश्चिमी कला-दृष्टि से भिन्न है। निजस्व या निजता को अपने आप से मुक्त न हो पाने के अर्थ में लेना चाहिए। भारतीय कला-दृष्टि अपने को तिरोहित कर, खोकर पाई जाने वाली कला को महत्व देती है जिसमें सामूहिकता होती है। उसमें साहचर्य का भाव होता है।

हमारी असल समस्या यह रही है कि विभिन्न कलाओं को हमने उसकी आत्मा में जाकर देखने की चेष्टा न की, इसलिए हम कथित आधुनिकता में पश्चिमी मानको को प्रतिमान बनाकर अपनी कलादृष्टि का अनर्थ करते रहे हैं।

भारतीय कला-दृष्टि का महत्वपूर्ण गुण उसकी स्वाभाविकता है। अपने समग्र भाव में स्वाभाविकता के साथ वह विस्तार पाती है। भारतीय कला अपने स्वरूप में अव्यक्त और अदृश्य मानी गई है। वह तब दृश्यमान और व्यक्त होती है जब कला में चेतना आए; क्योंकि वह उसकी प्राणशक्ति है जो अचेतन को चैतन्य बना देती है। कलाकार जब अपने सृजन में, अपने भाव में कला में स्वयं को मिटा डालता है तो उसमें प्राणशक्ति आती है। भारतीय कलादृष्टि मानती है कि कला समुद्र की अतल गहराई में स्थिर निष्कंप जल की तरह होती है। इस निष्कंप जल की मौन भंगिमा कला है।

भारतीय परंपरा में सौंदर्य बोध का सबसे अहम पक्ष-जीवन-प्रेम है, पर वह संसार और संसार से परे दोनों रूपों में है।

आचार्य शुक्ल-कहते हैं कि जहाँ आनंद सिद्धावस्था में दिखाई पड़ता है, उसका प्रवर्तक भाव प्रेम है। वे राग को प्रेम और करुणा में देखते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं-सौंदर्य बाहर की वस्तु नहीं, मन के भीतर की वस्तु है। यानी वह प्रेम है। और यह प्रेम-

'प्रेमा हि कोपि पर एव विवेचने सत्यन्तरदध्यात्यलम सावविवेचनेपि।

-'रूप गोस्वामी

अर्थात् प्रेम कोई ऐसी ही वस्तु है जिसका विश्लेषण किया जाय तो वह अन्तर्ध्यान हो जाता है, न किया जाय तो समझ में नहीं आता।

पीछे हमने कला को स्वाभाविकता के प्रसंग में कला की प्राण-शक्ति की चर्चा की, और कला-सृजन में कलाकार के मिटने की बात की इसे भारतीय कलादृष्टि की सबसे महत्वपूर्ण स्थापना समझनी चाहिये।

आनंद कुमारस्वामी ने भारतीय कला-दृष्टि पर विचार करते हुए कहा कि' भारतीय मत में कला पहले सृष्ट हो जाती है, उसका रूप रच जाता है. चित्त में उसकी पहचान हो जाती है, उसका रूप बन जाता है। वस्तु वह बाद में बनती है। कलाकार चित्त में ध्यान के बल पर धियालंबन के रूप में कलासृष्टि कर लेता है, तब वह वस्तु बनती है इस प्रक्रिया में वह मात्र वस्तु नहीं रहती, वह तो इंगिति ही होती है कलासृष्टि तो पहले हो चुकती है। परोक्ष के सिद्धांत को मानते हुए जो 'शुक्रनीति सार' के प्रसंग में है, वे कहते हैं कि जो सृष्ट है यानी रचा हुआ, वह परोक्ष है और जो दिखती है. वह उस परोक्ष को दिखाने वाली है। वही उसका ओट है. द्वार है, जो कह लें। इस परोक्ष को दिखाने वाली शक्ति के संधान में कलाकार को उस कृति में अपने को विसर्जित करना पड़ता है, यानी एक प्रकार की आनुष्ठानिक मृत्यु प्राप्त करना होता है; और यह सर्जन प्रक्रिया वह अपनी समाधि में जाकर पूरा करता है। समाधि शिथिल हुई तो कृति प्राणहीन हो जायेगी और उसमें परोक्ष को दिखाने की शक्ति न होगी। इसे ये ध्यान योग भी कहते हैं और कलाकार द्वारा मिट्टी से मूर्ति बनाने को प्राण का व्यापार कहते हैं। मिट्टी तो रूपांतरित हो चुकी, पर जो हो रहा है, यह कलाकार अपने प्राणों को विसर्जित कर चित्त में बने स्वरूप को आकार देता है।'

अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में कालिदास ने भी कलाकार की असफलता का कारण 'समाधि की शिथिलता' माना है। उसकी कथा यह है कि किसी कलाकार ने मालविका का चित्र बनाया था। चित्र देखकर राजा अग्निमित्र आकर्षित हो गया। राजा को यह लगा था कि चित्रकार ने मालविका को कुछ अधिक ही रमणीय बना दिया है। परंतु जब एक दिन सचमुच ही मालविका उसे मिल गई तो उसे लगा कि वास्तव में मालविका जितना सुंदर है, वैसा रूप उभारने में चित्रकार विफल रहा। राजा को लगा कि चित्रकार से सृजन में समाधि की शिथिलता के कारण इतनी बड़ी चुक हो गई-

'चित्रगतायामस्यां कातिविसंवादि मे हृदयम्
सम्प्रति शिथिल समाधिमन्ये येनेमालिखिता।'

ध्यान दें तो पायेंगे कि मालविका के अंतर की दिव्यता देखने से प्रकट हो रही थी, पर कलाकार उस परोक्ष को नहीं देख पाया था।

लोक और कलादृष्टि

लोक बहुजन की व्याप्ति का प्रक्षेत्र है जिसके तत्व कला की रचना करते हैं। इसे हमने ग्राम्यांचल तक मानकर सीमित कर दिया है, पर यह बहुत विराट है जिसे हम पीछे देख आए हैं। लोक की और उसकी कला की महिमा अपार है। यह दुर्भाग्य ही है कि उन्नीसवीं शताब्दी में आए विमर्शों और कथित आधुनिकता के कारण हमने लोक और अभिजन को दो भिन्न धड़ों में बाँटकर बड़ा नुकसान किया है। सच्चाई यह है कि भारतीय कला दोनों का समन्वित रूप है। लोक के बिना शास्त्रीय परंपरा महत्वहीन है। हमारी परंपरा में लोक दृष्टि और कला-दृष्टि समान है। यह दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे की पूरक हैं और समग्र हैं।

दोनों में राग, रस और सौंदर्य जीवन के प्रत्येक व्यापार से जुड़े हैं। यह समझने की बात है कि लोक से विमुखता हमारी कला को निष्प्राण बना रही है। भारतीय कलादृष्टि लोक को प्राणतत्व स्वीकार करती आई है क्योंकि उसमें समस्त प्रकृति का वास है।

लोक, कला और परंपरा-तीनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। परंपरा बंधन नहीं,

बंधन रूढ़ि में होता है। वह परंपरा जो समय से कट जाती है. रूढ़ि बन जाती है। दुखद है कि हमने रूढ़ि को परंपरा मान लिया। आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के चलन से लोक और लोककला की हमारी समझ गलत हो गई है। लोकदृष्टि ही वस्तुतः हमारी वास्तविक कलादृष्टि है क्योंकि उसमें निजस्व नहीं, समग्रता है, पूर्णता है और पूर्णता तभी आती है जब आत्म का विसर्जन हो जाता है।

निजता के तिरोहित होने में ही हमारी असल सौंदर्य-दृष्टि, असल कलादृष्टि सामने आती है जिसमें हम रस और आनंद को भावरूप मानते हैं जो समस्त इन्द्रियों का संयुक्त अनुभव होता है। हमारी भारतीय कलादृष्टि इस अर्थ में लोकवादी दृष्टि है कि वह केवल कलाकार से नहीं बल्कि भावक से भी विसर्जन की माँग करती है। स्पष्ट है कि जब हम अपने को विसर्जित कर, अपना विलय करते हुए लोक के जिस सौंदर्य में खो जाते हैं. वही दृष्टि सौन्दर्य-दृष्टि है। यह सौन्दर्य प्रिय पर मुग्ध होने का नहीं, प्रेम पर मुग्ध होने का है। हमारी कलादृष्टि प्रेम को स्वाभाविक बनाती है। लोक अपने समन्वित रूप में भारतीय कलादृष्टि को धारण करता है. दुर्भाग्य से हमने अपने अवलंब को अपने से विरत कर जिस अभिजात्य को ओढ़ लिया है, उसमें कला-दृष्टि केवल शास्त्रों तक सीमित रह गई है जिसे न तो कलाकार देख पाता है न भावक; आवश्यकता खुली आँखों से लोक को देखने और हृदय के स्पंदन से उसे महसूस करने की है और भारतीय कला-दृष्टि का संदेश भी यही है।

लोक का सौन्दर्यबोध

इन्द्रियगोचर प्रतीतियों में जो कुछ भी है, वह हमारा 'लोक' है। यह लोक रुय/लुच धातु से बना है जिसका अर्थ होता है- प्रकाशित होना या प्रकाशित करना। लोक देश का आनुभाविक रूप है जो अपने में बहुत व्यापक है।

इस लोक में मनुष्यों का समूह ही नहीं, सृष्टि के चर-अचर सभी सम्मिलित हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष-नदी, पर्वत-पठार सब हमारा लोक है।

सबके साथ, सबको साथ लेकर चलना लोक संग्रह है।

- सबके बीच में जीना लोक-यात्रा है।
- सबके साथ साझेदारी की भावना लोकदृष्टि है।
- यह लोक कभी विस्मृत नहीं होता। निरंतर चलायमान रहता है। यह लोक प्रकृति और मनुष्य के बीच, व्यक्त अव्यक्त के बीच संवाद स्थापित करता है।

  आगम और निगम दो शास्त्र हैं। वेद को प्रमाण न मानने वाले भी किसी न किसी रूप में आगम से संचालित होते हैं। बौद्ध जैन आगम से निर्देशित होते हैं।
- शास्त्र और लोक में हमेशा आवाजाही रही है इसलिए बहुधा साझेदारी की लोक दृष्टि भारतीय परंपरा की सौन्दर्य दृष्टि भी मानी गई है और कलादृष्टि भी।

  लोक भी हृदय को ही प्रमाण मानता है। हृदय में श्रद्धा जन्मती है। श्रद्धा विसर्जन को लक्ष्य मानती है और विसर्जन हमें मुक्ति देता है।

'सा विद्याया विमुक्तये' केवल उसी विद्या को मुक्तिदायी नहीं मानता जो ज्ञान रूप है। यह सूत्र भावरूप विद्या को भी मुक्तिदायी मानता है। भाव ही सत्य है, क्योंकि वहीं प्रेमरूप है, वही भक्तिरूप, तो वही निजस्व के विलय का कारक है। अतः भारतीय साहित्य और संस्कृक्ति की परंपरा इसी प्रेमरूप, भावरूप और भावसत्य को चिदानंद कहती है- वहीं शिव है, आनंद है. चैतन्यरूप है-

'मनोबुद्धि अहंकार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे
न च व्योम भूमि न तेजो न वायुः
चिदानंद रूपः शिवोह शिवोहं।।'

मैं मन, बुद्धि, अहकार और स्मृति नहीं हूँ। न मैं कान, जिह्वा, नाक और आँख हूँ। न आकाश, भूमि, तेज और वायु ही हूँ। मैं चैतन्य रूप हूँ, मैं आनंद हूँ, शिव हूँ, शिव हूँ।

वस्तुतः भारतीय परंपरा में सौन्दर्य बोध का यही रूप है जो लोक और शास्त्र के परस्पर भाव में समन्वित है।

सम्पर्क - डी -4/37,सेक्टर -15,रोहिणी, दिल्ली -110089
ईमेल - jyotishjoshi@gmail.com फोन -9818603319

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल (म.प्र.)

गौरवशाली 14 वाँ वर्ष

कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मानजनक मंच उपलब्ध कराने हेतु कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'

0755-2562294, 9425678058 kalasamay1@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

भारतीय लघु चित्रकला : परंपरा, उत्कर्ष और समकालीन चुनौतियाँ

विजय शर्मा
(पद्मश्री सम्मान से विभूषित)

पद्मश्री विजय शर्मा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी लघु चित्रकला परंपरा के पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले विख्यात चित्रकार, कला-इतिहासकार एवं शोधकर्ता हैं। हिमाचल प्रदेश के चम्बा में जन्मे श्री शर्मा ने बसोहली और कांगड़ा शैली की पहाड़ी चित्रकला में विशेष दक्षता प्राप्त की तथा अनेक युवा कलाकारों को प्रशिक्षित किया।आप 'शिल्प परिषद', चम्बा के संस्थापक अध्यक्ष हैं तथा हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी एवं उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, पटियाला से भी जुड़े रहे हैं। आपने भारत और विदेशों के अनेक प्रतिष्ठित संग्रहालयों एवं संस्थानों में पहाड़ी चित्रकला की तकनीकों पर व्याख्यान और प्रदर्शन प्रस्तुत किए हैं।एक कुशल लेखक, संपादक और कला-समालोचक के रूप में आपने पहाड़ी चित्रकला एवं हिमाचली कलाओं पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है। शारदा और तोकरी जैसी प्राचीन लिपियों के अध्ययन में भी आपकी विशेष विद्वत्ता है।आपको 'मास्टर क्राफ्ट्समैन' राष्ट्रीय पुरस्कार, राष्ट्रीय कालिदास सम्मान सहित भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' सम्मान प्रदान किया गया।

भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा लगभग एक सहस्राब्दी पुरानी मानी जाती है। ताड़पत्रों से कागज़ के उपयोग तक तथा विविध तकनीकी उन्नयों के माध्यम से इसका सतत विकास हुआ है। भारत के विभिन्न अंचलों में कलाप्रिय शासकों के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के फलस्वरूप यह कला निरंतर उत्कर्ष की ओर अग्रसर रही। विशेषतः मुगल काल में फारसी परंपराओं और भारतीय चित्रांकन शैली के समन्वय से लघु चित्रकला ने परिपक्वता की पराकाष्ठा प्राप्त की और अपने स्वर्णिम शिखर पर प्रतिष्ठित हुई।

कालांतर में मुगल तथा राजपूत चित्रकला के अंतर्गत विविध औपचारिक शैलियों का उद्भव एवं विकास हुआ। इन शैलियों ने चित्रों की विषयवस्तु के विस्तार, सूक्ष्म एवं जटिल रेखांकन तथा चटकीले रंगों के प्रभावी प्रयोग के माध्यम से विशिष्ट सौंदर्यात्मकता अर्जित की। इन चित्रों में दरबारी जीवन, धार्मिक आख्यान, ऐतिहासिक घटनाएँ तथा लोकजीवन से संबंधित कथानकों का अत्यंत सजीव एवं प्रभावशाली निरूपण किया गया है। इस प्रकार, भारतीय लघु चित्रकला केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं रही, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों की भी सशक्त संवाहक बनी।

भारतीय चित्र प्रायः कल्पना के आधार पर बनाए गए हैं। चित्रकार साधारण लोग थे, परंतु ईश्वर ने उन्हें असाधारण दृष्टि दी थी, जिसके कारण चित्रकला के महानतम उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। भागवत पुराण का हिरण्यगर्भ चित्र गुलेर शैली का एक अनुपम उदाहरण है, जिसमें अमूर्त कला का दर्शन मिलता है। भारतीय लघु चित्रकला में अमूर्तता सूक्ष्म होते हुए भी गहन है। इसका उद्देश्य रूप को समाप्त करना नहीं, बल्कि उसे रूपांतरित करके गहरे अर्थों को व्यक्त करना है। शैलीकरण, प्रतीकात्मक रंग, समतल स्थान और लयबद्ध डिजाइन के माध्यम से, लघुचित्र कलाकारों ने एक ऐसी दृश्य भाषा का निर्माण किया जो यथार्थवाद से परे जाकर भावनात्मक और आध्यात्मिक सत्यों को संप्रेषित करती है।

वास्तव में, बिना राजाश्रय के किसी भी कला का समुचित विकास संभव नहीं होता। कला-जगत की अनेक महान कृतियाँ राजकीय संरक्षण के अंतर्गत ही सृजित हुई हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा लघु चित्रकला जैसी विधाएँ भी राजदरबारों द्वारा संरक्षित एवं पोषित रही हैं। किंतु कालांतर में, विशेषकर राजाश्रय के अभाव के कारण, कलाकारों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप, आजीविका के साधन हेतु अनेक चित्रकारों को अपनी पारंपरिक कला को त्यागकर अन्य व्यवसायों को अपनाने के लिए विवश होना पड़ा। अठारहवीं शताब्दी में कांगड़ा के महाराजा संसारचंद के आश्रय में कार्यरत चित्रकार 'सिवा' द्वारा लिखित एक पत्र का उल्लेख मिलता है, जिसमें उन्होंने अपनी उपेक्षा से व्यथित होकर कांगड़ा दरबार का परित्याग कर अन्यत्र जाने का उल्लेख किया है। यह उदाहरण उस समय की परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है, जब कलाकारों को संरक्षण के अभाव में अपने केंद्रों से विस्थापित होना पड़ा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 1947 में भारत में स्वदेशी सरकार का गठन हुआ। इस नवपरिवेश में हिंदुस्तानी संगीत की विभिन्न विधाओं—गायन, वादन एवं नृत्य—को शैक्षणिक संस्थानों में एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्रदान की गई। तथापि, दुर्भाग्यवश

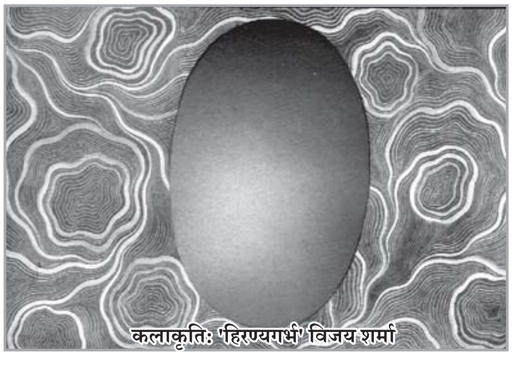

कलाकृतिः 'हिरण्यगर्भ' विजय शर्मा

कलाकृतिः 'नायक-नायिका के वेश में अंग्रेज', विजय शर्मा

सांस्कृतिक नीतियों के समुचित अभाव के कारण भारतीय लघु चित्रकला को अपेक्षित संरक्षण प्राप्त नहीं हो सका। परिणामस्वरूप, इस कला की उपेक्षा का क्रम निरंतर जारी रहा, जो आज भी विभिन्न स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है।

पाकिस्तान के लाहौर स्थित नेशनल कॉलेज ऑफ आर्ट्स में लघु चित्रकला को एक स्वतंत्र अकादमिक विषय के रूप में संस्थागत मान्यता प्राप्त है। यह संस्थान लघु चित्रकला के औपचारिक अध्ययन हेतु प्रमुख केंद्रों में सम्मिलित है, जहाँ इस कला परंपरा का अध्यापन पारंपरिक तकनीकों तथा समकालीन नवाचारों के समन्वित दृष्टिकोण के साथ किया जाता है। इस प्रकार, यह मॉडल परंपरा और आधुनिकता के संतुलित एकीकरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कलाकृतिः गार्गी चंदोला

उक्त मॉडल से प्रेरित होकर हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला द्वारा पहाड़ी चित्रकला में स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम प्रारंभ करने का प्रयास किया गया। तथापि, योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की अनुपलब्धता के कारण यह पहल अपने अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकी तथा कार्यक्रम मात्र औपचारिक डिग्री प्रदान करने तक सीमित रह गया। इस प्रकार की संरचनात्मक सीमाएँ कला के समुचित विकास एवं प्रसार में बाधक सिद्ध होती हैं।

वर्तमान परिदृश्य में, यद्यपि राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश जैसे क्षेत्रों में कुछ समर्पित कलाकार निजी स्तर पर पारंपरिक चित्रकला की परंपरा को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, तथापि संस्थागत समर्थन के अभाव में उनके प्रयास सीमित प्रभाव ही उत्पन्न कर पाते हैं। गार्गी चंदोला, जो एक स्व-शिक्षित कलाकार हैं और मुख्य रूप से ज़ीन बड़े चित्रों पर काम करती हैं, आजकल 'पहाड़ी चित्रकला शैली' में प्रशिक्षण ले रही हैं। एक कलाकार के तौर पर, वे अपनी कला में शक्ति और कोमलता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास कर रही हैं, जिसमें कामुकता के सूक्ष्म भाव भी झलकते हैं। आज के संदर्भ में, इस कला रूप को अब 'neo-miniatures' (नव-लघु कला) नाम दिया गया है। उनके गुरु पद्मश्री विजय शर्मा पहाड़ी शैली के ऐसे चित्रकार है, जो पारम्परिक चित्र शैलियों के अतिरिक्त समकालीन विषयों पर भी चित्र बनाते हैं।

कलाकारों की घटती संख्या को लेकर समय-समय पर सरकारी स्तर पर चिंता व्यक्त की जाती रही है तथा संरक्षण संबंधी नीतियों की घोषणा भी की जाती है, किंतु लघु चित्रकला के क्षेत्र में कार्यरत कलाकारों एवं संस्थाओं के लिए ठोस और प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेप का अभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि कलाकारों एवं पारंपरिक कलाओं के प्रति सरकारी उदासीनता उनके क्रमिक अवनयन का एक प्रमुख कारण है। वर्तमान संदर्भ में आवश्यक है कि सरकार इस दिशा में ठोस, दीर्घकालिक तथा संरचनात्मक प्रयास सुनिश्चित करे, जिससे पारंपरिक चित्रकला का संरक्षण, संवर्धन तथा सतत विकास संभव हो सके। वर्तमान परिदृश्य में भी भारत की अनेक सरकारी संस्थाओं में पारंपरिक कलाओं की शिक्षा हेतु पर्याप्त प्रावधान नहीं हैं। यद्यपि कलाओं के संरक्षण एवं संवर्धन के उद्देश्य से 'ललित कला अकादमी' जैसी संस्थाओं की स्थापना की गई, तथापि ये संस्थाएँ मुख्यतः समकालीन कलाओं के प्रोत्साहन तक ही सीमित रह गई हैं। देश के अधिकांश कला महाविद्यालयों में कला शिक्षा का प्रावधान तो है, परंतु वहाँ पारंपरिक चित्रकला के व्यवस्थित प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था का अभाव है। फलतः इन संस्थानों से प्रति वर्ष समकालीन कला से प्रभावित युवा कलाकार तो निकलते हैं, किन्तु पारंपरिक लघु चित्रकला की परंपरा निरंतर क्षीण होती जा रही है। यह स्थिति न केवल एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के लुप्त होने का संकेत देती है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि यदि समय रहते उचित नीतिगत हस्तक्षेप नहीं किया गया, तो यह अमूल्य परंपरा भविष्य में और अधिक संकटग्रस्त हो सकती है। अतः आवश्यक है कि भारतीय लघु चित्रकला जैसी पारंपरिक कलाओं के संरक्षण, संवर्धन एवं पुनरुत्थान के लिए ठोस सांस्कृतिक नीतियां बनायीं जाएँ, तथा उन्हें शैक्षणिक और संस्थागत स्तर पर समुचित स्थान प्रदान किया जाए, जिससे यह अमूल्य विरासत आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रूप से पहुँच सके।

सम्पर्कः कलाग्रामगांव ककीयां, डाकघर उटीप चम्बा 176318 हिमाचल प्रदेश

मोबा. 9418052580

■

छपाई कला से छापाकला तक

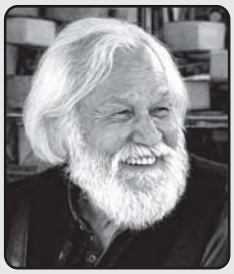

प्रो. श्याम शर्मा
(पद्मश्री सम्मान से विभूषित)

पद्मश्री प्रो. श्याम शर्मा भारतीय समकालीन छापाचित्र कला (प्रिंटमेकिंग) के एक अत्यंत प्रतिष्ठित और वरिष्ठ कलाकार हैं। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातक के रूप में प्राप्त की तथा आगे कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट, लखनऊ से कला शिक्षा हासिल की। अपने लंबे और सक्रिय कला-जीवन में सशक्त छापाचित्रकार होने के साथ आपने एक शिक्षक और प्रशासक के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट, पटना में प्रिंटमेकिंग विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष और बाद में प्राचार्य रहे। इसके अतिरिक्त, वे ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली की सामान्य परिषद के पूर्व सदस्य तथा नेशनल गेलरी आफ मोडर्न आर्ट के सलाहकार बोर्ड के अध्यक्ष भी रहे हैं। 1992 में आपने हेलसिंकी फेस्टिवल, फ़िनलैंड में भारत का प्रतिनिधित्व किया। भारतीय कला में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया है।

मानव सभ्यता संस्कृति के साथ छापाकला का विकास हुआ। एक ही आकृति की अनुकृति करने में अधिक समय और श्रम लगता था। उसके समाधान के लिए छापाकला माध्यम का विकास हुआ। प्राचीन काल से ही यह माध्यम जीवन से जुड़ा रहा। विश्व की प्राचीन जनजातीय संस्कृतियों में इस माध्यम का विशेष महत्व है। जब कबीले का मुखिया वृद्ध हो जाता था, तब उसके हाथ की छाप शिला खण्ड पर छापकर उसे याद किया जाने लगा। भारत में पर्व त्यौहार और मांगलिक उत्सवों पर महिलाएँ हाथ में रोली, चंदन, गेरू लगा कर शुभ प्रतीक चिह्न की तरह छापती थीं। कहीं कहीं गाय के गोबर पर भी हाथ के छापा बनाए जाते हैं। नई दुल्हन के गृह प्रवेश के समय पैरों में अलता लगा कर घर में लाया जाना शुभ माना जाता है। ये पद चिह्न भी छापाकला का जनजीवन से जुड़ा होने का संकेत देते हैं।

रामायण और महाभारत काल में भी छापाकला अनेक रूपों में प्रचलित थी। प्राचीन काल में वस्तु विनमय की प्रथा थी। उस समय पकी हुई मिट्टी की मुद्रा कालांतर में चमड़े और धातु की मुद्राओं में ढल कर प्रचलित हुई। राजा महाराजा, चक्रवर्ती सम्राट सब की अलग मुद्राएँ थी, जो राजाज्ञा-पत्रों पर लगाई जाती थीं। योद्धा और सैनिक भी अपने पास राज्य का प्रतीक चिह्न छाप कर रखते थे। सम्यता के विकास के साथ छापाकला की उपयोगिता बढ़ी। शताब्दी ईसापूर्व दक्षिण भारत के नागार्जुनकोंडा और बिहार के राजगृह क्षेत्र में सूती और रेशमी वस्त्र छापे जाते थे। जिनका उपयोग राजा, महाराजा और धनाड्य लोग ही करते थे। धीरे-धीरे समाज में छापाकला की उपयोगिता और विकसित हुई। मुगलकाल में बने लघुचित्रों के बॉर्डर छापाकला की स्टेंसिल पद्धति से छापे जाने लगे। स्टेंसिल के प्रयोग से मंदिरों, घरों में भूमि-अलंकरण होता था जिसे ब्रज क्षेत्र में सांझी लोककला के रूप में आज भी देखा जा सकता है।

आधुनिक छापाकला का प्रारम्भ छपाईकला के बाद हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में जर्मनी में छपाई कला प्रारम्भ हुई। सन् 1452 ई. में पहला छापाखाना जर्मनी के स्ट्रबुर्ग शहर में शुरू हुआ। इसमें पहली पुस्तक बाइबिल छपी, जिसके प्रत्येक पृष्ठ पर बयांलीस पंक्तियां थी। कालांतर में ईसा और बाइबिल की कथाओं की कथाओं के चित्र सपाट लकड़ी के पटेरे पर लोहे के टूल से

कलाकृति : प्रो. श्याम शर्मा

आकृतियां उकेर कर बनाए जाने लगे। ओल्डटेस्टामेन्ट में छापे के चित्र लकड़ी के ब्लॉक्स द्वारा ही छापे गए हैं। गे लकड़ी के ब्लॉक चेरी या अखरोट की लकड़ी पर उकेरे जाते थे। अनेक शिल्पी इस काम में दक्ष थे। चित्रकार केवल चित्र का डिज़ाइन बनाते थे।

भारत में सन 1556 में पहला छापाखाना गोवा में शुरू हुआ जिसमें ईसाई धर्म की शिक्षा की पुस्तकें अधिक छपती थीं। गोवा के सेंटपॉल्स कॉलेज प्रेस में पहली पुस्तक

सन् 1560 में छपी जिसका नाम कम्पोडियो स्पिरिचुअल डा विडा क्रिस्टा था। यहाँ पुर्तगाली, इतालवी भाषाओं में पुस्तकें छपी जिनमें लकड़ी पर बने ब्लॉक्स का उपयोग हुआ। ये ब्लॉक पुर्तगाल से बनकर यहाँ आते थे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के पूर्वांचल में बंगाल के श्रीरामपुर, हुगली, कलकत्ता तथा कटक में छापेखाने प्रारम्भ हुए। इनमें अंग्रेजी, बांग्ला तथा देवनागरी लिपि की पुस्तकें छपती थीं। बंगाल के प्रसिद्ध शिल्पी पंचानन कर्मकार देवनागरी लिपि के अक्षर तथा चित्र उकेरने वाले प्रख्यात कलाकार थे। इन्होंने काली घाट के पटचित्रों के लकड़ी के ब्लॉक तथा अन्य धार्मिक चित्रों के ब्लॉक भी बनाए। ये छापा चित्र बाजार में बिकते थे।

बिहार में पटना, कला का मुख्य केन्द्र था। यहाँ मुगल और यूरोपीय शैली के मेल से एक प्रान्तीय कला शैली का विकास हुआ, जिसे 'पटना कलम' कहा जाने लगा। इन चित्रों की देश विदेश में बहुत माँग थी, जिसे स्थानीय कलाकार पूरा करने में असमर्थ थे। प्रसिध्द अफीम का व्यापारी डी. आयली था, जो कलाकार भी था। उसने पटना में एक लिथोग्राफी प्रेस की स्थापना की, जिसमें पटना शैली के चित्र छापे जाते थे। इन चित्रों की मांग विश्व स्तर पर थी।

कलाकृति: प्रो. श्याम शर्मा

सन् 1830-40 के बीच बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा अन्य राज्यों में लिथोग्राफी प्रेस खुले । इनमें पुस्तकों के साथ-साथ बहुरंगी चित्र भी छपते थे, जो मुख्य रूप से धार्मिक होते थे। समय के साथ समाज में छापाकला की उपयोगिता बढ़ी। अंग्रेजों द्वारा स्थापित कला विद्यालयों में छापाकला विभाग खुलने लगे। छापाकला की उपयोगिता के कारण कला के छात्रों में इस माध्यम की रुचि बढ़ने लगी। राजा रवि वर्मा के धार्मिक चित्र छपाई के लिए मुम्बई में छापाखाना प्रारम्भ हुआ और चित्र ओलियोग्राफ माध्यम से छपने लगे। धीरे-धीरे छापा कला से समाज जुड़ने लगा। बंगाल के जागरूक कलाकारों ने इस माध्यम को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम बना लिया।

यूरोपीय चित्रकार होल्बिन ने सर्वप्रथम अपने मूलचित्र के ब्लॉक स्वयं उकेर कर नई परम्परा प्रारम्भ की। उससे पूर्व कलाकारों के चित्रों के ब्लॉक शिल्पकार बनाते थे। प्रसिद्ध छापाकार ड्यूरर ने छापाकला में नए प्रयोग किए। समानांतर रेखाओं से छापाचित्रों में प्रकाश - छाया का प्रभाव पैदा किया। प्रसिद्ध कला इतिहासकार डगलस पेर्सी ब्लिस ने अपनी पुस्तक " ए हिस्ट्री ऑफ वुड एन्ग्रेविंग ' में ड्यूटरर को रेखाओं का जादूगर कहा है। कलांतर में प्रसिद्ध चित्रकार गोंगा (quagan) ने काष्ठ छापों में नए प्रयोग किए। उनकी रेखाओं में थिरकन है, गति है, मौलिक सोच है। इनसे प्रभावित होकर छापाकार एमिल बरनार्ड, डी.रेन, डूफी, हरमन पोल आदि ने छापा चित्रों में नए प्रयोग किए। नए सौंदर्यबोध का सृजन किया। धीरे-धीरे छापाकला स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम बन गयी।

फोटोग्राफी माध्यम का प्रभाव छापाकला पर पड़ना स्वाभाविक था। कला और तकनीक का नया रूप ' इंटैग्लियो पद्यति' प्रारम्भ हुई। इस पद्धति में ब्लॉक पर उकेरी रेखाओं के अन्दर रंग भर कर उभरा हुआ प्रभाव पैदा किया जाता है। यह ब्लॉक जिंक शीट या कॉपर शीट पर एसिड के प्रयोग से बनते रहते। इस इंटैग्लियों माध्यम में लाइन इनग्रेविंग, ड्राई पाइंट एचिंग, एक्वा टिंट, मेजो टिंट आदि तकनीकों का विकास हुआ। जियोग्राफी माध्यम के आने से छापाकला में नए आयाम सामने आए । कलाकारों ने अपनी मौलिक अभिव्यक्ति के लिए इस माध्यम का प्रयोग अपने नए आंदाज में किया है। कालांतर में छापाकार हेटर ने पेरिस में अटेलियर 17 की स्थापना सन् 1919 में की। इसमें विश्व भर के छापाकार छापाकला में नए-नए प्रयोग करने आने लगे । भारत के कलाकार कृष्णा ने यहीं रह कर विस्कोसिटी तकनीक का विकास किया। सेरीग्राफी (सिल्कस्क्रीन) माध्यम ने तो छापाकला को नयी ऊँचाइयां दी। अब छापाकला में विज्ञान, प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने लगा है। कम्प्यूटर के प्रयोग ने 'डिजिटल छापे' बनाने की नयी परम्परा प्रारम्भ की है, जो स्वागत योग्य है।

चाक्षुष कला के क्षेत्र में छापाकला का विशिष्ट स्थान है। यह मौलिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अपने सीमित रंग और रेखाओं से यह इच्छित प्रभाव पैदा करने की क्षमता रखता है। यह जाने, अनजाने पहलुओं को उजागर करने में समर्थ है। यह चैम्बर म्यूजिक (कक्ष संगीत) है, जिसका आनंद लेने की क्षमता दर्शकों को पैदा करनी है। आज पूरे विश्व में छापाकला की राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय कला प्रदर्शनियां आयोजित हो रहीं हैं। सरकारी और व्यक्तिगत स्तर पर छापाकला की गतिविधियों का विकास देश में हो रहा है। भारतीय छापाकारों के अथक प्रयास और मौलिक सोच के कारण यह माध्यम भी जनप्रिय माध्यम के रूप में उत्तरोत्तर समृद्ध होगा ऐसा विश्वास है।

संपर्क : 2 ए /135 न्यू. पाटलिपुत्र कॉलोनी , पटना-800013
M- 9931723528
email-ssharmaptn@gmail.com

■

अवस्थित : गति, चित्त और भारतीय अमूर्तन का अंतर्संबंध...

अमित कल्ला

अमित कल्ला समकालीन चित्रकार, कवि और सक्रिय संस्कृतिकर्मी हैं। उनकी सृजनात्मक साधना शब्द, रंग और विचार—तीनों माध्यमों में समान रूप से अभिव्यक्त होती है। राजस्थान की सांस्कृतिक भूमि और भारतीय दार्शनिक चिंतन ने उनकी रचना-दृष्टि को गहरी संवेदनात्मकता प्रदान की है।उनकी रचनाएं आत्मबोध, काल चिंतन और अस्तित्व के सूक्ष्म प्रश्नों से संवाद करती हैं, वहीं उनकी अमूर्त चित्रकला में चेतना, ऊर्जा और आध्यात्मिक अनुभूति का स्पंदन दिखाई देता है। अद्वैत वेदांत, शून्य और ध्यानमयी अनुभव उनके रंग-संयोजन तथा संरचनात्मक प्रयोगों में विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं। वे राष्ट्रीय कला मंच, जयपुर प्रांत के प्रमुख के रूप में कला, संस्कृति और समाज के मध्य संवाद स्थापित करने की दिशा में सक्रिय हैं। प्रदर्शनियों, काव्य-पाठों और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से उनका सतत प्रयास कला को केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि चेतना, संवेदना और सांस्कृतिक आत्मबोध का माध्यम बनाता है।

अवस्थित

गति बहती रही
चित्त ठहरा रहा
रेखा वहीं जन्मी
जहाँ विस्तार हुआ, और
देखे हुए को देखने की जल्दी
समाप्त हुई।

अवस्थित होना किसी स्थिर निष्क्रियता का पर्याय नहीं है, यह उस सूक्ष्म स्थिति का बोध है जिसमें गति और ठहराव परस्पर विरोधी न रहकर एक-दूसरे के अंतरनिहित आयाम बन जाते हैं। गति का बाह्य रूप दृश्य में प्रकट होता है, पर उसका मूलाधार चित्त के भीतर स्थित रहता है। जब चित्त अपने केंद्र से विचलित नहीं होता, तब रेखा जन्म लेती है वह रेखा जो विस्तार की परिणति भी है और संकेंद्रण का प्रारंभ भी। देखने की उतावली जब समाप्त होती है, तभी दृश्य का अनुभव संभव होता है, अन्यथा दृष्टि केवल सतहों से टकराती रहती है।

वह कहीं बाहर नहीं वह भीतर ही जन्म लेती है जिसे सामान्यतः ठहराव समझा जाता है, जो जड़ता नहीं है, गति का ही एक अनन्य गहन रूपक है। जहाँ अवस्थित होना, उसी क्षण का नाम है जब चित्त बहते हुए भी अपने केंद्र से विचलित नहीं होता। भारतीय दृष्टि में चित्त कोई निजी मनोवैज्ञानिक संरचना नहीं, बल्कि एक सामूहिक स्मृति क्षेत्र है, जहाँ लोक, तंत्र, दर्शन, साधना और समय जैसे अनेक तत्व, बिम्ब प्रतिबिंब रूप और प्रमाण बनकर एक-दूसरे में घुलते रहते हैं। अमूर्त रेखाएँ इसी चित्त क्षेत्र में लीला करती उभरती हैं, वे न तो केवल दृश्य हैं, न ही मात्र अभिव्यक्ति वे दृग-सी संकेत हैं, उन अवस्थाओं के जिन्हें शब्दों में बाँधना सदैव अधूरा रहा है। वे दृश्य वस्तुओं का अनुकरण नहीं करतीं, बल्कि उन अवस्थाओं की ओर संकेत करती हैं जिन्हें प्रत्यक्ष भाषा में निरूपित करना संभव नहीं होता। इस प्रकार अमूर्तन यहाँ अभिव्यक्ति का विकल्प नहीं, अनुभव का माध्यम बन जाता है।

हमारी भारतीय कला परंपरा में रेखा कभी किसी वस्तु, आकार को बाँधने के लिए नहीं बनी, वह आरंभ से ही प्रवाह का प्रतिमानक माध्यम रही है हमारे शैल चित्रों से लेकर तांत्रिक यंत्रों, मंडलों तक, लोक-आलेखों से लेकर समकालीन अमूर्तन तक रेखा किसी वस्तु के चारों ओर नहीं घूमती, बल्कि चित्त के भीतर घटती है, स्वयं को बूंद बूंद बरतती है। वह रूपकृति को परिभाषित नहीं करती, बल्कि उसमें व्याप्त गहरे अनुभव को आमंत्रित करती है। इसीलिए भारतीय अमूर्तन पश्चिमी अमूर्तन की तरह वस्तु विसर्जन का विद्रोह नहीं, बल्कि वस्तु अतिक्रमण की एक सहज प्रक्रिया है। यहाँ आकृति की आकांक्षा छोड़ी जाती है. उसे नकारने के लिए नहीं अपितु, विसर्जन के भावों को अनुनयित कर तत्त्व सार तक पहुँचने के लिए।

हमारे लिए चित्त कोई निराकार शून्य नहीं है, बल्कि स्मृति, संस्कार और दृष्टि से निर्मित एक सघन आंतरिक क्षेत्र है। व्यष्टि से समष्टि तक इस क्षेत्र की अपनी सतहे हैं, जिन पर समय के साथ लगातार संकेत उभरते रहते हैं। ये संकेत कभी लोकानुभव की मिट्टी से रचे जाते हैं, कभी बीजों की तरह संकेंद्रित दिखाई देते हैं, और कभी मात्र रंग के अवशेषों के रूप में उपस्थित रहते हैं। इनका स्वरूप स्थायी नहीं होता, किंतु इनकी छाप चित्त में दूर तक जाती है। वे किसी देखने वाले से त्वरित प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं करते, न ही स्वयं को प्रकट करने का आग्रह रखते हैं। वे केवल उपस्थित रहते हैं, इस प्रतीक्षा में कि जब चित्त का सुकोमल धरातल स्वयं तैयार हो, तभी उनका अर्थ धीरे-धीरे खुल सके।

उपनिषदों की दृष्टि से अगर हम देखने की कोशिश करें तो यह कोई स्थिर अवस्था नहीं, बल्कि ठहराव में

स्पंदित गति ही है; जैसे "निश्चलं च चलं चैव जो स्थिर है वही चलता है। भारतीय अमूर्तन में गति रेखा की दौड़ नहीं, चित्त की धड़कन है यहाँ ब्रश का उठना-रुकना प्राण के आवागमन जैसा है, और कैनवास आकाश है जो न धारण करने वाला है न रोकने वाला। माण्डूक्य उपनिषद में रेखांकित तुरीय अवस्था की तरह चित्र दृश्य के पार ही तो टिकता है रूप बनते हैं पर किसी रूपत्व में अटकते नहीं। बिंदु रेखा में खुलता है, रेखा तरंग बनती है, तरंग नाद में विलीन होती है यही सेमीओटिक्स है जहाँ चिह्न अर्थ नहीं बताता अपितु अर्थ को घटित करता है। प्रतीक यहाँ प्रतिमाएँ नहीं, प्रक्रियाएँ हैं घड़ा देह का नहीं, शून्य का रूपक; वृत्त कालचक्र नहीं, अनादि अनंत का संकेत है और रिक्तता शून्य नहीं, पूर्णता की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार भारतीय अमूर्तन अवस्थित होकर भी गतिमान है एक ऐसी साधना जहाँ दृश्य उपनिषदिक प्रश्न बन जाता है, और उत्तर, मौन में स्वयं प्रकाश जैसा प्रकट।

समकालीन भारतीय अमूर्तन की समस्या यह नहीं है कि वह नया क्या कह रहा है, बल्कि यह है कि वह कितना स्मरण कर पा रहा है। स्मरण किसी बीते हुए रूप का नहीं, बल्कि उस दृष्टि का, जिसने कभी रूप को जन्म दिया था। अमूर्त रेखाएँ, कला-इतिहास की किसी शैलीगत श्रेणी में समाने से आने को इंकार कर देती हैं। वे न आधुनिकता की जल्दबाज़ी में हैं, न परंपरा की जड़ता में। वे अनेकांत अवस्थित हैं जहाँ गति और स्थिरता दोनों हैं।

भारतीय चित्त द्वैत में सहज नहीं रहता। वह सदा जोड़ता है दृश्य को अदृश्य से देह को चेतना से, रेखा को स्पंदन से। अमूर्त रेखाएँ इसी जोड़ की दृश्यात्मक परिणति हैं। वे बताती हैं कि देखने की क्रिया केवल आँखों तक सीमित नहीं है वह संपूर्ण अस्तित्व की सहभागिता है। जब दर्शक ऐसी रेखाओं के सामने खड़ा होता है, तो वह केवल देखता नहीं वह स्वयं देखे जाने लगता है। उसकी अपनी आंतरिक संरचनाएँ सक्रिय हो उठती हैं. और चित्र एक दर्पण जैसा सा व्यवहार करने लगता है।

समकालीन समय में, जब समूची दृश्य संस्कृति तीव्र आपाधापी में है तब भारतीय अमूर्तन एक धीमा प्रस्ताव रखता है। वह कहता है रुको. ठहरो, भीतर देखो। जिसमें अवस्थित रहना आज वह एक क्रांतिकारी क्रिया है। अमूर्त रेखाएँ इस ठहराव की दृश्य भाषा बन जाती हैं। वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचातीं, बल्कि अंतहृदय के कल्प-प्रकल्पों को जीवित रखती हैं। और शायद यही भारतीय कला की सबसे बड़ी ताकत रही है जिसमें उत्तर देना नहीं, प्रश्न को साधना अनुक्रम है। वस्तुतः अवस्थित होना किसी अंतिम स्थिति को प्राप्त करना नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया का नाम है। गति चलती रहती है, चित्त प्रतिक्रिया करता रहता है, और अमूर्तन इस संबंध का दृश्य रूप बनता रहता है। यह दृश्य रूप कभी पूर्ण नहीं होता, और शायद होना भी नहीं चाहिए। क्योंकि पूर्णता स्थिरता का भ्रम देती है, जबकि भारतीय चित्त प्रवाह में विश्वास करता है।

इस प्रकार, गति, चित्त और भारतीय अमूर्तन का अंतर्संबंध किसी सिद्धांत में सीमित नहीं किया जा सकता। वह गहरे अनुभव के रूप में घटता है स्वयं कलाकार के लिए और दर्शक के लिए भी। यही कारण है कि भारतीय अमूर्तन आज भी प्रासंगिक है, और शायद भविष्य में और अधिक होगा। क्योंकि जब तक चित्त गतिशील है, और जब तक उसे अवस्थित रहने की आवश्यकता है, तब तक अमूर्त रेखाएँ जन्म लेती रहेंगी अपने बोध के साथ नए-नए रूपों में।

अमूर्त चित्रों में चित्त का उभरना किसी प्रत्यक्ष कथा या पहचान योग्य आकृति के माध्यम से नहीं होता। वहाँ चित्त संकेतों, तनावों, रिक्तियों और सतत प्रक्रिया के रूप में प्रकट होता है। समकालीन चित्रकला में यह उभार एक दृश्य घटना कम और एक अनुभवात्मक घटना अधिक है। इसे समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि अमूर्तन में कलाकार क्या दिखाता है से अधिक कैसे घटित होने देता है, वास्तव में यही चित्त का क्षेत्र भी है।

वहीं सौंदर्यशास्त्र की परंपरा में 'देखना' केवल देखने भर की क्रिया नहीं है यह एक आह्वान है। 'दर्शन' एक पवित्र दृष्टि है, केवल देखने का नहीं बल्कि देखे जाने का अनुभव, एक समवेत प्रकटता। यह आत्मदृष्टि, 'अंतर्दृष्टि' का खुलना है। जो देखना सरल प्रतीत होता है, वह भीतर की गहन ध्यानमग्नता का अभ्यास होता है। दृश्य और द्रष्टा के बीच की दूरी केवल भौतिक नहीं, बल्कि गहन आध्यात्मिक होती है सतह से आत्मा की ओर का एक अवरोहण।

न्याय दर्शन में इस अंतर्दृष्टि को 'अनुमिति कहा गया है, एक ऐसा ज्ञान जो प्रत्यक्ष अनुमान. उपमान, और शब्द के योग से पकता है। यह सम्यक दृष्टि हमें सिखाती है कि यथार्थदर्शिता रूप तक सीमित नहीं होती। यह उस परदे को चीरती है जो दृश्य और भाव के बीच खिंचा होता है, और आत्मा तक पहुँचती है। स्वयं 'दर्शन' शब्द, एक आंतरिक प्रकाश की ध्वनि है यह एक ऐसा क्षण जहाँ देखना ही दीक्षा बन जाता है।

भारतीय संदर्भ में चित्त केवल निजी मन या भावना नहीं है। वह स्मृति, लोकबोध, समय, संस्कार, वैचारिक परंपरा और हमारी वैदिक अनुभूति का संयुक्त विस्तार है। जब समकालीन कलाकार अमूर्त चित्र रचता है, तो वह किसी वस्तु को चित्रित नहीं करता, बल्कि इस संयुक्त विस्तार के परिकर को स्पंदित कर सक्रिय करता है। इसीलिए अमूर्त चित्रों में बार-बार एक अवस्थित आकल्पन भी दिखाई देता है, कैनवास की सतह पर रेखा आगे बढ़ती है, फिर ठहर जाती है, रंग फैलता है. फिर स्वयं को समेट लेता है। यही ठहराव और गति का संतुलन चित्त को दृश्य बनाता है।

उदाहरण के लिए, वी. एस. गायतोंडे के चित्रों को देखें तो वहाँ न कोई स्पष्ट आकृति है. न कोई कथात्मक संकेत। फिर भी दर्शक एक गहरी आंतरिक उपस्थिति अनुभव करता है। गायतोंडे रंग की परतों को इस प्रकार जमाते हैं कि वे किसी सतह की तरह नहीं, बल्कि किसी आंतरिक क्षेत्र की तरह व्यवहार करने लगती हैं। रंग के बीच बने सूक्ष्म अंतराल, लगभग अदृश्य रेखाएँ ये सभी चित्त की गति के संकेत हैं। यहाँ चित्त किसी भावनात्मक विस्फोट की तरह नहीं, बल्कि धीमी, संकेंद्रित चेतना की तरह उभरता है।

इसी तरह रामकुमार के चित्रों में अमूर्तन और स्मृति का संबंध विशेष रूप से दिखाई देता है। उनके नगर दृश्य धीरे-धीरे पहचान खोते हुए अमूर्तन की ओर बढ़ते हैं। इमारतें, गलियों संरचनाएँ सब हैं, पर स्पष्ट नहीं। यह अस्पष्टता किसी तकनीकी प्रयोग का परिणाम नहीं. बल्कि चित्त की उस अवस्था का संकेत है जहाँ स्मृति और वर्तमान एक-दूसरे में घुल जाते हैं। यहाँ चित्त सामाजिक और ऐतिहासिक अनुभवों से बना हुआ दिखाई देता है एक ऐसा चित्त जो शहर में रहते हुए भी भीतर से अकेला है।

इसी परिप्रेक्ष्य में यदि प्रभाकर कॉलते के अमूर्तन की ओर दृष्टि की जाए, तो वहाँ गति. चित्त और अवस्थितता का संबंध एक भिन्न, किंतु गहन संवेदनात्मक रूप में प्रकट होता है। कॉलते की चित्र भाषा में रंग केवल दृश्य पदार्थ नहीं रहते; वे ऊर्जा क्षेत्र बन जाते हैं ऐसे क्षेत्र जिनमें रूप बनने से पहले ही विलीन हो जाता है। उनके कैनवास में अक्सर दिखाई देने वाली गोलाकार या दीर्घवृत्तीय संरचनाएँ किसी वस्तुगत आकृति का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, बल्कि चित्त की अंतर्गति का संकेत देती हैं जैसे ध्यान में उठती और पुनः समाहित होती तरंगें।

उनके कार्यों में रंग की परते स्थिर सतह की तरह नहीं बैठतीं, वे भीतर से दीप्त, पारदर्शी और श्वासमान प्रतीत होती हैं। यह गुण उन्हें मात्र रंग-संयोजन से आगे ले जाकर अनुभव क्षेत्र का रूप देता है। रंगों के मध्य स्थित रिक्त स्थान उतने ही सक्रिय हैं जितने रंग स्वयं मानो दृश्य में उपस्थित मौन भी उतना ही कथ्य हो। यहाँ अमूर्तन किसी संरचनात्मक विघटन का परिणाम नहीं, बल्कि उस अवस्थित स्थिति का विस्तार है जिसमें कलाकार गति को बाह्य इशारे से नहीं, आंतरिक स्पंदन से रचता है।

कॉलते की चित्र संरचना में रेखा प्रायः स्पष्ट रूप में प्रकट नहीं होती. परंतु उसकी अनुपस्थिति ही उसकी उपस्थिति का संकेत बन जाती है। रंग क्षेत्रों के किनारों पर जो सूक्ष्म संक्रमण है. वही रेखा का स्थान ग्रहण करता है एक ऐसी रेखा जो खींची नहीं गई, बल्कि घटित हुई है। यह घटित होना भारतीय अमूर्तन की उसी परंपरा से जुड़ता है जहाँ रूप को सीमित करने के बजाय अनुभूति को प्रसारित किया जाता है। उनके चित्रों में प्रकाश और गहनता का संतुलन इस प्रकार कार्य करता है कि दर्शक केवल दृश्य नहीं देखता, बल्कि उसमें प्रवेश करता है और यह प्रवेश किसी कथात्मक अर्थ तक नहीं, बल्कि आत्म संवेदी अनुभव तक पहुँचाता है।

यदि गायतोंडे के यहाँ मौन ध्यान का अवस्थित विस्तार है, और रामकुमार के यहाँ स्मृति-क्षेत्र का धुंधलापन, तो कॉलते के यहाँ अमूर्तन चित्त की तरंगात्मक उपस्थिति के रूप में उभरता है एक ऐसा क्षेत्र जहाँ रंग ध्यान बिंदुओं की तरह सक्रिय होते हैं। उनके कैनवास भारतीय तांत्रिक दृष्टि के मंडलीय बोध से दूर नहीं लगते, वे प्रत्यक्ष यंत्र नहीं हैं, पर उनकी संरचना ध्यान केंद्रित अनुभव उत्पन्न करती है। यहाँ दर्शक का चित्त अनायास ही केंद्रित होने लगता है. जैसे किसी वृत्त के भीतर दृष्टि टिकते-टिकते स्वयं भीतर उतर जाए।

इस प्रकार प्रभाकर कॉलते का अमूर्तन भारतीय संदर्भ में अवस्थितता की अवधारणा को पुष्ट करता है जहाँ गति दृश्य विस्फोट नहीं, बल्कि आंतरिक विस्तार है जहाँ रंग चित्त के संवहन माध्यम हैं, और जहाँ चित्र देखने की वस्तु नहीं, बल्कि अनुभव का स्थल बन जाता है। उनके कार्य यह संकेत देते हैं कि अमूर्तन की भारतीय यात्रा केवल रूप त्याग की कथा नहीं, बल्कि चित्त की ऊर्जा को दृश्य में रूपांतरित करने की साधना है।

समकालीन भारतीय अमूर्तन में तांत्रिक और लोक प्रभाव भी चित्त को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर, कई समकालीन कलाकार यंत्र, मंडल या बीजाक्षर से प्रेरित संरचनाओं का प्रयोग करते हैं, पर उन्हें प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिखाते। रेखाएँ सघन होती हैं, बार-बार दोहराई जाती हैं. मानो ध्यान की प्रक्रिया हो। यह दोहराव चित्त को स्थिर करने का प्रयास है। दर्शक जब ऐसी रचनाओं के सामने ठहरता है. तो वह किसी अर्थ को पकड़ने से पहले स्वयं की मानसिक गति को महसूस करने लगता है यही चित्त का उभार है।

लोक-परंपरा से जुड़ी यह अमूर्तता कोई नई खोज नहीं, बल्कि स्मृति की पुनरावृत्ति है वही स्मृति जो देह से पहले धरती में रहती है। मांडना, अल्पना या कोलम में खिंची रेखाएँ टिकने के लिए नहीं, जागने के लिए होती हैं। वे जानती हैं कि स्थायित्व उनका धर्म नहीं उनका सत्य क्षण में है, जैसे यज्ञ की आहुति, जैसे श्वास का आना-जाना। "लोक से लोकातीत" मांडना कार्यशाला में, पिछले दिनों, हमने इसे किसी सिद्धांत की तरह नहीं बल्कि देहगत अनुभव की तरह अनुभव किया एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें कलाकार का अहं गलकर सामूहिक स्मृति में बदल जाता है, रेखा व्यक्तिगत हस्ताक्षर नहीं रहती, वह पीढ़ियों की चाल बन जाती है। समकालीन अमूर्तन जब इस लोकबोध को अपने भीतर ग्रहण करता है, तो चित्र सादगी से नहीं, संयम से उजास पाता है, महत्वपूर्ण यह है कि अमूर्त चित्रों में चित्त दर्शक के स्तर पर अधिक सक्रिय होता है। अमूर्तन दर्शक से त्वरित समझ की अपेक्षा नहीं करता। वह आग्रह नहीं, बल्कि प्रतीक्षा करता है। जो दर्शक जल्दी निष्कर्ष चाहता है, उसके लिए चित्र बंद रहता है। जो दर्शक अपने भीतर की गति को थोड़ा धीमा कर देता है. उसके लिए चित्र खुलने लगता है इस खुलने की प्रक्रिया में दर्शक का अपना चित्त चित्र का हिस्सा बन जाता है।

संपर्क : 43, जोशी कॉलोनी, गली नं. 15
आदर्श बाज़ार, टोंक फाटक, जयपुर – 302015
मोबाइल : 9413692123

■

कला-चिन्तन

यथार्थ की अद्भुत कला: विजेंद्र शर्मा की तूलिका का जादू

चन्द्र मोहन

गुरुग्राम निवासी श्री चन्द्र मोहन विज्ञान और कला के दुर्लभ संयोग के अनूठे साधक एवं चिन्तक और बहु आयामी प्रतिभा के धनी रक्षा मंत्रालय से सेवानिवृत्त हुए पेशे से इंजीनियर रहे किन्तु समानान्तर रूप से कलाओं के अनेक रूपों को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर उसे बख़ूबी संजीदगी से जीते हैं। आपने कई वर्षों तक आकाशवाणी, दिल्ली के प्रातःकालीन सजीव (लाइव) प्रसारित प्रतिष्ठित कार्यक्रम "आज सुबह" के प्रस्तोता और विभिन्न विषयों पर वृत्त रूपक (फीचर) का निर्माण कर 12 आकाशवाणी वार्षिक पुरस्कार भी प्राप्त किए। 100 से भी अधिक विभिन्न विधाओं कला-संस्कृति, चिकित्सा विज्ञानं, राजनीति,फ़िल्मी एवं अन्य क्षेत्रों की कई मशहूर हस्तियों से साक्षात्कार कर उन्हें कला-जगत के दिलों तक पहुंचाया। एक बेहतरीन लेखक, कार्टूनिस्ट और ग्राफिक डिज़ाइनर के रूप में भी आपके विविध प्रकाशन एवं कार्य उल्लेखनीय हैं ।...

कला - जगत में कुछ कलाकार अपनी विशिष्ट शैली से पहचाने जाते हैं तो कुछ अपनी मौलिक सोच से लेकिन विजेंद्र शर्मा उन विरले साधकों में से हैं, जिन्होंने अपनी तूलिका के माध्यम से यथार्थ और भ्रम के बीच की महीन रेखा को ही मिटा दिया है। दिल्ली कॉलेज़ ऑफ आर्ट के स्वर्णपदक-विजेता और अंतर्राष्ट्रीय ख़्याति प्राप्त यह चित्रकार केवल रंगों का संयोजन नहीं करते बल्कि एक ऐसा 'विज़ुअल इल्यूजन' (दृष्टि-भ्रम) रचते हैं, जो दर्शक को यह सोचने पर मज़बूर कर देता है कि वह कैनवास पर उकेरा गया रंग देख रहा है या साक्षात् वास्तविकता? उनकी कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता है उनका '3D इफेक्ट' और अति-यथार्थवाद (Hyper-realism) है, जो निर्जीव कैनवास में भी प्राण फूँक देता है।

विजेंद्र शर्मा की कला-यात्रा किसी फ़िल्मी पटकथा से कम रोमांचक नहीं है। एक वक़्त था जब उनके चित्रों की बिक्री महज़ 5 या 10 रुपये से शुरू हुई थी लेकिन आज उनकी कलाकृतियाँ लाखों के आँकड़े को छूती हैं। कला के प्रति उनका यह जुनून बचपन से ही था, हालाँकि प्रारंभ में वे सेना में भर्ती होना चाहते थे या फ़िर सन्यास की राह पर निकल जाने की इच्छा रखते थे। आँखों पर चश्मा लग जाने के कारण सेना के द्वार तो बंद हो गए और सन्यास की परिभाषा समय के साथ स्वयम् ही बदल गई। उन्होंने

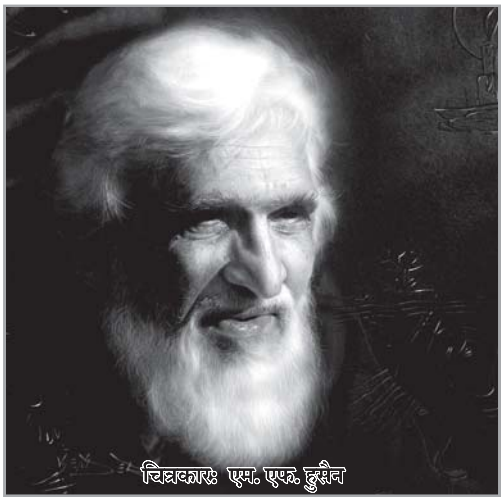

चित्रकार: एम. एफ. हुसैन

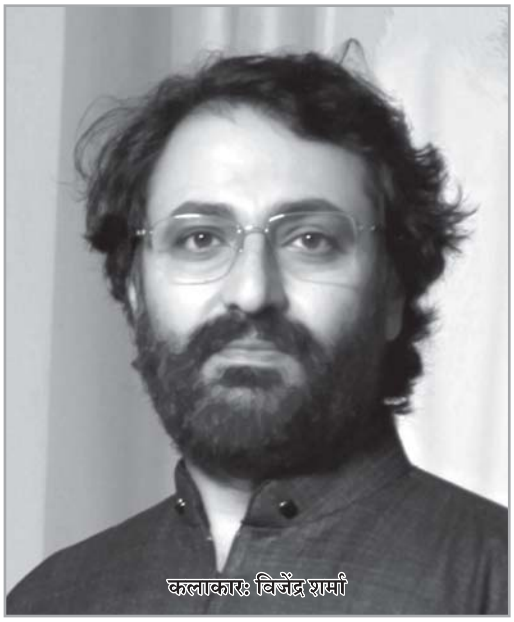

कलाकार: विजेंद्र शर्मा

आत्मसात् किया कि केवल गेरुआ वस्त्र धारण करना ही सन्यास नहीं है बल्कि अपनी कला के प्रति पूर्ण समर्पण भी एक प्रकार का योग है। पिता की इच्छा के विरुद्ध जाकर उन्होंने चित्रकारी को अपना केरियर बनाया और अपनी अटूट लगन से इसे सिद्ध भी कर दिखाया।

शर्मा की चित्रण-शैली की सबसे अनूठी विशेषता है फ्रेंच के 'ट्रॉम्प लोइल' (Trompe-l'oeil) अथवा अंग्रेज़ी में “deceives the eyes ” यानि जिसका शाब्दिक अर्थ है 'आँख को धोखा देना'। बचपन से ही आध्यात्मिक साधना में लीन रहने के कारण वे इस अनन्त अस्तित्व और उसकी माया से गहरे प्रभावित रहे हैं। वे परमात्मा को 'अस्तित्व' कहना पसंद करते हैं और इसी महामाया के खेल ने उन्हें इस जादुई शैली के लिए प्रेरित किया। उनकी पेंटिंग्स में वास्तविकता का ऐसा भ्रम पैदा होता है कि दर्शक वस्तु को छूकर देखना चाहता है। चाहे वह कैनवास पर बना हुआ एक सेब हो, जिसे उठा लेने की इच्छा जाग जाए अथवा भीगे हुए कपड़ों से झलकती शारीरिक संरचना की बारीक़ी, विजेंद्र हर विवरण एवम् दृश्य को सूक्ष्मता के साथ उकेरते हैं। उनके इस जादुई स्पर्श

राष्ट्रपति कलाम साहब चित्रकार विजेन्द्र शर्मा द्वारा बनाई गई पेंटिंग में उस लाल रंग की डोरी को खोलने की कोशिश करते हुए जो कि वहां पर थी ही नहीं, बल्कि कलाकार द्वारा पेंट की गई थी।

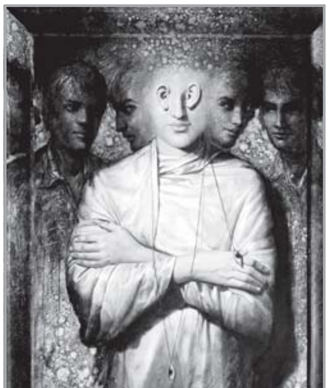

SPECTATOR -
oil on canvas. 33 x 48 inches

धर्म, अर्थ, काम,
मोक्ष - कैनवास पर तेल रंग. 1998

का एक ऐतिहासिक उदाहरण राष्ट्रपति भवन में देखने को मिला था, जब पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम उनकी पेंटिंग 'जीवन का रहस्य' पर बने चित्रित रिबन को वास्तविक समझकर खोलने की कोशिश करने लगे थे। कलाम साहब ने इस अद्भुत हुनर को देखकर उन्हें 'जादूगर' की उपाधि से नवाज़ा था।

उनकी कला का एक और दिलचस्प और मौलिक पहलू 'पेंटेड फ्रेम' है। कॉलेज़ के दिनों में जब आर्थिक तंगी के कारण वे फ्रेम खरीदने में असमर्थ थे, तब उन्होंने अपनी इसी कमज़ोरी को अपनी सबसे बड़ी ताक़त बना लिया। संघर्ष को प्रेम करने वाले विजेंद्र का मानना है कि चुनौती जितनी बड़ी होगी, सफलता भी उतनी ही भव्य होगी। इसी सोच के साथ उन्होंने कैनवास के किनारों पर ही रंगों से फ्रेम बनाना शुरू कर दिया। बाद में वे फ्रेमों पर ऐसी वस्तुएँ चित्रित करते हैं, जैसे कोई गुब्बारा या फ़ूल, जो देखने में ऐसा लगता है जैसे फ्रेम के बाहर वास्तविक दुनिया में लटके या रखे हों। त्रिवेणी कला संगम में एक बच्चे द्वारा उनकी पेंटिंग से फ़ूल उठाने की कोशिश, जिसे स्तम्भकार ने स्वयम् देखा, इसी कलात्मक पराकाष्ठा का जीवन्त प्रमाण है। उनके लिए फ्रेम केवल एक सीमा ही नहीं बल्कि वास्तविक दुनिया का विस्तार है।

CLOWN The Seeker of Love -
oil on canvas, 33 x 45 inches

विजेंद्र शर्मा के विषयों का दायरा अत्यन्त विस्तृत है लेकिन उनके केन्द्र में सदैव 'इंसान' रहता है। वे मानव-स्वभाव के अनन्त रंगों- मनोविज्ञान, व्यंग्य, प्रेम, आध्यात्म और समाज के पाखंड को कैनवास पर उतारते हैं। उनकी दृष्टि एक एक्सरे की तरह सूक्ष्म है, जो न केवल बाहरी सतह को देखती है अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराइयों को भी पकड़ लेती है। जब वे पोर्ट्रेट बनाते हैं तो वह केवल शक्ल ही नहीं बल्कि आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. कलाम के पोर्ट्रेट में जहाँ उन्होंने तिरंगा, अग्नि मिसाइल और क़िताबों के माध्यम से उनके वैज्ञानिक व्यक्तित्व को उभारा, वहीं प्रणव मुखर्जी के चित्र में अशोक स्तम्भ और संविधान के साथ उनके गंभीर स्वभाव को व्यक्त किया। प्रसिद्ध चित्रकार एम.एफ. हुसैन का उन्होंने जो वॉटर कलर पोर्ट्रेट बनाया, वह इतना विस्तृत है कि हुसैन साहब ने स्वयम् स्वीकार किया कि उन्होंने अपने जीवन में ऐसी बारीक़ी वाला चित्र कभी नहीं देखा। उस चित्र में हुसैन साहब के सिर और दाढ़ी के सफ़ेद बालों तक को मैग्नीफाइंग ग्लास से बहुत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

आज के तकनीकी युग में जहाँ AI (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) भी भ्रम पैदा करने वाले दृश्य रच रहा है, विजेंद्र शर्मा इसे एक चुनौती के बजाय एक शक्तिशाली आविष्कार मानते हैं। उनका मानना है कि अग्नि की खोज से लेकर कम्प्यूटर तक हर नए आविष्कार का प्रारम्भ में विरोध हुआ लेकिन सृजनशील लोगों ने उन्हें अपनाकर समाज को नई ऊँचाइयाँ दीं। वे स्वयम् प्रयोगवादी कलाकार हैं और मानते हैं कि तकनीक का कुशल इस्तेमाल समाज को और भी शानदार और प्रगतिशील कला दे सकता है।

दुनिया भर के महान् कला-संग्रहालयों की यात्रा और माइकल एंजेलो, लियोनार्डो द विंची, रेम्ब्रांट और पिकासो जैसे दिग्गज़ों के काम का गहन अध्ययन करने के बावज़ूद विजेंद्र ने अपनी मौलिकता को मुख़्तलिफ़ रखा है। उनके नाम गिनीज़ वर्ल्ड रिकॉर्ड और 'आर्टिस्ट ऑफ द ईयर' जैसे अनगिनत सम्मान दर्ज़ हैं, फ़िर भी उनकी अभिलाषा अत्यन्त सरल और सादा है, वे बस रंगों की इस ख़ूबसूरत दुनिया में ब्रश और कैनवास के साथ रमे रहना चाहते हैं। विजेंद्र शर्मा की कला हमें यह सिखाती है कि यदि दृष्टि स्पष्ट हो और समर्पण अटूट, तो साधारण रंगों से भी असाधारण संसार रचा जा सकता है। उनकी साधना यह सिद्ध करती है कि कला वास्तव में ईश्वर का वह वरदान है, जिसे केवल निरन्तर अभ्यास और ध्यान से ही निखारा जा सकता है।

संपर्क : 1140 सेक्टर 21(हुडा मार्केट) पॉकेट सी ,
गेट नं. 2 के बगल में गुरुग्राम - 122016 मोबा. 9811467241

■

(प्रसिद्ध चित्रकार आर.बी. गौतम से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की बातचीत)

कलाकार की अनुभूति एवं वैयक्तिक संवेदनाओं के विस्तार के हिमायती: कलाविद् आर.बी. गौतम

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

समकालीन कलाकार डॉ. राजेंद्र प्रसाद राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के ललित कला संकाय में सहायक आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। वे चित्रकला के क्षेत्र में अध्येता, शोधकर्ता एवं प्रयोगशील कलाकार के रूप में सक्रिय रहे हैं।अध्यापन एवं शोध से जुड़े डॉ. प्रसाद की भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन कला विमर्श पर केंद्रित लेखन एवं कला समीक्षा में संलग्नता रही हैं। राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर की आयोजन एवं सलाहकार समितियों में योगदान देने के साथ वे राजस्थान धरोहर संरक्षण एवं प्रोन्नति प्राधिकरण से भी जुड़े हैं।राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों, कार्यशालाओं और संगोष्ठियों में उनकी सक्रिय सहभागिता रही है। संस्कृति मंत्रालय सहित विभिन्न संस्थाओं के आयोजनों में वे निर्णायक एवं विषय-विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित होते रहे हैं। कला के क्षेत्र में उन्हें अनेक राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय सम्मान प्राप्त हुए हैं।

(10 मई, 1940 को बीकानेर में जन्में कलाविद् आर.बी. गौतम अमूर्तन के एक सशक्त हस्ताक्षर है। जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुम्बई से आपने एम.ए. (मास्टर ऑफ आर्ट्स) एवं जी.डी. कला (गोर्वनमेंट डिप्लोमा इन आर्ट) किया है। बतौर कलाकार विगत छः दशकों से सृजनशील रहते हुए आपने राजस्थान की धरा का मान बढ़ाया है। अभी तक देश-विदेश में आपकी सैंकड़ों एकल एवं समूह चित्र प्रदर्शनियां आयोजित हो चुकी हैं। वर्तमान में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप (पीएजी) राजस्थान के आप अध्यक्ष तथा संस्थापक सदस्य हैं। साथ ही जयपुर आर्ट सम्मिट के निदेशक सहित राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर के पूर्व चेयरमैन के दायित्व को भी आपने बखुबी निर्वहन किया। कला के वैविध्य, वृहदता एवं विविध आयामों से परिचय के नाना प्रयत्नों को सार रूप में पिरोकर 'समसामयिक कला के विविध आयाम' पुस्तक का लेखन कर युवा पाठकों एवं कला विद्यार्थियों को एक अनुपम सौगात दी है। विभिन्न समसामयिक संदर्भों पर उनसे की गई विस्तृत बातचीत के सम्पादित अंश यहाँ प्रस्तुत है।)

- संपादक

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : प्रारम्भ इस बात से कि आपका कला के क्षेत्र में आगमन कैसे हुआ था? इसकी पृष्ठभूमि के बारे में संक्षेप में बताइए?**

• **आर.बी. गौतम :** मेरा जन्म बीकानेर में हुआ। बचपन से ही कला में रूचि थी जिसके चलते किशोरावस्था में यह रूझान और मजबूत हुआ। हमारे वहाँ श्री आशाराम जी गोस्वामी कॉलेज शिक्षा विभाग में कला के प्राध्यापक थे उनसे हमने प्रेरणा लेकर कला की विधिवत शुरूआत की। मेरे साथ प्रेमचंद गोस्वामी और रंजन गौतम भी थे। हम सभी आऊटसाइड में लैंडस्कैप किया करते थे एवं काफी अच्छा माहौल हमने बना लिया था। धीरे-धीरे हमारी रेखाओं पर पकड़ एवं रंगों के बारे में समझ विकसित होती गई। बीकानेर के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से भी बहुत कुछ सीखने को मिला जो मेरी कला को समृद्ध करता गया।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : आपकी नजर में कला के मायने क्या है?**

• **आर.बी. गौतम :** यह बहुत विस्तृत चर्चा का विषय है। संवेदना का बहुत बड़ा गढ़ है कला। जब तक कलाकार संवेदित नहीं होता है, तब तक कला अधूरी रहती है। कलाकार जब प्रकृति या फिर किसी वस्तु को देखता है तो वो उससे प्रभावित होता है एवं प्रभावस्वरूप उसके अर्न्तमन में कई तरह के विश्लेषण होते हैं, उस विश्लेषण को वह जब अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। तब कहीं जाकर कला या कलाकृति की निर्मिति होती है। कला कोई असाधारण चीज़ नहीं है पर कलाकार होना अपने आप में ईश्वर की बड़ी कृपा होती है।

मेरे व्यक्तिगत जीवन में कला के मायने समय के साथ परिष्कृत होते गए। मैं मानता हूँ कि एक श्रेष्ठ कृति के सृजन के लिए कलाकार को विषयवस्तु की सीमारेखाओं को लांघना होगा।

मैंने आपके कला कार्यो को लम्बे समय से देखता आया हूँ। आप अमूर्तन को ज्यादा महत्व देते हैं जो आपके रचाव में परिलक्षित भी होता है कला में अमूर्तन एवं इसके

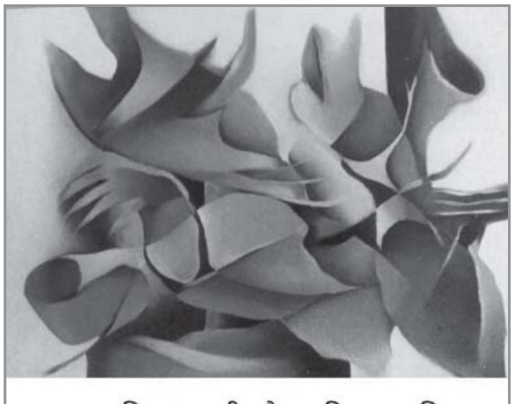

कलाविद् आर. बी. गौतम की कलाकृति

कलाविद् आर. बी. गौतम और डॉ राजेंद्र प्रसाद

सौन्दर्यपक्ष पर आपके क्या विचार है?

कला में अमूर्तन के संदर्भ में कलाकार जब वस्तु जगत को या प्रकृति के यथार्थ को देखता है तो उसे आत्मसात कर लेता है आत्मसात उसी को करते हैं जो आकर्षण का विषय हो हमारे लिए। हर व्यक्ति की आकर्षण शक्ति अलग-अलग होती है... निजि होती है। उस आकर्षण को लेकर कलाकार अभिव्यक्त एवं विश्लेषित करता है। विश्लेषित करने के बाद उसकी वास्तविकता यानि यथार्थतता को भूलकर के अपनी अभिव्यक्ति करता है जो उसका अर्न्तमन चाहता है वैसा वह करता है तो इससे कला में अमूर्तन (एब्स्ट्रेक्सन) आ जाता है। यह भावनात्मक एवं वैचारिक होती है तथा भौतिक वस्तुओं की नकल न होकर स्वतन्त्र रूप से सौंदर्य को उजागर करती है।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : आपको कला क्षेत्र में कार्य करते हुए लगभग पांच से छः दशक हो गए हैं। प्रारम्भ से लेकर अब तक कला क्षेत्र में हुए बदलावों को आप कैसे देखते हैं?**

• **आर.बी. गौतम :** मुम्बई के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से मैंने अध्ययन किया तत्पश्चात नौकरी के सिलसिले में 1961 में मैं जयपुर आना हुआ। मैंने राजस्थान एवं बाहर के अन्य राज्यों की कला भी देखी थी। उस समय एब्स्ट्रेक्सन जो था वैसा इधर नहीं था। मुम्बई, बड़ौदा एवं अहमदाबाद उन सब जगहों में मैं घुमा हूँ लेकिन तब मुझे एब्स्ट्रेक्शन का इतना ज्ञान नहीं था। लोग कहते थे किंतु पूर्ण रूप से एब्स्ट्रेक्ट नहीं होता था। जब मैं जयपुर आया तब यहाँ वरिष्ठ कलाकार ज्योतिस्वरुप जी थे जिनकी पेंटिंग में मैंने एब्स्ट्रेक्ट देखा। मैं बहुत प्रभावित हो गया। इतना बढ़िया काम करने वाले व्यक्ति मुझे मिले जबकि उस समय कोई भी इतना अच्छा काम नहीं करता था। धीरे-धीरे ज्योतिस्वरूप जी ने एब्सट्रेक्ट किया तो अन्य कलाकार भी प्रभावित होने लग गये। मैं भी थोड़ा प्रभावित हुआ और सोचा कि कुछ ऐसा बनाया जाए जो अलग हो, फिर मैंने भी थोड़ा सा एब्सट्रेक्ट कार्य करना शुरू किया। किंतु वह पूर्ण एब्सट्रेक्ट नहीं था बल्कि वह सेमीएब्सट्रेक्ट था जिस पर मुझे ललित कला अकादमी का पुरूस्कार भी मिला था। इस तरह बदलाव धीरे-धीरे समयानुरूप आते गए जिनसे राजस्थान की कला एवं कलाकार समृद्ध हुए।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : अपने समय के किन ख्यातनाम कलाकारों से आपका सम्पर्क रहा, जिन्होंने समसामयिक कला को नई दिशा दी?**

• **आर.बी. गौतम :** दिल्ली एवं मुम्बई के काफी कलाकार थे जो मेरे अच्छे मित्रों में रहे हैं। एफ.एन. सूजा की प्रेरणा से हमने यहाँ राजस्थान में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप (पीएजी) की स्थापना की एवं 1978 में पैग राजस्थान चैप्टर का उद्घाटन करने सूजा स्वयं यहाँ आए थे। हमारे साथ रहकर उन्होंने चित्र भी बनाए एवं उनका प्रदर्शन भी किया। एफ.एन. सूजा, के.एच. आरा, वी.एस. गायतोंडे, जे. स्वामीनाथन एवं एम.एफ. हुसैन साहब दो तीन बार यहाँ आए। इन सबों से हमने खूब कला चर्चाएं की उस समय। ये सब हमारे प्रेरणा स्त्रोत भी रहे हैं जिनसे हमने थोड़ा ज्ञान लिया है।

इस तरह देखें तो अनेक कलाकारों ने राजस्थान की समसामयिक कला को प्रेरित कर नई दिशा दी। अलबत्ता उनमें से कुछ ने जहाँ उनके पदचिन्हों का अनुसरण किया तो कुछेक ने सीधे-सीधे प्रभाव को एक नयी कलाकृति में बदल दिया।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : 'इंस्पिरेशन' एवं 'भय' को लेकर आपने चित्रों की सीरीज बनाई थी? इन सीरीज की कोई खास वजह एवं पृष्ठभूमि पर आप क्या कहना चाहेंगे।**

• **आर.बी. गौतम :** ये सीरीज तो चलती रहती है। 'इंस्पीरेशन' सीरीज की तो मैंने तकरीबन दस-पन्द्रह पेंटिग्स बनाई थी। ठीक इसी तरह 'भय' की भी आठ-दस पेंटिग्स की एक सीरीज पर भी काम किया। दोनों ही सीरीज में कलाकार के अर्न्तमन के भावों का अलग-अलग निरूपण है।

'इंस्पिरेशन' सीरीज की पेंटिग्स तो दिल्ली, अहमदाबाद, गुजरात, हैदराबाद इत्यादि स्थानों पर प्रदर्शित भी की जहां से काफी वर्क सैल भी हुआ। मुम्बई से भी सैल हुई थी मेरी पेंटिग्स।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : आपके काम में यहाँ की प्रकृति, परिवेश, पर्यावरण एवं संस्कृति की जड़े कहीं न कहीं गुंथित रहती हैं, इसको आप कैसे विश्लेषित करेंगे?**

• **आर.बी. गौतम :** कलाकार अपने परिवेश को जीता है, ठीक वैसे ही मेरा काम इन सबसे प्रेरित रहा है प्रकृति को मैंने अमूर्तन में रूपायित किया है। देखे हुए को रेंडर्ड फॉर्म में दिखाने का प्रयास किया है। हमेशा ही स्व प्रेरणा से ही मैंने कार्य किया है राजस्थान के रंगों को मैंने अपने चित्रों में चटख रंगों से दर्शाया है जो हमारी संस्कृति में समाहित है। पता नहीं क्यूं हरा रंग मेरे चित्रों में बहुत कम आता है। कला में चित्रकार अपनी जड़ों का पुनरान्वेषण करता है मेरे बनाये चित्रों में भी प्रकृति, परिवेश, परम्परा एवं संस्कृति के पुर्नसृजन का प्रभाव है।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : संयोजन एवं अंतराल विभाजन (स्पेस डिविजन) का सुंदर संबंध आपके चित्रों की खास पहचान है? इस पर आपकी क्या राय है।**

• **आर.बी. गौतम :** प्रयोग के तौर पर मैंने अपने चित्रों को तोड़-

मरोड़कर (रेंन्डर्ड) अंतराल के साथ तालमेल बिठाकर बनाने का प्रयास किया जिसे दर्शकों ने काफी सराहा और मैं काम करता चला गया। जब आप निरंतर काम करते हैं तो संयोजन की दक्षता आ ही जाती है। चित्रकृति में यह अंतराल (स्पेस) दर्शक की दृष्टि को बिना किसी अवरोध के गतिमान रखता है जिसे हम देखने की कला कहते हैं।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : समकालीन भारतीय कला बाजार (आर्ट मार्केट) की आज क्या स्थिति है? इस विषय पर चर्चा कीजिए।**

• **आर.बी. गौतम :** अब वैसा आर्ट मार्केट रहा ही नहीं है। हमारे समय में आर्ट मार्केट ठीक था उसमें हम जितनी पेंटिंग्स बनाते थे उनमें से अधिकांश पेंटिंग्स बिक जाती थी। लेकिन अब वर्तमान में तो मेरी पेंटिंग्स आधी से ज्यादा अटारी में भरी हुई पड़ी है एक तरह से उसको निकालना मुश्किल सा हो गया। मालूम नहीं क्या हो गया आर्ट मार्केट को ये खबरे जब आती है कि फला व्यक्ति की कृति ऑक्शन में करोड़ों में बिकी, मुझे ये समझ नहीं आता कि ऑक्सन करने वाले इतने कम काम ही क्यों ले रहे हैं। वैसे उतार-चढ़ाव तो आते रहते हैं। उम्मीद है कि भविष्य में स्थिति अच्छी हो।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : राजस्थान के समसामयिक कला परिदृश्य में कितना बदलाव आया है? आप इसे किस रूप में देखते हैं।**

• **आर.बी. गौतम :** बहुत ज्यादा बदलाव आया है। साठ के दशक से तुलना करूं तो बहुत ज्यादा एब्सट्रेक्शन चलन में आया है। हर कोई एब्सट्रेक्शन की ओर जा रहा हैं। आप भी प्रदर्शनियाँ देखते हो तो देखा होगा कि ज्यादातर काम एब्स्ट्रेक्ट ही कर रहे हैं। कुछ परम्परागत और लघुचित्रकारों को छोड़ दें तो प्रायः प्रायः अन्य सभी कलाकार अमूर्तन को ही रचते हैं। कहते हैं कि एब्सट्रेक्ट में भावों की अभिव्यक्ति सबसे महत्वपूर्ण होती है, जबकि किसी का उधार लिया इसमें नहीं रहता है। अभी युवा कलाकार प्रयोगवादी (एक्सपेरिमेंटल) कार्य भी खूब कर रहे हैं। नवाचार को महत्व देना अच्छा संकेत है।

कलाविद् आर. बी. गौतम की कलाकृति

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : राजस्थान के कला इतिहास में आपका योगदान सराहनीय रहा है इस योगदान से आप कितना संतुष्ट हैं?**

• **आर.बी. गौतम :** योगदान तो सभी कलाकारों का ही रहा है। किंतु व्यक्तिगत यदि मैं बात करूं तो मेरा योगदान तो है ही। राजस्थान सरकार एवं अकादमी द्वारा समय-समय पर मेरे कार्य को सराहा गया। मैंने अकादमी में बतौर सदस्य एवं चैयरमेन लम्बे समय तक कार्य किया एवं कलाकारों को प्रोत्साहित करने की कोशिश की। कला मेला, आर्ट कैंपस, कार्यशालाएं एवं अन्य आयोजनों की शुरूआत हम लोगों ने मिलकर की जिसका विस्तृत रूप अब आप देख पा रहे हैं। मेरे योगदान को देखते हुए मुझे 1998 में राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा कलाविद् की उपाधि से विभूषित किया गया था। 2010 में वेटरन आर्टिस्ट सम्मान, आइफेक्स, नई दिल्ली, 2017 में राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा लाईफटाइम अचीवमेंट अवार्ड, 2019 में बंगाल आर्ट सोसाइटी का लाईफटाइम अचीवमेंट अवार्ड सहित राजस्थान एवं गुजरात ललित कला अकादमी के पुरस्कार एवं दर्जनों अन्य संस्थानों के पुरस्कार अब तक मेरी सृजन यात्रा में मुझे प्राप्त हुए हैं। संतुष्टि होती है जब आप अपने प्रदेश हेतु कुछ कर पाते हो जिससे आगामी पीढ़ी को प्रेरणा मिले।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : युवा कलाकारों के कार्य को आप देखते आ रहे हैं? आपको क्या लगता है कि राजस्थान का युवा सही दिशा में जा रहा है?**

• **आर.बी. गौतम :** युवा कलाकारों में भी जोश है... इच्छाशक्ति है। अभी युवा कलाकार कुछ एक्सपेरिमेंटल वर्क कर रहे हैं किंतु अधिकांश कमर्शियल ही कर रहे हैं। पिछले कला मेले में मुझे कुछ काम अच्छे लगे जो स्वःप्रेरणा से प्रेरित थे। पोर्ट्रेट वगैरह बनाना अच्छी बात है किन्तु कला में जो आना चाहिए वो क्यूं नहीं आ रहा है। मैं खुद चाहता हूँ कि मैं कुछ कोशिश करू। अभी मैंने कुछ एक्सपेरिमेंटल वर्क किया है और युवाओं को चाहिए की एक्सपेरिमेंटल की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाए तो कुछ बेहतर परिणाम आ सकते हैं। कला में निरंतरता भी बेहद जरूरी है।

दर्जनों ऐसे युवा कलाकार हैं जो लगातार कार्य कर रहे हैं। किन्तु संख्या अभी भी कम है जिसके विस्तार हेतु संस्थागत प्रयास किया जाना अति आवश्यक है।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : यह थोड़ा निजी सवाल है कि अभी आपकी पारिवारिक कार्य एवं कला हेतु दिनचर्या क्या रहती है?**

• **आर.बी. गौतम :** अभी पहले जितना काम तो नहीं हो पाता है किंतु कोशिश करता हूँ कि कुछ नयापन ला पाऊं। काम तो करता रहता हूँ थोड़ा एक्सपेरिमेंटल भी इन दिनों कर रहा हूँ। अभी हाल ही सम्पन्न कला मेले में वरिष्ठ कलाकारों के 'आर्ट कैंप' में भी एक आर्टवर्क तैयार किया था। काम करते रहना अच्छा लगता है। रही बात परिवार की तो थोड़ा समय नियोजन रखता हूँ ताकि तालमेल बना रहे। उम्र के इस पड़ाव में आराम भी जरूरी है।

• **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) एवं परफॉर्मिंग आर्ट सरीखे बदलाव से कला के मूल स्वरूप में परिवर्तन हुआ है? आप इसे कैसे देखते हैं?**

• **आर.बी. गौतम :** मैं मानता हूँ कि थोड़ा परिवर्तन तो हुआ है। एआई का काफी योगदान है इसमें। ये एआई है क्या? ये हमारी इंटेलिजेंसी से ही बनी है अगर हम धरातल से ऊपर सोचेंगे तो एआई का तालमेल हमारे साथ बैठ जायेगा। समय के साथ संतुलन बनाकर चलना बेहद जरूरी है।

धन्यवाद! आगे पुनः मिलेंगे।

सम्पर्क: एल -7 एच, झालाना मोड़,महात्मा गांधी रोड़, विश्वविद्यालय कैंपस
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर पिन: 302004 मो. न. : 7727091301
ई-मेल: rajsutharart@rediffmail.com

■

आँखों को तैयार करना है...

सरोज कुमार सिंह

1976 में झारखंड में जन्मे सरोज कुमार सिंह समकालीन भारतीय कला परिदृश्य के सक्रिय और बहुआयामी कलाकार हैं, जो वर्तमान में वडोदरा (गुजरात) में निवास एवं कार्यरत हैं। उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से ललित कला में स्नातक उपाधि (स्वर्ण पदक सहित) प्राप्त करने के पश्चात् महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के ललित कला संकाय से परास्नातक उपाधि अर्जित की। उनकी शैक्षिक और रचनात्मक पृष्ठभूमि केवल चित्रकला तक सीमित नहीं है, बल्कि मूर्तिकला, फोटोग्राफी, राजनीतिक विज्ञान, कविता और खेल जैसे विविध अनुशासनों से भी प्रभावित है—ये सभी उनके कलात्मक व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति को बहुआयामी आयाम प्रदान करते हैं। दो दशकों से अधिक के पेशेवर अनुभव के साथ उन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है।

• **एच. भट्ट :- क्या मैं आपकी पृष्ठभूमि और आपकी यात्रा के बारे में कुछ जान सकता हूँ? आप कहाँ से आते हैं, और रचनात्मक कला में आपका औपचारिक प्रशिक्षण क्या है? क्या आप अपने और अपने शुरुआती जीवन के बारे में कुछ साझा करना चाहेंगे?**

• **सरोज :-** खैर। यह वास्तव में एक प्रश्न से अधिक एक अनुरोध है... वैसे, मेरा जन्म और पालन-पोषण मधुरा, गोड्डा, झारखंड में हुआ था, और मैं 2001 में वाराणसी के रास्ते यहाँ आया था। मैंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री और बड़ौदा से रचनात्मक मूर्तिकला में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। मैंने बीएचयू (BHU), वाराणसी आने से पहले भागलपुर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान का अध्ययन और पेंटिंग में डिप्लोमा भी किया था।

जब तक मैंने हाई स्कूल पूरा किया, मेरा जीवन कला, कविता और खेल, विशेष रूप से क्रिकेट के इर्द-गिर्द घूम रहा था। किशोर होने के बाद से ही मैं कला और रचनात्मकता से जुड़ा रहा हूँ, जो मेरा शौक, मेरा जुनून और चीजों को सीखने का मेरा तरीका था। मेरी जगह के सभी बच्चों की तरह, मुझे खेलना और खेल का आनंद लेना पसंद है, और मैं एक क्रिकेटर बनना चाहता था। मैंने क्रिकेट खेलने में काफी समय बिताया। मैं एक क्लब के साथ-साथ जिला टीम के लिए भी खेला। हालाँकि, क्रिकेट ने मुझे खुद के बारे में और अच्छे अनुशासन के बारे में बहुत कुछ सिखाया, जो आज भी मेरे साथ है।

और... हाँ, निश्चित रूप से, यह मेरा सौभाग्य है कि मैं एक ऐसे परिवार से हूँ जो हिंदू धर्म की प्रमुख अवधारणाओं और मूल मूल्यों में विश्वास करता है। मेरे पिता सिद्धांतों के पक्के व्यक्ति थे, और मेरी माँ एक आध्यात्मिक और सामाजिक महिला थीं, जिनमें सभी सामाजिक मामलों को आसानी से निपटाने की तीव्र सामान्य समझ थी; वह एक बुद्धिमान और समझदार दिमाग वाली मिलनसार महिला थीं, जिन्हें मानव जीवन के मूल्य का एहसास था। वह हर शाम रामायण और गीता का पाठ करती थी, और हम सभी भाई-बहन उन्हें सुना करते थे। उन्होंने इसका अर्थ भी समझाया और हमें यह समझाने की कोशिश की कि ये पुस्तकें केवल धार्मिक पुस्तकें नहीं हैं, बल्कि जीवन का सुसमाचार (gospel of life) हैं। इसलिए, इस आध्यात्मिक कविता को सुनकर, मुझमें दार्शनिक जिज्ञासा की भावना विकसित हुई।

शुरुआती दिनों में, साहित्य ने मुझे हमेशा आकर्षित किया, और इसने मुझमें भावनात्मक और बौद्धिक ऊर्जा को पूरी तरह से मंत्रमुग्ध कर दिया। बचपन के दौरान मैंने जो कुछ भी सीखा और महसूस किया, उसका आज भी मेरे जीवन के साथ-साथ मेरी रचनात्मकता पर भी प्रभाव है, और इसने कला और कविता के बारे में मेरी दृष्टि और कल्पना को काफी हद तक प्रभावित किया है। अपने शुरुआती जीवन से मुझे जो भी अनुभव मिले, उन्होंने मुझे और मेरी रचनात्मकता को मदद की है। और इसने मेरे आंतरिक विकास को पूर्ण रूप से बनाए रखने में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

• **एच. भट्ट :- जब आपने अपनी पहली कलाकृति बनाई थी, तो आपके परिवार और दोस्तों की क्या प्रतिक्रिया थी, और क्या आपको अपनी पेंटिंग पर कोई फीडबैक मिला था? क्या उस प्रेरणा ने आपको कलाकार बनने का निर्णय लेने में मदद की?**

• **सरोज :-** मैं कहूँगा कि मुझे परिवार और दोस्तों से जो प्रतिक्रिया और फीडबैक मिला, वह अच्छा और काफी सकारात्मक था। वास्तव में, पहली कला कभी आपकी आखिरी कला नहीं होती, और जो कुछ भी आप पेंट या ड्रा करते हैं वह दुर्घटनावश नहीं होता है। मेरी माँ ने कहा था, अपने डर को एक तरफ रखो और अपने दिमाग में समय बिताना महत्वपूर्ण है, बाकी की चिंता मत करो। असफलता से मत डरो। उन्होंने मुझे गहराई से परखा और मुझे एक कला विद्यालय (art school) में शामिल होने के

लिए प्रेरित किया।

• **एच. भट्ट :- क्या आप अपने शुरुआती कार्यों के बारे में कुछ बात कर सकते हैं? क्या वे पेंटिंग थीं?**

• **सरोज :-** हाँ, बिल्कुल... ये सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयों को ध्यान में रखते हुए बनाई गई प्रतिनिधित्वात्मक पेंटिंग (representational painting) या रूपांकन (motifs) थे। और मुझमें चीजों को चित्रित करने के बारे में हमेशा एक आश्चर्य की भावना रहती थी।

• **एच. भट्ट :- आपको वडोदरा शहर के बारे में कैसे पता चला? क्या आपने अपनी शिक्षा बड़ौदा स्कूल ऑफ आर्ट से पूरी की? अपनी डिग्री पूरी करने के बाद आपने यहीं रुकने का फैसला क्यों किया? यह स्थान आपको कैसे प्रभावित और प्रेरित करता है? क्या यहाँ कोई साथी कलाकार है जो आपका और आपके काम का समर्थन करता है?**

• **सरोज :-** वैसे, मैं इस शहर को तब से जानता हूँ जब से मैं क्रिकेट में शामिल हुआ था। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि मैं एक विकेटकीपर बल्लेबाज बनना चाहता था, और किरण मोरे तथा नयन मोंगिया मेरे आदर्श थे। हालाँकि, मैंने कभी नहीं सोचा था कि बड़ौदा एक दिन घर जैसा लगेगा, और मैं अपने रचनात्मक आवेगों के माध्यम से शहर से जुड़ पाऊँगा।

वैसे, यह 1997 की बात है जब मैंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में दाखिला लिया था, जहाँ मेरे शिक्षकों ने बड़ौदा स्कूल ऑफ आर्ट्स के बारे में बात की और मुझे एम.एस.यू. (MSU) में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। स्नातक स्तर की पढ़ाई के बाद, मैंने यहाँ प्रवेश परीक्षा के लिए आवेदन किया और उत्तीर्ण हुआ। मैं रचनात्मक मूर्तिकला में एमएफए (MFA) कार्यक्रम में शामिल हुआ। ललित कला संकाय (Faculty of Fine Arts) में अध्ययन करना अदभुत था जो के.जी. सुब्रमण्यन, संखो चौधरी, ध्रुव मिस्त्री, रविंदर रेड्डी, जेराम पटेल, भूपेन खक्कर, गुलाम मोहम्मद और नसरीन मोहम्मदी जैसे कई प्रसिद्ध कलाकारों की मातृसंस्था (alma mater) है।

अपना शैक्षणिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, मैंने यहीं रुकने का फैसला किया क्योंकि इस शहर ने मुझे अपने काम का पता लगाने के लिए प्रेरित किया और मुझे समग्र रूप से आकार दिया। इस प्रकार, मैंने एक स्वतंत्र कलाकार के रूप में काम करना चुना, और तब से, मैं अपने रचनात्मक प्रयासों में गहराई से लगा हुआ हूँ।

सरोज कुमार सिंह की कलाकृति
शीर्षक – नए जीवन की अभिलाषा
आकार – 21 इंच × 20 इंच × 10 इंच
माध्यम – तांबा, पीतल और ढलवा लोहा
वर्ष – 2018

वास्तव में, आपने गौर किया होगा कि कलाकार शायद ही कभी साथी कलाकारों का समर्थन करते हैं। वे शायद ही कभी एक-दूसरे की सराहना करते हैं, जब तक कि वे दोस्त न हों। हालाँकि, मैं भाग्यशाली हूँ कि बड़ौदा कला समुदाय में मेरे अच्छे दोस्त और सहयोगी हैं जो मेरी सराहना और समर्थन करते हैं। भले ही सामान्य दर्शक प्रकाशित कला समीक्षाओं पर अपनी टिप्पणी देते हैं और जब अच्छी चीजें होती हैं तो मुझे बधाई देते हैं, मुझे यह मेरी रचनात्मकता की एक महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति लगती है।

• **एच. भट्ट :- क्या मैं आपकी रचनात्मकता के बिंदु को जान सकता हूँ, विशेष रूप से इस श्रृंखला (series) को करके? पेंटिंग पहली नज़र में ही बहुत कलात्मक और अभिव्यंजक हैं। क्या आप शहर को चित्रित करने के अपने विचार का वर्णन कर सकते हैं?**

• **सरोज :-** खैर, एक कलाकार के रूप में, मुझे अपनी आँखों को दुनिया को जितना हो सके उतना देखने के लिए तैयार करने की आवश्यकता है। मैं हमेशा चीजों को एक नए दृष्टिकोण से देखने का तरीका ढूंढता हूँ। एक निर्माता के रूप में, मेरे पास अपने अनुभवों के माध्यम से चीजें बनाने का काव्य लाइसेंस (poetic license) है। 2001 से, मैं बडौदा के निवासी के रूप में यहाँ रह रहा हूँ, और मैं पेंटिंग बनाने के साथ-साथ कविता लिखकर शहर को सम्मान देना चाहता हूँ। मेरे मन में सैकड़ों बेहतरीन यादें हैं।

जैसा कि हम जानते हैं, बड़ौदा का ऐतिहासिक महत्व है, लेकिन इसे अभी भी एक नई दृष्टि से देखने की जरूरत है। यह मेरा शांत जीवन था जहाँ मुझे शहर को समसामयिक रूप से देखने और महसूस करने का दृष्टिकोण मिला। मेरी आँखों के सामने बहुत सी चीजें आई। कुछ नाटकीय रूप से बदल गया, मुस्कुराया और कहा... "बाय-बाय"। इसलिए, इसे समझना बहुत कठिन था... पूरी तरह से पहेली जैसा और कभी-कभी रहस्यमय। वास्तव में, मैंने साम्राज्य का अस्तित्व, चिंतित लोग, विस्मयकारी लड़कियाँ, तुच्छ चीजें, गर्मियों का शून्य, प्रार्थना स्थल और सुंदर उद्यान देखे हैं। इसलिए, पिछले कुछ वर्षों में, इस जीवंत शहर के बारे में गहन सोच के माध्यम से, मैंने आनंद और दर्द के पुट के साथ एक अमूर्तन (abstraction) को ध्यान में रखते हुए ये पेंटिंग बनाई हैं।

• **एच. भट्ट :- इन पेंटिंग्स के पीछे प्रेरक शक्ति क्या है?**

• **सरोज :-** इन पेंटिंग्स के पीछे की प्रेरक शक्ति शहर और इसकी खुशी को अपनी आंखों से देखने का मेरा जुनून है। हमारा दिमाग छोटा है, और

एक छोटी बुद्धि के माध्यम से पूरी चीज को देखना संभव नहीं है। हमें बिना किसी पूर्वाग्रह के परिवेश को देखने की जरूरत है। रचनात्मकता किसी अभिनव धारणा के बजाय आपकी अपनी राय से उपजनी चाहिए। और एक मौलिक, शाश्वत और रोमांचक रचना बनाने की इच्छा, जो समकालीन भावना और जीवन की स्थिति में हर चीज को अर्थ दे सके।

इसलिए, इसे ध्यान में रखते हुए, मैंने इन कृतियों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, रूप और रंगों के सामंजस्य, व्यापक अवलोकन और सौंदर्य अनुभवों के साथ बनाया है।

- **एच. भट्ट :- आपने एक अमूर्त विचार को मूर्त रूप में कैसे अनुवादित किया?**

- **सरोज :-** मौलिक रूप से, यह सब बोध की समझ और संतुलन के बारे में है, जिसके माध्यम से मैं विश्लेषणात्मक उपकरणों का उपयोग करके एक सार्थक और मूर्त कला रूप बनाने में सक्षम हूँ।

- **एच. भट्ट :- क्या आपने श्रृंखला शुरू होने से पहले इतिहास के संबंध में कोई शोध किया है? क्या आप वाराणसी और बड़ौदा के बीच कोई समानता महसूस करते हैं?**

- **सरोज :-** मैं कहूँगा कि नहीं। रचनात्मकता के लिए सैद्धांतिक शोध के बजाय आत्म-अन्वेषण की आवश्यकता होती है। हमें अपनी अंतिम खोज जारी रखनी चाहिए, जो जागरूकता के अनंत स्थान से उभरती है। शोध तथ्यों को खोजने की एक व्यवस्थित जांच है, लेकिन रचनात्मक कार्य के लिए निश्चित योजना की आवश्यकता नहीं होती। यह धारणाओं और विश्वासों पर आधारित है।

हालाँकि, व्यक्ति को इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल, तत्वमीमांसा (metaphysics) और नैतिकता का ज्ञान होना चाहिए। हमें सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के साथ जुड़ने की भी आवश्यकता है। यह व्यवस्थित अवलोकन और आत्म-साक्षात्कार का मामला है। मैं अक्सर एक शुरुआत करने वाले (beginner) की तरह सोचता हूँ। यह मानसिकता मेरी रचनात्मकता को बढ़ावा देती है। मैंने ये पेंटिंग जिज्ञासा और तर्क से बनाई हैं।

हाँ, वाराणसी-मिथक और धर्म द्वारा पवित्र किया गया शहर। मुझे लगता है कि दोनों शहर साहित्य, कला और संगीत सहित जीवन के हर क्षेत्र से महान लोगों को आकर्षित करते हैं। वडोदरा शहर हमेशा मुझे नई चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए ऊर्जा और प्रोत्साहन देता है।

- **एच. भट्ट :- आप इन पेंटिंग्स के माध्यम से क्या संवाद करने की कोशिश कर रहे हैं?**

- **सरोज :-** मोटे तौर पर, मैंने स्पष्ट अभिव्यक्ति के साथ अमूर्त पेंटिंग बनाने की इच्छा रखी। मैं चमकीले और जीवंत रंगों के माध्यम से कुछ अलग पेंट करना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि मेरा काम संचार का एक साधन होना चाहिए। मैं लोगों को वास्तविकता, अफवाह और तथ्य की भावना के साथ सरल चीजों के करीब ले जाना चाहता हूँ। मौलिक रूप से, मैं एक ऐसी दार्शनिक और विश्लेषणात्मक सोच विकसित करना चाहता हूँ जो जीवन को उद्देश्यपूर्ण, आसान और तनावमुक्त बनाए।

- **एच. भट्ट :- आपको अपने रचनात्मक कार्य के लिए विचार कहाँ से मिलते हैं?**

- **सरोज :-** रचनात्मक कार्य के बारे में विचार खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके लिए जागने, सतर्क रहने और निरीक्षण करने की आवश्यकता है। यदि आप खुद को प्रशिक्षित कर सकते हैं, तो रचनात्मक विचार स्वचालित रूप से आपके पास आएंगे... है न?

- **एच. भट्ट :- आपने यहाँ सीमित और चमकीले रंगों का उपयोग क्यों किया है? विशेष रूप से क्रोम येलो (Chrome Yellow) का उपयोग करने के पीछे क्या कारण है?**

- **सरोज :-** सौंदर्य संबंधी चिंता के कारण रंग स्वतः ही मेरे हो जाते हैं। ज्वलंत लाल, आनंदमय पीला और नीले रंग की शुद्धता अपने अर्थ के साथ आए।

इसके अतिरिक्त, मैंने पीले रंग का अधिक उपयोग किया है ताकि अत्यधिक दृश्य प्रकाश की महिमा या आंतरिक अभिव्यक्ति को समझा जा सके। आमतौर पर पीला रंग चेतावनी के रूप में जाना जाता है (जैसे ट्रैफिक सिग्नल), लेकिन यहाँ मैंने इसे खुशी, मित्रता और मस्ती के रंग के रूप में उपयोग किया है। यह चंचलता, उत्साह और शुद्ध आनंद का सुझाव देता है। यदि आपकी यादें किसी सुखद अनुभव से जुड़ी हैं, तो पीला रंग अत्यधिक खुशी का कारण हो सकता है।

- **एच. भट्ट :- क्या आप पर जीवित कलाकारों का कोई प्रभाव है?**

- **सरोज :-** वास्तव में नहीं, लेकिन सभी कलाकारों का कुछ न कुछ प्रभाव होता है। मेरा व्यक्तिगत प्रभाव मेरे परिवेश और जीवित-निर्जीव चीजों से आता है। मैं भारतीय मंदिर मूर्तिकला, लोक कला और आधुनिक साहित्य से भी प्रेरित होता हूँ। मुझे अनीश कपूर, सुबोध गुप्ता, जैक्सन पोलक, मार्क रोथको और पॉल क्ले जैसे कई कलाकारों का काम देखकर खुशी होती है। अमूर्त अभिव्यंजनावाद (Abstract expressionism) और संकल्पनावाद (Conceptualism) मुझे प्रेरित करते हैं।

- **एच. भट्ट :- कविता आपकी कला को समझने में कैसे मदद करती है?**

- **सरोज :-** हाँ, मैं किशोरावस्था से ही कविता लिख रहा हूँ। यह मेरे लिए पेट्रोल की तरह एक आवश्यकता है। दृश्य और मौखिक दोनों अभिव्यक्तियाँ हैं। कभी-कभी मौन भी आत्म-अभिव्यक्ति का एक बहुत अच्छा तरीका है। मेरी कविता अक्सर अत्यधिक मौन से आती है। हालाँकि, मैं कभी अपनी कविता को दृश्य रूप (पेंटिंग) में अनुवादित करने का प्रयास नहीं करता क्योंकि दोनों की प्रकृति अलग और अमूर्त है।

- **एच. भट्ट :- इस श्रृंखला में आपकी कोई पसंदीदा कृति?**

- **सरोज :-** यह चुनौतीपूर्ण है। मैं सिर्फ एक पसंदीदा नहीं चुन

सकता। प्रत्येक कृति का मेरे लिए अपना महत्व है- वे सभी विशेष हैं।

- **एच. भट्ट :- एक कलाकार के रूप में आपका भविष्य का लक्ष्य क्या है?**

  - **सरोज :-** मैं कुछ सार्थक करना चाहता हूँ और कला अभ्यास को उचित और व्यावहारिक तरीके से जारी रखने की आशा करता हूँ। बाकी सब भाग्य पर निर्भर करता है।

- **एच. भट्ट :- आप अपना समय कैसे बिताते हैं?**

  - **सरोज :-** मैं एक महान पर्यवेक्षक हूँ। अवलोकन और विचार करके, मैं अपना सत्य खोजता हूँ। मैं रुढिवादी कला अभ्यास में विश्वास नहीं करता। मैं अपरिचित विचारों की खोज में अधिक समय बिताता हूँ। मुझे स्टूडियो में एक सीखने वाले, विचारक और श्रोता के रूप में समय बिताना पसंद है।

- **एच. भट्ट :- क्या रचनात्मकता सिखाई जा सकती है?**

  - **सरोज :-** हाँ, इसे केवल अभ्यास द्वारा सीखा जा सकता है। आपको अपनी कहानी खुद बनानी होती है और शॉर्टकट नहीं लेने चाहिए। रचनात्मकता में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जहाँ बात खत्म होती है, वहीं से फिर से शुरू होती है। यदि आपमें चीजों को जानने की इच्छा है, तो आप रचनात्मकता सीखने में सक्षम हैं।

- **एच. भट्ट :- आपके शिक्षकों का क्या प्रभाव रहा?**

  - **सरोज :-** मैं उनकी बहुत प्रशंसा करता हूँ। उन्होंने मुझे और मेरे रचनात्मक कौशल को तैयार करने में मदद की है।

- **एच. भट्ट :- क्या आप कोई कविता या घटना साझा कर सकते हैं जो शहर की छवि को दर्शाती हो?**

  - **सरोज :-** वडोदरा एक महानगरीय (cosmopolitan) शहर है। यहाँ बहुत से लोग अपने सपनों को पूरा करने आते हैं। फतेहगंज में एक बार मेरी मुलाकात एक मध्यम वर्गीय कॉलेज के लड़के से हुई जो संघर्ष कर रहा था। एक कवि के रूप में, मैंने उसकी आँखों में जो विवाद देखा, उस पर मैंने एक हिंदी कविता लिखी...

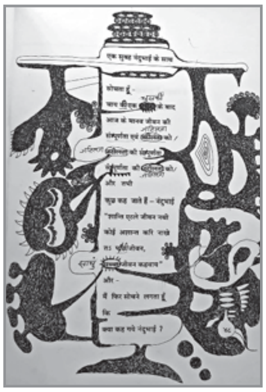

वह लड़का -
उन्नीस से अधिक आयु का,
कुछ साँवला।
हर दिन वह एक सपना लेकर सोता है,
और जब वह अपनी आँखें खोलता है
तो भटकता रहता है-
क्या भूख और प्रेम
एक साथ हो सकते हैं?

- **एच. भट्टः एक बात मैं आपसे जानना चाहूँगा। आपने एक मूर्तिकार के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त किया है, फिर आपका रुझान चित्रकला की ओर कैसे हुआ?**

  - **सरोजः** जैसा कि मैंने पहले कहा, बी.एच.यू. आने से पहले मैंने चित्रकला में डिप्लोमा भी किया था। लेकिन अब मैं मानता हूँ कि कला किसी डिग्री पर निर्भर नहीं करती। देखिए, साहित्य में मेरी कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है, फिर भी मैं कविता लिख रहा हूँ। हाँ, पहले मैं मूर्तिकला करता था, पर अब नहीं। मुझे रेखाचित्र बनाना, पेंटिंग करना, इंस्टॉलेशन बनाना, लघु फिल्में आदि बनाना अच्छा लगता है। इसमें गलत क्या है? उचित तर्क हो तो आप डिस्को डांस भी कर सकते हैं। कुछ भी गलत नहीं है... है न? वास्तव में, मैं कला और कलाकार की स्थापित शब्दावली से मुक्त होना चाहता हूँ।

- **एच. भटटः अंतिम प्रश्न, क्या आप स्वयं को समकालीन कलाकार मानते हैं?**

  - **सरोजः** सभी जीवित कलाकार समकालीन होते हैं। खुले मन से सोचिए और केवल इसलिए विचारों को न ठुकराइए कि वे परंपरागत नहीं हैं। आपके सूझबूझ भरे प्रश्नों के लिए धन्यवाद।

कलाकार सरोज कुमार सिंह की पेंटिंग

शीर्षक – काला घोड़ा सर्किल पर एक गर्भवती महिला: बिना शब्दों के बोलती हुई

माध्यम – ऐक्रेलिक, वॉटर कलर और ऑयल पेस्टल

सामग्री – हैंडमेड (हस्तनिर्मित) कागज़

आकार – 28 सेमी × 38 सेमी

वर्ष – 2004

टिप्पणी: शहर तेज़ी से भागता है। सड़कों पर यात्रियों की भीड़, फेरीवालों की पुकार और हॉर्न बजाती रिक्शाओं का कोलाहल—सब कुछ एक आपाधापी में घुला हुआ है। लेकिन इसी हलचल के बीच एक गर्भवती महिला ठहरे हुए, संयत और गरिमामय कदमों से चलती है। वह ध्यान आकर्षित करने की कोशिश नहीं करती, फिर भी उसकी उपस्थिति स्वयं मुखर है। शहर के शोर के बीच वह एक शांत लय की तरह अलग दिखाई देती है।

उसका पेट, जो वस्त्रों के भीतर कोमल और गोल है, एक शांत दीप-स्तंभ की तरह है—बिना शब्दों के बोलता हुआ कि जीवन भीतर आकार ले रहा है। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसे किसी अनुवाद की आवश्यकता नहीं। शायद उसने उसे सहज रूप से, समय के साथ, स्वाभाविक प्रवृत्ति से संरक्षण में थाम रखा है; या संभव है उसके हाथ यूँ ही उस पर टिक गए हों।

भविष्य को कोमलता से अपनी गोद में सँजोए हुए, वह वर्तमान में आशा के साथ आगे बढ़ती।

शीर्षक – सड़क किनारे की सलून का नाई

माध्यम – ऐक्रेलिक, वॉटर कलर और ऑयल पेस्टल

सामग्री – हैंडमेड (हस्तनिर्मित) कागज़

आकार – 28 सेमी × 38 सेमी

वर्ष – 2004

टिप्पणी: सड़क किनारे की सलून का नाई — कारेलीबाग के एक सड़क किनारे स्थित सलून का नाई अनौपचारिक हेयरकट कला का उस्ताद है। उसकी सलून, जो अक्सर केवल एक कुर्सी और छाजन (शामियाना) के नीचे लगे दर्पण से सुसज्जित होती है, स्थानीय लोगों के मिलने-जुलने का स्थान बन जाती है। अपने घिसे-पिटे किंतु विश्वसनीय औज़ारों के साथ, जो अनगिनत कहानियों की गूंज समेटे हुए हैं, वह तेज़ी और आत्मविश्वास से बिखरे बालों को सलीकेदार रूप दे देता है। नियमित ग्राहक, मोहल्ले की हलचल और स्थानीय चर्चाएँ—सब उसके परिचित हैं। पुरुषों की सहज संगति और आफ़्टरशेव की महक वातावरण में तैरती रहती है।

यहाँ बाल कटवाना केवल रूप-सज्जा नहीं, बल्कि अपने आप में एक सामाजिक अनुष्ठान है—दिनभर के तनाव से क्षणिक मुक्ति का अवसर। वह केवल एक नाई नहीं है; वह एक मौन विश्वासपात्र, कुशल शिल्पी और वडोदरा शहर की सामाजिक संरचना का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समयः सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं .... कला समय पत्रिका का .... एक वर्ष : 600/– रूपये, दो वर्ष : 1200/– रूपये, चार वर्ष : 2300/– रूपये, आजीवन : 10,000/– रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 300/– प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये .... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम : ....

पता : ....

....

पिन : .... मो.: ....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशिः

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/– प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत) साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत) साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत) साधारण डाक
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत) साधारण डाक

(10 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क– ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक–पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/– अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे–191, मंगल भवन, ई–6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)– 462016

फोन : 0755–2562294, मो.–94256 78058

ई–मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

वेबसाइट : https://www.kalasamaymagazine.com https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेंजे:– जे–191, मंगल भवन, ई–6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
- नमूना प्रति ₹100/– , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/–

–प्रबंध संपादक

बेसब्र समय के सूत्र :अवधेश बाजपेयी

अवधेश बाजपेयी

अवधेश बाजपेयी समकालीन भारतीय कला के एक बहुमुखी और प्रयोगधर्मी कलाकार हैं। बचपन से ही प्राकृतिक सामग्रियों से रंग बनाते हुए शुरू हुई उनकी कला-यात्रा ने उन्हें चित्रकला, मूर्तिकला, म्यूरल, पॉटरी और विभिन्न मिश्रित माध्यमों तक विस्तृत किया। 1989 में जबलपुर के कलानिकेतन से औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने शांति निकेतन, भारत भवन (भोपाल), मुंबई और दिल्ली जैसे प्रमुख कला केन्द्रों में अपने अभ्यास को समृद्ध किया। वाजपेई की कला समकालीन संकटों, अवचेतन, विज्ञान, इतिहास और दर्शन के अंतर्संबंधों की खोज करती है। उनकी पेंटिंग्स तरल, बहु-केंद्रित और सूक्ष्म त्रिआयामी बिंदुओं, रेखाओं व आकृतियों के गणितीय संयोजन पर आधारित होती हैं। उनकी कृतियाँ अनेक संस्थानों तथा निजी संग्रहों में संकलित हैं, जो समकालीन भारतीय कला में उनके विशिष्ट और विचारोत्तेजक योगदान को स्थापित करती हैं।

मरते हुए प्यार करना

'जीते हुए की जगह मरते हुए प्यार करना'- कहना ही जीना है। जन्म लेते ही मृत्यु शुरू हो जाती है, इसलिए छटपटाते हुए प्यार करना मेरी मजबूरी है। प्यार करते हुए मैं समय को बिल्कुल भी स्पेस नहीं देता। इस वक्त समय मेरा दुश्मन होता है। इस वक्त मैं साँसों को भी पसंद नहीं करता। टुकड़े-टुकड़े साँसों को मैं लम्बी साँस में बदल देता हूँ। साँस मुक्त जीवन ही कला है- यह घोर कष्ट दायी है।मृत्यु और जीवन से मुक्त होते हुए जो जीवन है, वही असल है। यह सूक्ष्मता ही प्यार का क्षणिक क्षण है। मृत्यु के आगोश में ही मैं प्यार कर पाता हूँ। मुझे हमेशा यही लगता है कि बस यही अंतिम क्षण है। इसी अंतिम क्षण में मुझे अपना अस्तित्व कितना प्यारा लगता है, कभी नहीं बता पाऊँगा।

सफलता की काट-छाँट

जहाँ भी देखो चौतरफा सफलता की बातें हैं। आप सफल कैसे हो सकते हैं, इसके अनंत विज्ञापनों से, मोटिवेशनलों से मीडिया हमेशा बजबजाता रहता है।लोग खूब पढ़ते हैं, मैंने भी खूब पढ़ा है। 'सफलता' राजनीति, खेल, व्यापार में जिस तरह संभव हो पाती है वैसी कला, साहित्य, संगीत में संभव नहीं। एक कवि ने महान कविता रच दी, अब इसे सफलता के खाँचे में किस तरह बिठाओगे? लोग तभी जानेंगे जब उसे कोई महान पुरस्कार मिलेगा। यदि जीते जी नहीं मिल पाया तो क्या वो असफल है? तो सफलता का मापदंड कलाओं में फिट नहीं बैठता। उसने महान ग़ज़ल लिखी इसे कैसे नापोगे ? उसने महान प्रेम किया,आज माँ ने महान रोटी मुझे खिलाई; इसे कैसे नापोगे? आज मैंने सर्वश्रेष्ठ चुम्बन लिया, आज हवा से खूब सारी बातें कीं; इसे भला कोई कैसे नाप सकता है। सफलता एक भ्रम है और कुछ नहीं। एक साधारण चित्रकार कब का महान चित्र रच चुका है, पर आपको खबर ही नहीं है। सफलता जैसी अवधारणा अमानवीय है। वानगॉग को हम कैसे सफल कह सकते हैं, उसने तो आत्महत्या कर ली थी, भले ही उसका एक चित्र आज अरबों रुपयों में बिक रहा है। फ़टे जूतों वाले प्रेमचंद कैसे सफल कहलायेंगे। मुक्तिबोध कैसे सफल कहलायेंगे? जीवन की सफलता का संबंध आर्थिक आंकड़ों से बिलकुल नहीं होता। मरने के बाद सफल हुए तो इसका कोई अर्थ नहीं है। सफल अपनी नजर में होना चाहिए, बाजार की नजर से नहीं। मैं अपनी नजर में सफल हूँ और रोज अपनी सफलता को काटता-छाँटता भी रहता हूँ। बिलाशक वह सफल है, जो एक साल में 50 हजार करोड़ का गबन करके देश को लूटने में अव्वल रहा।

देवताल, चित्र और मैं

यहां वास्तविक दृश्य और उसका मेरे द्वारा बनाया गया चित्र दोनों हैं। कैमरे और चित्र में बहुत अंतर होता है। दृश्य कल्पना का आधार भी होता है। दृश्य के भीतर बैठकर चित्र बनाने में अदभुत सौंदर्य होता है। स्टूडियो में कल्पना और स्मृति, यादों से चित्र बनाते हैं और यहां यह सब तो है पर साथ में आंखों के सामने करोड़ों बिम्ब और दृश्य भी मौजूद हैं और जो मर्जी, चाहे जिसे उठाकर अपने कैनवास

कलाकृति: अवधेश बाजपेयी

में संयोजित कर सकते हैं और कहीं भी, कोई भी कुछ नहीं कहने वाला। और अब यहां चिड़ियों का ढेर लगा दो, जानवरों का, तितलियों का, लोगों का, खंडहरों का ढेर लगा दो इत्यादि। चित्र में दो पक्षी हैं इनका नाम दूधराज है इनमें एक सफेद है और दूसरा कत्थई सा और यह राजकीय पक्षी हैं । और ये इस तालाब पर इसलिए आते हैं क्योंकि यहां के पानी में दवाईयां नहीं डाली जाती तथा वातावरण काफी ठीक है। इस तालाब से 300 मीटर की दूरी पर दो तालाब और है, यानी एक किलोमीटर के घेरे में तीन तालाब हैं, और इन तीनों तालों के इर्द गिर्द ग्रेफाइड चट्टानों के पहाड़ हैं। इन चट्टानों को आप आधुनिक शिल्प कह सकते हैं जैसे हेनरीमूर के शिल्प हो, क्योंकि विशालकाय शिल्प के मामले में हेनरीमूर ही हैं उन्हें गूगल करके देखिएगा एक बार भारत में भी कुछ शिल्प बड़े जहाज में लद कर एग्जिबीशन के लिए आए थे।

आज से करीब 70 साल पहले आचार्य रजनीश ने इन्हीं तालों के बीच अपना आश्रम बनाया था और मैंने भी अनुमान लगाया कि जबलपुर शहर में इससे ज्यादा सौंदर्य से भरपूर साधना या रचनात्मक कार्यों के लिए कोई और जगह नहीं है। इस जगह का नाम देवताल और शैलपर्ण उद्यान है।

कलाकृतिः अवधेश बाजपेयी

चित्र के भीतर चित्र

करीब 25 साल पहले विजुअल, होर्डिंग्स के बड़े होने का कारण पकड़ लिया था या सिनेमा के बड़े पर्दे इत्यादि। पर चित्रकला को इनके मुकाबले में खड़ा नहीं कर सकते। तो मैंने एक युक्ति खोजी कि चित्र के भीतर चित्र और उसके भीतर चित्र बनाओ। दर्शक को चित्र बहुत संयम, अवकाश, विराम के साथ देखना होगा, यदि जल्दीबाजी करेगा तो मेरा चित्र देख ही नहीं सकता । इसलिए मेरे चित्रों में कोई फोकस प्वाइंट नहीं होता, जहां देखेंगे वही फोकस होगा जैसे हम प्रकृति को देखते हैं।!

दुनियां के बहुत से चित्रकार डिटेल में बनाते हैं पर क्यों बनाते हैं वो जानते होंगे लेकिन मैं क्यों बनाता हूं यह कुछ कारण है जो बहुत स्थूल हैं बहुत मोटी बात है। अब हमें इसके काव्यात्मक सूक्ष्म कारणों की तरफ जाना चाहिए जहां से चित्र कला प्रारंभ होती है। और यह भविष्य की कला है जो वर्तमान से शुरू होती है। अभी इतना ही...।

अनंत का चिह्न

सुना है कि मानव शरीर भी आकाश गंगा की तरह विराट और अनंत है। एक चित्रकला शोधार्थी के कारण मेरी यह जिज्ञासा का विषय बन गया कि शरीर जैसा दिखाई देता है इसके अलावा भी बहुत ज्यादा और भी है, और उसे खोजना है। तो मेरा ध्यान शरीर की भौतिक संरचना के अलावा उसकी संवेदनात्मक संरचना की ओर गया और इस चित्र को अवचेतन का x ray कह सकते हैं या संवेदना का x ray। X ray का मतलब चेतना का ठोस रूप, मतलब यथार्थ। बहुत वर्षों से यह विचार कर रहा हूं कि इस तरह के काल्पनिक दृश्य को किस तरह चित्रित किया जाए। तो विचार आया गणितीय चिन्हों के सहयोग से और गणितीय चिन्हों की तरह नये चिह्नात्मक बिम्ब बनाकर, उक्त तरह के नए काव्यात्मक चित्र रचे जा सकते हैं। इनमें से एक चिन्ह है अनंत का, जिसमें दो शून्य जुड़े हुए, दृश्य के आधार पर कह सकते हैं। हमारी सभी इंद्रियां लगातार सक्रिय रहती हैं इसलिए इस आधार पर इन्हें अनंत रूप से सक्रिय कहा जा सकता है। तो इस चित्र में मैने अनंत संकेत का हर जगह उपयोग किया है।

अनंत चिह्न की किसने खोज की मैं नहीं जानता, पर अनंत का यह सिंबल अद्वितीय है इसका अल्टरनेट हो ही नहीं सकता। इसे आप पेंसिल या डॉट पेन से बनाइए, पेन को लगातार सदियों तक घुमा सकते हैं। पर यह घुमाव होरिजेंटल ही होता है और वर्टिकल घुमाएंगे तो यह संख्या 8 बन जाएगा तब यह अनंत नहीं हो सकता।

इस चित्र में सारी संरचनाएं, अनंत चिन्ह की संरचनाओं की तरह रची गई हैं। लेकिन इस चित्र को, यथार्थ का चित्र नहीं कह सकते इसे चित्रात्मक काव्य ही कह सकते हैं। सबसे बड़ा महान अनंत आँख है। एक आंख में ही 40 लाख नाड़ियां हैं, अभी तक मेडिकल साइंस इतना गिन पाया है, क्योंकि इसके आगे की गणना के लिए विज्ञान अभी विकसित हो रहा है।

शरीर यही नहीं है जो सामने दिख रहा बल्कि शरीर वह है जो दिखाई नहीं देता। चेतना दिखाई नहीं देती पर हमारा पूरा जीवन चेतना पर केंद्रित है। शरीर कैसा भी हो, चेतना ही महत्वपूर्ण है। तो यह चेतना का चित्रांकन है।

जब हम चेतना के साथ किसी भी चीज को देखते हैं तो उसका रूप अपने आप बदल जाता है तब आँख का काला गोला ब्लैक होल की तरह दिखता है और हमारा अस्तित्व ही उसमें समा जाता है और हम शेष तक नहीं रह जाते।

यहां पर मेरी इन्द्रिकता अस्तित्व वाद की तरफ मुड़ जाती है और मैं ज्या पॉल सात्र, कामू की तरफ मुड़ जाता हूं। और फिर इसे भूलने की महान कोशिश करता हूं। इसमें सफल हो जाता हूं। और यह चित्र सब कुछ भूलने के बाद ही संभव हो पाता है।

वर्तमान में रहने के लिए सबकुछ भूलना जरूरी है। तो मेरे पास न भविष्य है और न भूतकाल। मैं वर्तमान में ही उबलता रहता हूं लेकिन जलता

नहीं हूं, कारण वर्तमान सूर्य का प्रकाश है। और सबसे महान वाक्य - वर्तमान की अवधि क्या है? चेतना के साथ, कितने क्षणों तक निहार सकते हो।

पहला शिल्प

दुनिया का पहला शिल्प रोटी है जिसे दोनों हाथों के बीच रचा जाता है। इसके बाद घर सबसे महान शिल्प है, दुनिया का हर गरीब या अमीर आदमी सबसे पहले अपना घर ही बनाना चाहता है। घर के बाद हथियार की खोज आज के एटम बम की तरह थी। मिट्टी का चूल्हा बनाया, ये भी पहले शिल्प है। अब आप गिनते जाईए। सबसे महान शिल्प में हमें जूते को चुनना चाहिए क्योंकि लंबी यात्राओं की शुरुआत जूते से शुरू होती है और यह चर्मकार उस समय का बिल्कुल गैलीलियो की तरह का आधुनिक वैज्ञानिक था। पर उसे हजारों वर्षों के बाद, दीन हीन क्षुद्र प्राणी बना दिया। किसने? इस पोस्ट को यहीं समाप्त कर रहा हूं। इसके आगे भविष्य में लिखूंगा।

रंगों की भाषा

हर चित्रकार की एक प्लेट होती है, जिसमें से वह रंगों को समेटता-उठाता है। प्लेट में रंगों का जो सम्मिश्रण दिखता है, उसके आधार पर भी उस चित्रकार के रचना- संसार के बारे में कयास लगाया जा सकता है। यह किसी कवि की हस्तलिपि की तरह होता है।

रंगों के बारे में सबसे ज्यादा भ्रम है दुनिया में। कौन सा रंग क्या है, कौन सा रंग कहाँ- कैसे लगायें; यह सब सोच- सोचकर, फाइन आर्ट कॉलेज वाले दिनों में परेशान होता था। मेरे प्रश्नों का उत्तर मेरे गुरुओं के पास भी नहीं होता था और मुझे देखते ही वे इरिटेट होने लगते। खैर! मैं खेतों और जंगलों में जब घूमने जाता तो प्रकृति की हर संरचना को देखते हुए उनमें रंगों के प्रकार, संयोजन, शेड्स, टोन, अनुपात वगैरह को ध्यान से देखता। फिर फूलों के बगीचों में घूमना शुरू किया और एक ऐसा संयोग हुआ कि फूलों की खेती करने का मौका मिला। एक मित्र के साथ फूलों के बड़े-बड़े बगीचे लगाने का अनुभव और उनकी देख- रेख। कुल मिलाकर मैंने यह पाया कि किसी भी रंग के साथ कोई भी रंग मौजूद था। ऐसा कोई भी रंग नहीं था, जिसमें कुछ अनुपस्थित हो। हर रंग में हर रंग मौजूद था। यह बात समझ में आते ही मैंने रंगों के व्याकरण की किताब कुएँ में डाल दी- नदी या समुद्र पास नहीं थे!

कलाकृतिः अवधेश बाजपेयी

हर रंग की अपनी भाषा होती है या कहें हर जर्रे की भाषा होती है और किसी भी कण का इस्तेमाल उसकी भाषा के हिसाब से करना चाहिए। रंगों में कोई जाति व्यवस्था नहीं है। जैसे प्रकाश, अंधकार, हवा, पानी, आकाश, धरती में कोई भी जाति व्यवस्था नहीं है- मनुष्यों को छोड़कर। जब मैं चित्र बनाता हूँ तब मेरे आंतरिक सौंदर्य के आर्केस्ट्रा के तत्व, उस क्षण के जिस महान स्वर को महसूस करते हुए जिस रंग पर ब्रश फुदक जाए, उसे ही लगा देता हूँ। जीवन परिभाषाओं से परे है। हर परिभाषा अगले ही क्षण बदल जाती है। विज्ञान के हलके में भी सारे वैज्ञानिक परिभाषा बदलने की खोज ही तो करते रहते हैं। जो कर देता है उसे नोबल मिल जाता है। ये सारी बातें कलाकार के रंग प्लेट पर हैं। रंग कभी सुंदर या असुंदर नहीं होता या कोई भी मनुष्य खूबसूरत या बदसूरत नहीं होता। जो ऐसा नहीं सोच पा रहे या अनुभव नहीं कर पा रहे हैं उन्हें मनुष्य होने में बहुत समय लगेगा। ये मेरा जजमेंट बिल्कुल नहीं है। बस मनुष्य की तरह होने की कोशिश कर रहा हूं।

क्या होती है सुंदरता

मैं देर तक उसके चेहरे को काफी गौर से देखता रहा था। वह सूखे पत्ते की तरह अकेला था। यह बात रात 12 बजे के आसपास की थी। संयोग से हम पास ही बैठे थे। सस्ते होटल में खाने के फेर में यहाँ रिक्शे वाले, मजदूर, कुली या कुछ भिखारी जैसे लोग ही खाना खाने आते थे। पूरा खाना 20 रुपए में। चार रोटी और सब्जी। प्याज-मिर्ची- नमक मुफ्त। मैंने उससे बातचीत का सिलसिला शुरू किया! कुल मिलाकर पता यह चला कि उसका सब कुछ डूब गया है। उसके पास कुछ नहीं है। रोज किराए से रिक्शा लेता है और उसी को चलाकर जिंदगी की गाड़ी खींच रहा है। कहना होगा कि किसी तरह घसीट रहा है। उसके पास किसी भी तरह का कोई भी कागज, आधार टाइप कुछ भी नहीं था, उसके पास खुद के बारे में बताने लायक कोई भी प्रामाणिक जानकारी नहीं थी, बस जो वो बताएं उस पर भरोसा करने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। मेरे पास भी कुछ भी नहीं था कि मैं उसकी कुछ मदद कर पाता, पैसे भी नहीं, क्योंकि मेरे पास पैसे मेरे खाने के ही थे और सुबह की दिनचर्या के लिए कम से कम पांच रूपये बचा के रखने थे कि सुबह एक चाय और दो रुपए उसके लिए, क्योंकि दारू और संडास की दुकान में उधारी किसी गरीब आदमी की नहीं चलती। फिर हम लोग जीवन के दर्शन की बातों पर अपना ज्ञान पेलने लगे, मैं उसे अपना परिचय देने में असमर्थ था। उसी आदमी की तरह है यह चेहरा, जो अक्सर मेरे चित्रों में दिखता है, ऐसे हजारों चेहरे मेरे भीतर मौजूद हैं। जब इन चेहरों को लगातार देखता हूं तो धीरे-धीरे जमीन की तरह दिखने लगते हैं, इनमें इसी तरह की लड़कियों को, स्त्रियों को भी शामिल कर लें। रूप सौंदर्य जैसी किसी चीज को मैं नहीं मानता। क्योंकि ऐसा कुछ होता ही नहीं। कोई भी लड़की या स्त्री की सुंदरता मुझे पल्ले नहीं पड़ती। जैसे मेरी मां, बस मां थी, वो सुंदर थी या नहीं थी मेरे दिमाग में कभी आया ही नहीं, बस वो मां है जो पूरी आकाशगंगा में व्याप्त है और मृत्यु के अंतिम क्षणों तक उसी तरह प्यार कर रही थी जब उसने मुझे पहली बार

जन्म के समय देखा था। उसका पूरा अस्तित्व ही सौंदर्य मय था, त्वचा सौंदर्य, इस बात को, बाजार और सत्ताओं के बीच जाना। सुंदरता जैसी कोई चीज नहीं होती, क्या हम सूर्य को यह बोले कितना सुंदर है, अरे भाई वो पृथ्वी के अस्तित्व का कारण है। विचार सुंदर है, अरे भाई नहीं, ये विचार पूरी मानवता को बदल के रख देगा। यह उसी आदमी को प्यार करते हुए यह चित्र बनाया, मुझे खुशी है, इस चेहरे में हजारों मील की धरती ही दिखेगी, आंखें ऐसी कि ईश्वर भी कहेगा एक दिन के लिए उधार दे दो यार।

मनुष्य होने का मतलब

मेरे पास लिखने का कौशल बिल्कुल नहीं है, फिर भी अपने चित्रों के कुछ संकेत देने की कोशिश करता हूँ। इसलिए कि आपको यह न लगे कि चित्रकला आपको समझ नहीं आती और अज्ञानता के बोध से ग्रसित रहें, या यह महसूस करें कि आप में ही कुछ कमी हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है। बात सिर्फ इतनी है -खासकर भारत में- कि जितना हम पढ़ते, सुनते, देखते (फिल्म) हैं, इनके अनुपात में हम चित्र देखते ही नहीं। भारत में लगातार चित्रों को देखने की परंपरा विकसित ही नहीं हो पाई। किसी सभ्यता को विकृत करने के लिए पांच साल ही पर्याप्त हो सकते हैं, तो 250 साल भयावह होते हैं आगे की कल्पना आप खुद कर लें। आज के परिणामों को जानने के लिए इतिहास में जाना ही पड़ेगा, चाहे जैसा भी हो। हर बात की व्याख्या करने के लिए इतिहास में जाना ही पड़ेगा। कारण भूतकाल में मौजूद रहते हैं, क्योंकि जब घट रहा होता है वह वर्तमान होता है। चित्रकला को कैसे देखते हैं- कैमरे की तरह या जैसा वास्तविक जीवन में जैसा दिख रहा है उस तरह, दर्शन की तरह, संगीत, काव्य, कहानी, नाटक आदि की तरह। नहीं बिल्कुल नहीं। चित्र को चित्र की तरह ही देखना है। कहानी पर जब फिल्म बनती है, तब वो कहानी का रूपांतरण है, कहानी बिल्कुल नहीं है। ऐसे में कहानी बीज है। हम सब बीज रुप में ही आपस में बात करते हैं और जब हम ठहर जाते हैं तो मिट्टी बन जाते हैं और हजारों गर्भ आकार ले लेते हैं। कलाकार हमेशा गर्भ की तरह कुछ नया रचने को आतुर होता है। इसलिए पानी कितना अच्छा लगता है, बरसात कितनी अद्भुत लगती है, प्यास से महान कुछ दुनिया में है ही नहीं, रोटी न मिले तो चल जाएगा पर पानी....खैर छोड़िये।

अब पानी की जगह सांस ने ले ली है। सांस में सब कुछ होता है क्योंकि मैंने जो अभी सांस ली वो तुम्हारे भीतर से निकली थी। तुम कौन हो मैं नहीं जानता। तुम्हारी सांस मेरी भी है और ये सांस फिर किसी की होगी। हम सब एक सांस से ही बंधे हैं, जबसे मनुष्य इस धरती में आया है। जैसे अनंत लंबी बेल के पत्ते। खरबों पत्तों में से एक पत्ता आप एक मैं। मानवता की धारा कभी नहीं टूटी। जैसे सांसों की माला। तुम भी मैं हूं और तुम ही मैं हूं। जब तुम अपनी प्रगति से खुश होते हो, उसी समय मनुष्य होने से वंचित हो जाते हो। किसी मनुष्य का मनुष्य न होना ही नर्क है या फिर घोर असफलता। इसे ही धीमा जहर कहा जाता है। किसी के दुख से दुखी होना, मुझे मनुष्य बना देता है, भले ही मैं उसके लिए कुछ भी न कर पाऊँ।

सांचेज़ का जादू

एकबार गैब्रियल गार्सिया मार्केज ने टोमास सांचेज़ (Tomas Sanchez) के चित्रों को देखकर यह कहा था कि दुनिया को इतना ही सुंदर होना चाहिए। मैं मार्केज का प्रशंसक हूँ, स्वाभाविक रूप से मुझे उनकी बात बहुत महत्वपूर्ण लगी। मैं सांचेज़ के चित्रों का भी दीवाना हो गया और मेरा ध्यान मध्य भारत के जंगलों की ओर गया जो कि पहले से ही था। एक मजेदार बात आपको बताना चाहता हूँ कि बड़े कैनवास में कोई एक दो आदमी या एक दो कमरे बना ही नहीं पाता। मुझे बहुत बड़ा भूभाग, गाँव या शहर बनाने में मजा आता है। लेकिन ऐसा क्यों, यह मैंने खोजने की कोशिश की।

कलाकृति: अवधेश बाजपेयी

छोटे कागज में मैं छोटा चित्र कितने भी बना दूँ, पर बड़े कैनवास में पूरा संसार बनाने की कोशिश करता हूँ। यह बात मुझे अभी कुछ साल पहले समझ में आई। मैं गाँव में पैदा हुआ। बचपन में दोस्तों के साथ खेतों, जंगलों में ही घूमते या आसपास के गांवों में। घर सिर्फ खाने और सोने ही जाते। जब खेत बरसात में भर जाते तो मीलों बाढ़ के पानी में तैरते और कहीं दूर से लौटते। जब शहर आया तो पूरा शहर रौंदते। मुझे भीड़ बहुत अच्छी लगती है, पता नहीं क्या-क्या होता है...इसलिए आपने मेरे चित्रों में देखा होगा पूरा भरा होता है। इतना कि तिल धरने की भी जगह न मिले। इसी के फेर में त्रिआयामी बिंदु (three D Dots) पैदा हुए। इसकी अलग लंबी कहानी है, दार्शनिक इंटरप्रेटेशन के साथ। मेरे चित्रों में हर स्ट्रोक के पीछे एक लंबी कहानी होती है। जहां मैं रहता हूं, उसका एंथ्रोपोलॉजी, भौगोलिक, सौंदर्य, सामाजिक संरचना, मायथोलॉजी और इसके साथ समकालीन अंतर्राष्ट्रीय कला के मेरे हिसाब व मापदंड भी इसमें शामिल होते हैं। जब हम यह जानेंगे कि दुनिया कितनी अद्भुत है, तभी तो उसे वैसा ही बनाए रखने के लिए अपना जीवन होम करेंगे।

संपर्क : 606 संजीवनी नगर,गुलमोहर पार्क के पास,गढ़ा,जबलपुर - 482003
मोबा. 8770094340

■

अर्थ खोजती समकालीन कला

जय त्रिपाठी

घुमक्कड़ कलाकार-ऋषि का पुत्र होने के कारण बचपन से ही हिमालयी रहस्यवाद और महानगरों की कठोर सच्चाइयों—दोनों के साक्षी। यही विरोधाभास उनकी चित्रकला और लेखन की आत्मा है, जहां आध्यात्मिक गहराई और सामाजिक यथार्थ साथ हैं। "राष्ट्रीय सहारा" हिंदी दैनिक अखबार में मुख्य कला निदेशक। दैनिक जागरण तथा दैनिक आज अखबार की अग्रणी टीमों का महत्वपूर्ण हिस्सा। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा वरिष्ठ फेलोशिप से सम्मानित। साथ ही माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में अतिथि व्याख्याता और राष्ट्रीय कला शिविरों में कला लेखक, वक्ता एवं कलाकार के रूप में नियमित भागीदारी। जय त्रिपाठी पिछले 35 वर्षों से अधिक समय से कला लेखन और एक कलाकार के रूप में कला कर्म करते हुए कलात्मक ऊर्जा और वैचारिक गहराई के बोध से सम्पन्न हैं।

मानव सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य अपनी भावनात्मकता को स्वचेष्टा से एक आकृति के रूप में रचता रहा है। जिसे वह शनैः शनैः अपने अनुभवों द्वारा रंग, रूप, आकार, आवाजों या शब्दों में बताई गई आकृतियों के जरिए अपनी भावना को एक कलाकार के रूप में इस तरह पहुंचाता रहा है कि देखने वाले भी वहीं महसूस कर सकें। संभवतः यही कला का काम है, जो कि सभ्यता के प्रारंभ से लेकर आज 21वीं सदी के तीसरे दशक तक की समकालीन कला में देखा जा सकता है। आज कला में वर्णन, विश्लेषण, व्याख्या और निर्णय, कलाकृति के अर्थ, संदर्भ और गुणवत्ता का मूल्यांकन करने के लिए किये जाते हैं। क्लेमेंट ग्रीनबर्ग, हेरोल्ड रोसेनबर्ग और रॉबर्टा स्मिथ जैसे प्रभावशाली आलोचकों ने इन औपचारिक सिद्धांतानुसार पर ध्यान केंद्रित करते हुए आधुनिक कला समझ को आकार दिया है। जो कि इस बात की ओर इंगित करती है कि आधुनिक कला आलोचना अक्सर मात्र वर्णन से आगे न बढ़कर इस बात का विश्लेषण करती है कि कोई कलाकृति अपने सांस्कृतिक संदर्भ में कैसे कार्य करती है। वहीं नताली हेनिच जैसे आलोचकों ने यह बात कही है कि समकालीन कला अपनी ही परिभाषा का उल्लंघन करने के लिए जानी जाती है। इसी संदर्भ में जब हम भारतीय समकालीन कला की बात करते हैं तो मन में यह प्रश्न आता है कि रचनात्मकता क्या क्राफ्ट्स है, डेकोरेटिव डिज़ाइन है? जो कहीं संवेदनहीन तो नही हो रही। आज के दौर में प्रायः यह आभास होता है कि भारतीय समकालीन कला आज एक ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रही है, जहां उसके सामने पहचान, वैचारिक स्वतंत्रता और बाजार की चुनौती है। और यदि हम भारतीय कला का इतिहास देखें तो कला और शिल्प का द्वैत कभी उतना कठोर नहीं रहा जितना पश्चिम में रहा है। मंदिर स्थापत्य, भित्ति-चित्र, लोक चित्रकलाएँ इन सबमें सौंदर्य और उपयोगिता एक साथ विद्यमान रहे। औपनिवेशिक काल में जब पश्चिमी अकादमिक यथार्थवाद भारत आया, तब 'फाइन आर्ट' और 'क्राफ्ट' के बीच विभाजन अधिक स्पष्ट हुआ।

राजा रवि वर्मा ने पौराणिक आख्यानों को यूरोपीय तकनीक में चित्रित कर लोकप्रियता अर्जित की। उनके कार्य में सजावटी तत्व भी थे, किंतु वे सांस्कृतिक पुनर्रचना का माध्यम भी बने। दूसरी ओर, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने भारतीय आत्मा की खोज में एक वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र प्रस्तुत किया। आगे चलकर अमृता शेर-गिल ने भारतीय जीवन की संवेदनशीलता को आधुनिक शैली में व्यक्त किया, और एम.एफ. हुसैन, सूज़ा, रजा, गायतोंडे आदि जैसे कलाकारों ने भारतीय आधुनिकता को अंतरराष्ट्रीय विमर्श से जोड़ा। यह कलाकार मात्र सज्जा से नहीं अपितु समय, समाज और पहचान के प्रश्नों से जुड़े हुए थे। इसलिए आज जब हम डेकोरेटिव और क्राफ्ट की बात करते हैं, तो हमें इतिहास की इस जटिलता को ध्यान में रखना चाहिए। इक्कीसवीं सदी में कला का वैश्विक बाजार अत्यंत प्रभावशाली हो गया है। डेमियन हर्स्ट की चमकीली और श्रृंखलाबद्ध पेंटिंग्स हों या जेफ कून्स की अत्यधिक पॉलिश की गई मूर्तियाँ—इन कृतियों में कला और संरचना की रूपरेखा, रचना, योजना के बीच की सीमा में धुंधली हो जाती है। आर्ट बेसेल जैसे अंतरराष्ट्रीय आर्ट फेयरों में कला अक्सर एक ब्रांडेड ऑब्जेक्ट के रूप में प्रस्तुत होती है—दृश्य रूप से आकर्षक और निवेश के अनुकूल। इस वैश्विक परिदृश्य का प्रभाव भारतीय कलाकारों पर भी पड़ रहा है। गैलरियाँ और कलेक्टर ऐसी कृतियों को प्राथमिकता देते हैं जो "स्पेस-फ्रेंडली" हों, आंतरिक सज्जा के अनुरूप हों और शीघ्र बिक सकें। परिणामस्वरूप कई कलाकार अनजाने में ही अपनी वैचारिक जटिलता को कम कर देते हैं और अधिक सजावटी या डिज़ाइन-प्रधान कृतियाँ बनाने लगते हैं। यहां संकट मात्र सजावट का नही वरन यह है कि कला, जो मूलतः प्रश्न पूछने और कटु सत्य उजागर करने का माध्यम है, कहीं केवल 'वॉल आर्ट' या 'लक्ज़री ऑब्जेक्ट' में न बदल जाए।

कला का एक प्रमुख आयाम सौंदर्य है। अतः इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है कि क्या कला और डेकोरेटिव एक-दूसरे के विरोधी हैं? यदि हम पुनर्जागरण की चित्रकला, भारतीय मंदिर मूर्तिकला या मुगल मिनिएचर देखें, तो वे स्थान को सुशोभित भी करते हैं। अतः डेकोरेटिव होना अपने आप में कला-विरोधी नहीं है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब सजावट ही अंतिम लक्ष्य बन जाए। डेकोरेटिव आर्ट में प्रायः रूप, पैटर्न और रंग प्रमुख होते हैं; जबकि समकालीन कला में विचार, अवधारणा और आलोचनात्मक दृष्टि भी समान महत्व रखते हैं। यदि कोई कृति केवल दृश्य आनंद के लिए निर्मित है और उसके पीछे कोई गहन वैचारिक या सामाजिक विमर्श नहीं है, तो वह संरचना के अधिक समीप है। परंतु यदि वही कृति सौंदर्य के माध्यम से गहरे प्रश्न उठाती है, जैसे पहचान, राजनीति, स्मृति या पर्यावरण—तो वह समकालीन कला की श्रेणी में आती है, चाहे वह कितनी ही आकर्षक क्यों न हो। भारत में यह बहस इसलिए अधिक जटिल है क्योंकि यहाँ लोक और शिल्प की परंपराएँ अत्यंत समृद्ध हैं। मधुबनी, वारली, गोंड, पटचित्र—इन सबमें सजावटी गुण हैं, पर वे केवल सज्जा नहीं हैं; वे सामुदायिक स्मृति और आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति हैं। आज जब "क्राफ्ट रिवाइवल" या "इंडिजिनस एस्थेटिक्स" के नाम पर कई डिज़ाइन उत्पाद बनाए जा रहे हैं, तो वे पारंपरिक रूपों को नए बाज़ार में प्रस्तुत करते हैं। यह प्रवृत्ति सकारात्मक भी हो सकती है—कारीगरों को रोजगार मिलता है, परंपराएँ जीवित रहती हैं, और स्थानीय शिल्प को वैश्विक पहचान मिलती है। लेकिन खतरा तब है जब इन रूपों को केवल सतही पैटर्न में बदल दिया जाए और उनके सांस्कृतिक संदर्भ को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए। जब हर सजावटी वस्तु को 'आर्ट' कह दिया जाता है, तो कला की आलोचनात्मक शक्ति क्षीण हो सकती है।

भारतीय समकालीन कलाकारों की असली चुनौती यही है कि वह न तो पश्चिमी बाज़ार के दबाव में अपनी विशिष्टता खो दे, और न ही परंपरा के नाम पर केवल सजावटी पुनरावृत्ति तक सीमित रह जाए। आज भारत में ही नही वरन वैश्विक स्तर पर भी कला में तत्व और तकनीक के बीच की सीमाएँ लगातार टूट रही हैं। डिजिटल आर्ट, इंस्टॉलेशन, फैशन-आर्ट सहयोग, आर्ट-आर्किटेक्चर इंटरफ़ेस—ये सब नए प्रयोग हैं। समकालीन कलाकार अब केवल कैनवस तक सीमित नहीं हैं; वे अनुभव रच रहे हैं, स्थान का पुनर्सृजन कर रहे हैं, और दर्शक को सक्रिय भागीदार बना रहे हैं। ऐसे में अलंकरण और बनावटीपन का प्रवेश स्वाभाविक है। प्रश्न यह नहीं कि यह उचित है या नहीं; बल्कि यह है कि क्या कलाकार अपनी स्वतंत्र दृष्टि और आलोचनात्मक चेतना को बनाए रख पा रहा है। कला केवल उपभोग की वस्तु बन जाए, तो वह अपनी परिवर्तनकारी क्षमता खो देती है। किन्तु यदि वह सौंदर्य और विचार के संतुलन को साध ले, तो अलंकृत और बनावट भी तत्वों के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन सकते हैं। समकालीन भारतीय कला का यह संकट वास्तव में एक अवसर भी है। यह समय आत्ममंथन का है—यह समझने का कि कला की मूल पहचान क्या है। कला को क्राफ्ट से अलग करना आवश्यक नहीं; बल्कि उनके बीच संवाद स्थापित करना अधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय कला को अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए वैश्विक विमर्श में सक्रिय भागीदारी करनी होगी। उसे ऐसी भाषा विकसित करनी होगी जो स्थानीय अनुभवों से उपजे, पर वैश्विक दर्शक से संवाद कर सके।

यदि भारतीय कलाकार केवल बाज़ार की मांग के अनुसार सजावटी उत्पाद बनाते रहेंगे, तो वे दीर्घकाल में अपनी रचनात्मक स्वतंत्रता खो देंगे। पर यदि वे सौंदर्य, विचार और सामाजिक चेतना का संतुलन साधेंगे, तो वे विश्व मंच पर एक विशिष्ट और प्रासंगिक उपस्थिति दर्ज कर सकते हैं। अतः कला में अलंकरण और बनावट उसके शत्रु नहीं, बल्कि संभावित सहयोगी हैं—बशर्ते वे कला की आत्मा पर हावी न हो जाएं। वैश्विक दृष्टिकोण से भी देखें तो कला का भविष्य अंतःविषय, बहुल और संवादपरक है। भारतीय समकालीन कला को भी इसी दिशा में आगे बढ़ना होगा—जहां वह न तो केवल सजावट बने, न ही आत्ममुग्ध वैचारिकता में फँस जाए। सही दिशा वही होगी जहाँ कला सौंदर्य के माध्यम से प्रश्न उठाए, विचार उत्पन्न करे और समाज से जीवंत संवाद बनाए रखे। तभी वह सिमटने से बचेगी और अपनी व्यापक, मानवीय और परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकेगी।

सम्पर्क: प्लॉट नंबर-136, फ्लैट नंबर-303, मीडिया एन्क्लेव, सेक्टर-6, वैशाली, गाजियाबाद। पिनकोड-201010

कला समय: बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।

कला-मत

समकालीन कला की अर्थवत्ता और आधुनिक कला

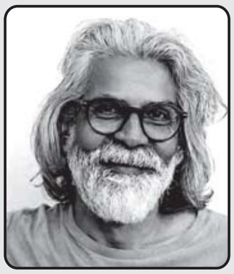

विनय अंबर

विनय अम्बर (विनय कुमार सिंह जादौन) समकालीन भारतीय कला जगत के बहुआयामी कलाकार हैं। पिछले लगभग 25 वर्षों से वे स्वतंत्र कलाकार के रूप में सक्रिय हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, रंगमंच कला-निर्देशन, फोटोजर्नलिज़्म और सांस्कृतिक सक्रियता उनके कार्यक्षेत्र रहे हैं। उन्होंने रानी दुर्गावती के जीवन पर आधारित महत्वपूर्ण चित्र-श्रृंखलाएँ निर्मित कीं, जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत की गईं। देश-विदेश में अनेक एकल एवं सामूहिक प्रदर्शनियों में सहभागिता के साथ वे ललित कला अकादमी के राष्ट्रीय शिविरों में भी आमंत्रित रहे हैं।1992 में मध्यप्रदेश कला परिषद द्वारा मूर्तिकला सम्मान तथा 2004 में ललित कला अकादमी, दिल्ली से चित्रकला सम्मान प्राप्त हुआ। उनकी कृतियाँ देश-विदेश के निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं।

मनुष्य की सृजनात्मकता उसके संप्रेषण का सबसे जरूरी माध्यम है। हमारे यहाँ कला दरबारी प्रशंसा और ईश्वरीय प्रशंसा या उसे आप " भक्ति "भी कह सकते है , से उत्पन्न हुई।

अमूमन यही हाल वैश्विक स्तर पर भी देखने मिलता है। लेकिन पश्चिम ने इसे चर्च से निकाल कर स्वतंत्र चेतना और अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हमारे यहाँ हमने अंग्रेजों के आने के बाद स्थापित " आर्ट स्कूलों " में शिक्षित प्रशिक्षित होकर सोचना प्रारंभ किया । जब दूसरी दुनिया उत्तर आधुनिक हो रही थी तब हम आधुनिक दुनिया में कदम रख रहे थे। इसी समय कला का बजार " गैलरियों " के रूप में उभरना शुरू हुआ था। धीरे-धीरे सभी कला महाविद्यालयों से भारतीय कला पद्धतियाँ नष्ट होने लग गई थी । आधुनिक कला के नाम पर तमाम प्रयोग शुरू हो चुके थे।

हमारे यहाँ किसी समीक्षक ने कोई वैचारिक लेखन नहीं किया । जो स्वतंत्र रूप से कला पर लिख रहे थे वे अखबारों के स्तम्भकार या पत्रकार थे जो बाद में स्थापित कला समीक्षक हो गए और प्राइवेट कला दीर्घाओं के लिए लिखने लगे उनके लिए कलाकारों को खोजने लगे । उन्हें पढ़ा जा सकता है।

इसी बीच कला बाजार की दुनिया में एक शब्द उछला " समकालीन कला " और आज हर वह व्यक्ति जो चित्र बनाता है समकालीन चित्रकार हो गया है। इसलिए सोचा कि थोड़ा इस विषय पर बात को जाए।

समकालीन कला (contemporary Art) शब्द का सामान्य अर्थ है—समकालीन कला, यानी वह कला जो हमारे वर्तमान समय में रची जा रही है, या कम-से-कम हमारे समय की चेतना से संवाद करती है। लेकिन समकालीन कला को केवल “आज की कला” कहना इसके अर्थ को सीमित कर देना होगा। वस्तुतः यह एक ऐसी कला-प्रवृत्ति है जो समय के साथ बदलते सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी और मानवीय संदर्भों को आत्मसात करते हुए निरंतर स्वयं को पुनर्परिभाषित करती रहती है। यह कला न केवल दृश्य रूप में उपस्थित होती है, बल्कि विचार, प्रश्न और अनुभव के स्तर पर मनुष्य के जीवन से गहरा रिश्ता बनाती है।

समकालीन कला का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है—उसका मानवता से गहरा संबंध। यह कला मनुष्य को केवल दर्शक नहीं मानती, बल्कि उसे सहभागी बनाती है। यहाँ कला और दर्शक के बीच एकतरफा संबंध नहीं होता, बल्कि एक जीवंत संवाद स्थापित होता है। कलाकार अपनी कृति के माध्यम से प्रश्न उठाता है और दर्शक उन प्रश्नों से टकराकर अपने भीतर उत्तर खोजने लगता है। इस प्रक्रिया में कला एक वस्तु नहीं, बल्कि एक अनुभव बन जाती है।

पेंटिंग करते हुए मक़बूल फ़िदा हुसैन

यदि हम इतिहास पर नज़र डालें तो परंपरागत कला—चाहे वह शास्त्रीय चित्रकला हो, मूर्तिकला हो या धार्मिक कला—अक्सर सौंदर्य, देवत्व, सत्ता या आदर्शों को प्रस्तुत करने पर केंद्रित रही है। वहाँ मनुष्य एक आदर्श रूप में दिखाई देता है—देवताओं के समान, नायकों की तरह या किसी सामाजिक मानक के अनुरूप। लेकिन कंटेम्परेरी आर्ट में मनुष्य अपने यथार्थ रूप में आता है—अपूर्ण, संघर्षरत, प्रश्नों से भरा हुआ, और कभी-कभी टूटा हुआ भी। यही इसकी मानवीय गहराई है।

समकालीन कला मनुष्य के आंतरिक संसार को उजागर करती है—उसकी चिंताओं में भय , अकेलापन, स्मृतियाँ, इच्छाएँ और अस्मिता की तलाश शामिल है । उदाहरण के लिए, आज का कलाकार केवल सुंदर चेहरा नहीं बनाता, बल्कि चेहरे के पीछे छिपी मानसिक स्थिति को दर्शाने की कोशिश करता है। वह शरीर को भी केवल सौंदर्य के प्रतीक के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे सामाजिक दबाव, लैंगिक राजनीति, श्रम और सत्ता के संदर्भ में पढ़ता है। इस तरह शरीर एक राजनीतिक और मानवीय दस्तावेज बन जाता है।

विवान सुन्दरम का इंस्टॉलेशन

समकालीन कला का मानवीय संबंध विशेष रूप से तब स्पष्ट होता है जब वह सामाजिक मुद्दों से जुड़ती है। आज की कला में गरीबी, विस्थापन, युद्ध, पर्यावरण संकट, जाति, लिंग, नस्ल, प्रवास, तकनीक और निगरानी जैसे तमाम विषय प्रमुखता से सामने आते हैं । ये सभी विषय सीधे मनुष्य के जीवन से जुड़े हुए हैं। कलाकार इन मुद्दों को केवल चित्रित नहीं करता, बल्कि उन पर टिप्पणी करता है, सवाल उठाता है और दर्शक को सोचने के लिए बाध्य करता है। इस प्रकार कला एक सामाजिक हस्तक्षेप बन जाती है।

इसका एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है— वह है कला का लोकतंत्रीकरण। समकालीन कला दीर्घाओं और संग्रहालयों की दीवारों पर चित्रों के रूप तक सीमित नहीं रह गई है। यह परफॉर्मेंस के रूप में है, वीडियो और इंस्टॉलेशन के रूप में भी हमारे सामने है। जब कला सार्वजनिक स्थानों पर आती है, तो वह सीधे आम मनुष्य से संवाद करती है।

हर व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर कला को समझ सकता है। यही इसे मानवीय बनाता है—यह विशिष्ट वर्ग की नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभव की कला है।

समकालीन कला का एक गहरा मानवीय रिश्ता स्मृति और इतिहास से भी है। आज का कलाकार केवल वर्तमान में नहीं जीता, बल्कि अतीत के घावों, उपेक्षित कथाओं और दबाई गई आवाज़ों को सामने लाता है। वह इतिहास को केवल विजेताओं की कहानी के रूप में नहीं देखता, बल्कि हाशिए पर पड़े लोगों की दृष्टि से पुनर्लेखन करता है। इस प्रक्रिया में कला एक तरह का "स्मृति-स्थल" बन जाती है, जहाँ व्यक्तिगत और सामूहिक यादें एक-दूसरे से जुड़ती हैं।

तकनीक के युग में समकालीन कला का मानवीय संबंध और भी जटिल हो गया है। आज हम डिजिटल छवियों, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, वर्चुअल रियलिटी और सोशल मीडिया के दौर में जी रहे हैं। कलाकार इन माध्यमों का उपयोग करते हुए यह प्रश्न उठाता है कि तकनीक ने मनुष्य को कितना जोड़ा है और कितना अलग किया है। क्या हम अधिक संवाद में हैं या अधिक अकेले? क्या हमारी पहचान वास्तविक है या डिजिटल रूप से निर्मित? इस तरह समकालीन कला मनुष्य और तकनीक के संबंध पर एक दार्शनिक विमर्श प्रस्तुत करती है।

समकालीन कला का एक मानवीय पक्ष यह भी है कि वह असुविधा पैदा करती है। यह हमेशा सुंदर या सुखद नहीं होती। कई बार यह चौंकाती है, परेशान करती है । गुस्सा दिलाती है। लेकिन यही असुविधा हमें सोचने पर मजबूर करती है। जब कला हमें हमारी आदतों, पूर्वाग्रहों और सुविधाजनक सोच से बाहर निकालती है, तब वह हमें अधिक जागरूक मनुष्य बनाती है। इस अर्थ में समकालीन कला एक नैतिक और बौद्धिक चुनौती है।

समकालीन कला में कलाकार की भूमिका भी बदल गई है। वह अब केवल "सृजनकर्ता" नहीं, बल्कि एक संवादकर्ता है। वह समाज से सामग्री लेता है और समाज को ही वापस प्रश्नों के रूप में सौंप देता है। कई बार कलाकार स्वयं अपनी देह, अपनी कहानी और अपने अनुभव को कला का माध्यम बना लेता है। परफॉर्मेंस आर्ट में तो कलाकार का शरीर ही कैनवास बन जाता है। यहाँ कला और जीवन के बीच की सीमा लगभग मिट जाती है। यही इसका सबसे मानवीय रूप है—जहाँ कला जीवन से अलग नहीं, बल्कि जीवन का ही विस्तार बन जाती है।

अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन कला का मूल स्वभाव संबंधात्मक है। यह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है—अनुभवों के स्तर पर, संवेदनाओं के स्तर पर और प्रश्नों के स्तर पर। यह हमें यह एहसास कराती है कि हमारी व्यक्तिगत पीड़ा भी कहीं न कहीं सामूहिक है, और हमारी व्यक्तिगत खुशी भी सामाजिक संदर्भ से जुड़ी है। समकालीन कला हमें देखने की नई दृष्टि देती है—न केवल दुनिया को देखने की, बल्कि स्वयं को देखने की भी।

इस तरह समकालीन कला केवल कला का एक रूप नहीं, बल्कि एक मानवीय अभ्यास है—संवेदना का अभ्यास, संवाद का अभ्यास और आत्मचिंतन का अभ्यास। यह हमें याद दिलाती है कि हम केवल उपभोक्ता या दर्शक नहीं हैं, बल्कि सोचने, महसूस करने और बदलने वाले प्राणी हैं। और शायद यही कंटेम्परेरी आर्ट का सबसे बड़ा मानवीय योगदान है—वह हमें अधिक मनुष्य बनने की संभावना देती है ।सामाजिक हस्तक्षेप के रूप में कला का मानवीय रिश्ता सबसे स्पष्ट तब होता है जब वह सामाजिक मुद्दों से जुड़ती है—जैसे गरीबी, विस्थापन, युद्ध, पर्यावरण संकट, जाति, लिंग और तकनीक। कलाकार इन विषयों को केवल दिखाता नहीं, बल्कि उन पर टिप्पणी करता है।

यह कला हमें असहज करती है, परेशान करती है, कई बार गुस्सा दिलाती है। लेकिन यही असुविधा हमें सोचने पर मजबूर करती है। जैसा कि दार्शनिक Theodor Adorno कहते हैं:

“Art is the negative knowledge of the actual world.”

(कला वास्तविक दुनिया का नकारात्मक ज्ञान है—यानी वह हमें बताती है कि दुनिया में क्या गलत है।)

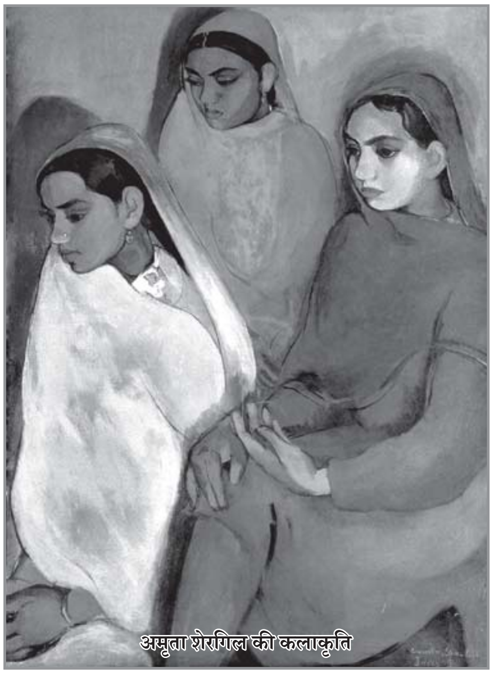
अमृता शेरगिल की कलाकृति

तकनीक, स्मृति और भविष्यडिजिटल युग में समकालीन कला मनुष्य और तकनीक के रिश्ते पर भी सवाल उठाती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, वर्चुअल रियलिटी और सोशल मीडिया के माध्यम से कलाकार यह पूछते हैं—क्या हम पहले से ज़्यादा जुड़े हैं या ज़्यादा अकेले? क्या हमारी पहचान वास्तविक है या डिजिटल रूप से निर्मित?

यह कला स्मृति और इतिहास को भी पुनर्परिभाषित करती है। यह विजेताओं की नहीं, बल्कि हाशिए पर पड़े लोगों की कहानियाँ सामने लाती है—दलित, स्त्रियाँ, शरणार्थी, आदिवासी, प्रवासी। इस तरह कला एक सांस्कृतिक स्मृति-स्थल बन जाती है।

अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन कला केवल कला का रूप नहीं, बल्कि एक मानवीय अभ्यास है—संवेदना का अभ्यास, संवाद का अभ्यास और आत्मचिंतन का अभ्यास। यह हमें दर्शक से नागरिक बनाती है, उपभोक्ता से सहभागी बनाती है।

यह हमें यह एहसास कराती है कि हमारी व्यक्तिगत पीड़ा भी कहीं न कहीं सामूहिक है, और हमारी व्यक्तिगत खुशी भी सामाजिक संदर्भ से जुड़ी है। यह हमें देखने की नई दृष्टि देती है—दुनिया को देखने की भी और स्वयं को देखने की भी।

इसीलिए सबसे बड़ा मानवीय योगदान यही है कि वह हमें और अधिक मनुष्य बनने की संभावना देती है—संवेदनशील, प्रश्नाकुल जो और अधिक मनुष्य और हमारी व्यक्तिगत खुशी भी सामाजिक संदर्भ से जुड़ी है। यह हमें देखने की नई दृष्टि देती है—दुनिया को देखने की भी और स्वयं को देखने की भी।इसीलिए कंटेम्परेरी आर्ट का सबसे बड़ा मानवीय योगदान यही है कि वह हमें और अधिक मनुष्य बनने की संवेदनशील, प्रश्नाकुल और जागरूक मनुष्य बनने को संभावना से भर देती है।

यहाँ हम समकालीन कला पर बात करते हुए भारतीय आधुनिक कला के कुछ प्रतिष्ठित भारतीय मानकों पर चर्चा करना उचित समझते हैं । क्योंकि आधुनिक कला एवं समकालीन कला एक दूसरे के साथ चलते हैं।औपनिवेशिक अनुभव और भारतीय आधुनिकता की वैचारिक नींव को देखें तो भारतीय आधुनिक कला का आरम्भ औपनिवेशिक शिक्षा, अकादमिक यथार्थवाद और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया के बीच हुआ। उन्नीसवीं सदी के अंत में राजा रवि वर्मा द्वारा अपनाई गई यूरोपीय यथार्थवादी तकनीक ने भारतीय चित्रकला को लोकप्रियता तो दी, लेकिन उसमें औपनिवेशिक दृष्टि भी अंतर्निहित थी।इसके प्रतिरोध में बंगाल स्कूल (अवनीन्द्रनाथ टैगोर, नंदलाल बोस) ने आध्यात्मिक और राष्ट्रवादी कला की परिकल्पना रखी। यह आंदोलन भारतीय पहचान की खोज था, परंतु इसकी सीमा यह रही कि यह वर्तमान सामाजिक यथार्थ से दूरी बनाए रहा।

इसलिए यहाँ आधुनिक कला की एक नई माँग उभरती है—

ऐसी कला जो अतीत की स्मृति रखे, लेकिन वर्तमान की पीड़ा को भी देख सके।यहाँ सबसे पहले अमृता शेर-गिल का जिक्र करना लाजमी है। जिन्होंने भारत में आधुनिक कला की स्वतंत्र चितेरी के रूप में काम किया। उन्होंने स्त्री चेतना और उपनिवेशोत्तर दृष्टि को स्थापित किया। वे भारतीय आधुनिक कला की केंद्रीय आकृति हैं। उनकी पेंटिंग्स में स्त्री न तो देवी है, न

ही वस्तु—वह संवेदनशील, अकेली और सामाजिक संरचना से बंधी हुई मनुष्य है।

Three Girls में स्त्रियों की चुप्पी औपनिवेशिक और पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना है।

Bride's Toilet स्त्री जीवन की अंतरंगता को सार्वजनिक दृष्टि से मुक्त करती है।

अमृता लिखती हैं—

“I paint because I have something to say, not because I want to decorate.”

अब हम यहाँ बात करते हैं बंगाल स्कूल की अवधारणा के बरगस्त प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप की स्थापना आधुनिक कला को एक निर्णायक मोड़ देता है।1947 में Progressive Artists Group का गठन होता है। इस ग्रुप ने भारतीय कला को निर्णायक रूप से आधुनिक दिशा दी। इसमें कई मत है। इस समूह के कलाकारों ने राष्ट्रवादी रोमांटिसिज़्म को छोड़कर व्यक्तिगत, राजनीतिक और औपचारिक स्वतंत्रता को महत्व दिया। जिसमें एफ. एन. सूज़ा का नाम सबसे पहले आता है।

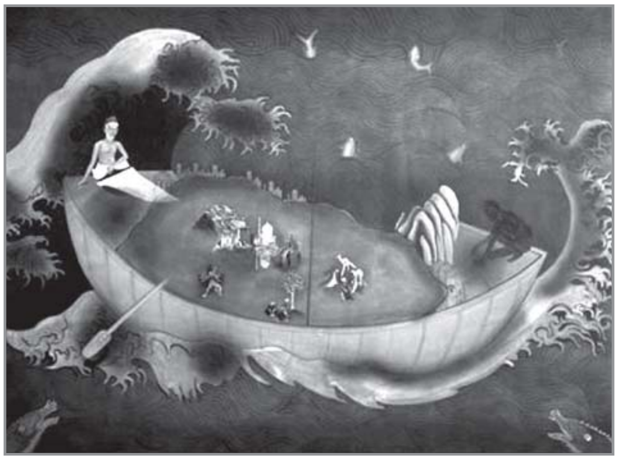

एफ़. एन. सूज़ा की कृतियाँ (Birth, Crucifixion, Head) चर्च, सत्ता और यौन नैतिकता की तीखी आलोचना करती दिखाई देती हैं। विकृत आकृतियाँ यहाँ सौंदर्य नहीं, बल्कि नैतिक विद्रोह हैं।

सूज़ा कहते हैं—“My art is a form of protest against hypocrisy.”

इसके बाद एस. एच. रज़ा ने अमूर्तता को भारतीय दर्शन से जोड़ा। Bindu Series में बिंदु सृजन, शून्य और ब्रह्मांड का प्रतीक है। यह पश्चिमी अमूर्तता का भारतीय पुनर्पाठ है।

अकबर पदमसी की Metascapesऔर Mirror Images आधुनिक व्यक्ति की आंतरिक टूटन को रूप देती हैं। उनका काम रूप और विचार के बीच तनाव पैदा करता है।

एम . एफ हुसैन के बगैर भारतीय समकालीन आधुनिक कला अधूरी मानी जायेगी क्योंकि उन्होंने लोक, इतिहास और आधुनिक मिथक को नयी दिशा दी उन्होंने भारतीय मिथक, लोक कला और आधुनिक गति को एक साथ जोड़ा। उनके घोड़े गति, शक्ति और समय के प्रतीक हैं। उनकी महाभारत चित्र श्रृंखला महाभारत की कथा नहीं सुनाती, बल्कि स्मृति को विखंडित करती है। उनकीगांधी श्रृंखला में गांधी एक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, बल्कि नैतिक चेतना बन जाते हैं।

1970 के बाद राजनीति, इतिहास और स्मृति का हस्तक्षेप अलग ढंग से सामने आता है जिसमें भारतीय कला में मार्क्सवादी, उत्तर-औपनिवेशिक और स्त्रीवादी विमर्श खुलकर आते हैं। यहाँ विवान सुंदरम का नाम महत्वपूर्ण रूप से दर्ज होता है वे अपने इंस्टॉलेशन में (Memorial, Trash) शहरी विघटन, उपभोक्तावाद और इतिहास की परतों को उजागर करते हैं।

गुलाम मोहम्मद शेख

इतिहास, सूफ़ी परंपरा और समकालीन हिंसा को एक दृश्य कथा में पिरोते हैं। Returning Home After a Long Absence में स्मृति और वर्तमान का संगम दिखता है।

नलिनी मलानी इस दौर की महत्वूर्ण चित्रकारा हैं उनके वीडियो-इंस्टॉलेशन स्त्री, युद्ध और विस्थापन की वैश्विक पीड़ा को सामने लाती हैं।वे कहती हैं—“Silence is political; art must break it.”

1990 के बाद समकालीन आधुनिक भारतीय कला वैश्वीकरण, बाज़ार और पहचान बिएनाले संस्कृति से जुड़ती है। यहाँ सुबोध गुप्ता के स्टील बर्तन, भारती खेर की बिंदियाँ, जितिश कल्लट की शहरी छवियाँ—सब रोज़मर्रा की वस्तुओं को वैचारिक प्रतीक बनाते हैं।यह कला बाज़ार से संवाद करती है, लेकिन उसके भीतर आलोचनात्मक चेतना भी मौजूद रहती है।

यहाँ यह जानना भीआवश्यक है कि इन सब उदाहरणों में नामों देश के तमाम कला लेखकों समीक्षकों और चित्रकारों के बीच मतभेद भी हैं। कुछ लोग अपनी दृष्टि एवं तर्क से प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप को खारिज करते है उसे एक षडयंत्र का हिस्सा मानते है। वे परफार्मेंस आर्ट और इंस्टोलेशन को भी नकारते हैं। इधर यह भी सच है कि यह समय सबसे खराब कला का दौर है। कल्पना, विचार और मानवीय पक्ष कही दिखाई नहीं देता। हर जगह एक रिपीटेशन है । कला के नाम पर एक बाजार अलग से बन गया है जो सिर्फ सजावटी चित्रों को चित्र कला मनवाने तुला है। हो सकता है यह भी कोई षडयंत्र हो।वैसे यह समय बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु इस समय की कला और कलाकार कहाँ है नहीं पता।

सम्पर्क: 7 . नम्बर ड्यूप्लेक्स
गणेशपार्क लेन , कचनार सिटी , विजय नगर
जबलपुर (मप्र) 482002
फोनः 738999 5840

■

भारतीय कला ग्रंथों के सारस्वत साधक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

त्रिवेणी प्रसाद तिवारी

त्रिवेणी प्रसाद तिवारी मूलत: एक संवेदनशील मूर्तिशिल्पी हैं, जिनका माध्यम सिरेमिक है। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से पॉटरी सिरेमिक एण्ड डिजाइन' में परास्नातक किया हैं। दिल्ली, मुम्बई जैसे महत्वपूर्ण विभिन्न स्थानों पर कई कला-प्रदर्शनियों में उनकी कलाकृतियों ने सभी का ध्यान आकृष्ट किया है। ललित कला अकादमी में उनकी एकल प्रदर्शनी "बीजक" सिरेमिक विधा के गाम्भीर्य वैचारिकी के लिए जानी जाती है। प्रथम भारतीय अंतरराष्ट्रीय सिरेमिक बिनाले जयपुर में प्रदर्शित उनकी मूर्तिशिल्प "उजड़े शहर में बीज" प्रशंसित रही। कला लेखन के क्षेत्र में सद्य रची उनकी पुस्तक षडंग पुस्तक इन दिनों चर्चित है।

भारत ज्ञान की हर विधा का गहन चिंतक रहा है। ज्ञान परंपरा की विभिन्न प्रणालियों का चिंतन और उसकी साधना हमारे देश में निरंतर होता रहा है। वेद, उपनिषद् , पुराण, दर्शन, आयुर्वेद और शास्त्रों के निक्षेप में पलता सहज भारतीय लोक, अपने आप में महान परम्पराओं को धारण किये हुए है। आदिकाल से आज तक की अनवरत कालप्रवाह में जाने कितनी भाषाएं, पद्धतियां एवं समाज नियम बने और विलीन होते चले गए परन्तु भारत की परम्परा प्रवाह में ज्ञान की राशि कभी कम ना हुई। हां समाज से उनके संवाद का माध्यम जरुर बदलता रहा। इस प्रवाह क्रम में, देश-काल - परिस्थितियों में ज्ञान का संवाद भले अवरुद्ध हो गया हो लेकिन उसका चिंतन, उसका प्रवाह कभी रुका नहीं।

भारत अपने संस्कृत वाङ्मय के कालखण्ड से आगे मुस्लिम आक्रमणों एवं शासन के दौरान अपनी ज्ञान साधना को बनाए रखा। बाद में ब्रिटिश कंपनियों के आधिपत्य एवं पूर्ण शासन के बाद भारत विचलित दिखाई पड़ता है क्योंकि अंग्रेजों ने शातिर तरीके से भारतीय भाषा - संस्कृति के केन्द्र गुरुकुलों को कानूनी तरीके से नष्ट करने की कोशिश करती है। इस प्रयास की लम्बी कालावधि में सन् उन्नीस सौ सैंतालीस की आजादी के उपरान्त औपनिवेशिक मानसिकता के कारण आधुनिक भारतीय पीढी अपने ज्ञान प्रवाह से अनभिज्ञ हो गई। विशेषतया विशाल हिंदी भाषी क्षेत्रों में इस पर पठन- पाठन लगभग शून्य हो गया। ऐसे समय में बहुत सारे प्रभृति विद्वानों की वृहद् श्रृंखला है जिन्होंने हिन्दी में भारतीय ज्ञान और उसकी पहचान के लिए कार्य किया। ऐसे सभी महानुभावों के लिए हम ऋणी हैं परन्तु एक कमी फिर भी अखरती थी कि मूल पुस्तक के साथ सरल भाषानुवाद हमारे पास नहीं था। ऐसे ग्रंथों की सारस्वत साधना करने वालों में आधुनिक रुप से श्री श्रीकृष्ण जुगनू जी का बहुत बड़ा योगदान है।

भोजकृत समरांगणसूत्रधार, मार्कण्डेय रचित चित्रसूत्रम्, चित्रलक्षणम् , मयमतम् अथवा विश्वकर्माप्रकाश इत्यादि कई संस्कृत ग्रंथों का पद - पाठ - अन्वय सहित हिन्दी में सेवा कार्य करना उनकी अनथक साधना के पर्याय हैं। उनके इस तपश्चर्या से संस्कृत वाङ्मय में ग्लेशियर रुप में जमा अगाध ज्ञानराशि से आधुनिक हिन्दी भाषा का अपार जन समूह आप्लावित हुआ है। पुराणों की महाकोषीय अवधारणा जिसमें गजशास्त्र, अश्वशास्त्र , प्रतिमा विज्ञान, से लेकर चित्र - मूर्ति, स्थापत्यकला एवं वास्तुकला की कठिन शब्दावली का पद सहित अनुवाद और अन्य पूर्ववर्ती एवं परवर्ती संबन्धित ग्रंथों में पदविशेष शब्दों की उपयोगिता की परम्परा को उद्घाटित करना जुगनू जी की महती साधना का फल है। जुगनू जी जैसे निष्काम साधक जिन्होंने विपुल मात्रा में संस्कृत ग्रंथों में निहित ज्ञान परम्परा को पुनः संपादित कर मौलिक रुप को बनाए रखते हुए आज की बहुसंख्य भाषी परिवार को अर्थ सहित सरल ग्राही बनाकर प्रस्तुत करना भारत की सच्ची आधुनिक सेवा है।

प्राचीन ग्रंथों का संपादन - अनुवाद आज के अर्थ प्रधान युग में कोई लाभ का काम नहीं है। सरकारों के पास सारे संसाधन एवं तंत्र होने के बावजूद आजादी के इतने वर्षों के पश्चात भी वो काम नहीं कर पायीं वहीं जुगनू जी का

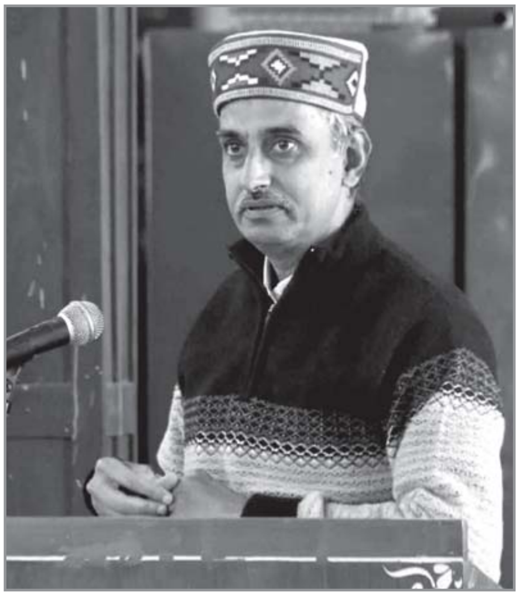

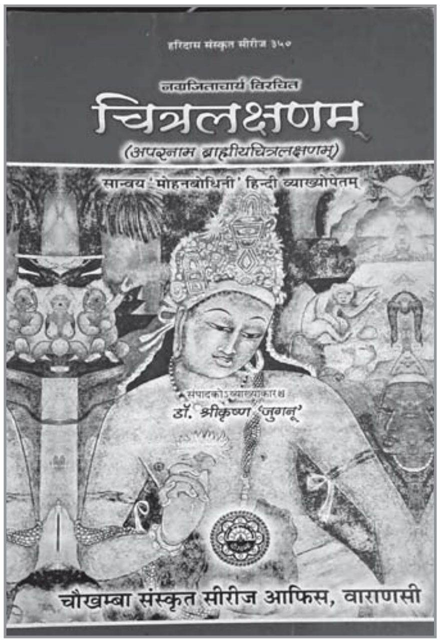

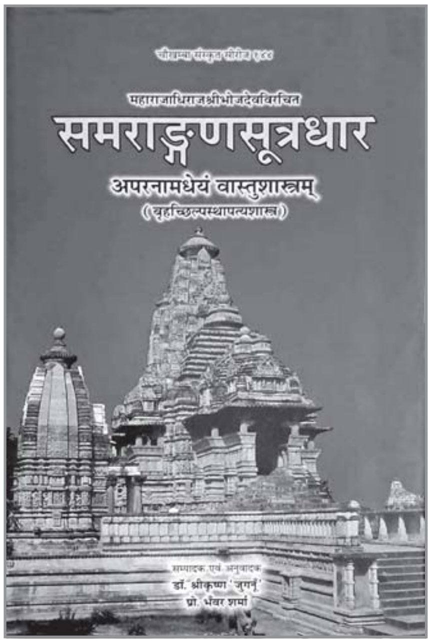

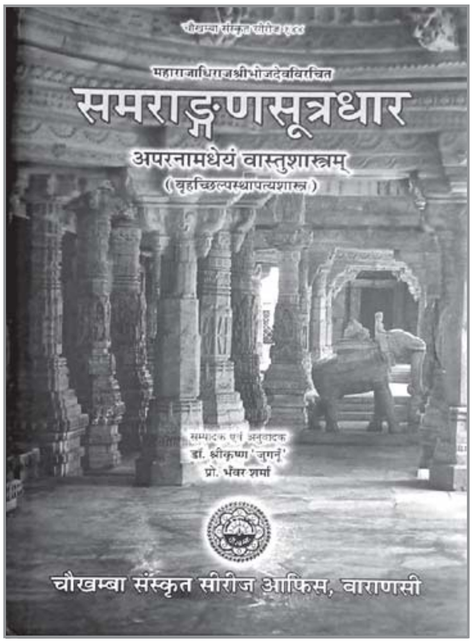

निस्पृह, एकनिष्ठ दीप की भांति जलकर ज्ञान ग्रंथों का इतना बड़ा संसार खड़ा कर देना केवल मां भगवती का आशीर्वाद ही हो सकता है। जैसे भूतकाल के कुछ काल खण्ड में लोग महाकवि कालिदास को भूल गए थे। आगे चलकर आचार्य मम्मट की टीका ने कालिदास की कवि प्रतिभा को नई संजीवनी प्रदान किया उसी तरह कला, वास्तु, मंदिर निर्माण की सूक्ष्म एवं प्रकृति आधारित वैज्ञानिक परम्परा को पुनः संपादित कर उन्होंने आधुनिक विद्वत समाज को नया आलोक प्रदान करने का काम किया है। समरांगणसूत्रधार जैसै वृहद् ग्रंथ का संपादन एवं अनुवाद ने विद्यार्थियों - शोधार्थियों के लिए भारतीयता की अवधारणा पर कार्य करने की नई खिड़की खोली है जिससे तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा को समकालीन तौर पर भी समझ सकते हैं।

अनुवाद का कार्य बहुत ही कठिन और लम्बी अवधि की अनथक साधना होती है। साहित्य की चर्चित विधाएं - कविता, कहानी, उपन्यास आदि में रोचकता, नाटकीयता एवं प्रसिद्धि का कहीं न कहीं मंशा होती है और मौलिकता की ऐंठन भी। ऐसे में संस्कृत ग्रंथों का अन्वय सहित पद -पाठ और फुटनोट की बारीकियों को देते हुए उसकी प्रामाणिकता को अन्य ग्रंथों से मिलाते हुए संपादित करना अत्यंत धैर्य का कार्य है। यह कार्य पन्ना धाय के त्याग की तरह है जैसे किसी दूसरे के शिशु को अपने से बढ़कर पालन करना। उत्कट समर्पण और निस्पृह अवदान इसकी पहली शर्त है। श्रीकृष्ण जुगनू जी के सृजन संसार में फैले अनेक ग्रंथ इसका प्रमाण है। वे भारतीय ज्ञान परंपरा के अद्भुत व्याख्याकार हैं। आधुनिक सोशल मीडिया के संचारीय दौर में भी वे सक्रिय ही नहीं हैं बल्कि सार्थक एवं तीव्र हस्तक्षेप भी रखते हैं। उनके फेसबुक पोस्ट भारतीय शास्त्र परंपरा एवं उसकी लोकधारा में पूरकता पर नित नवीन जानकारी आज की पीढ़ी को समृद्ध करती है। आधुनिक संचार के तेज माहौल में कौन सी बात कितनी सही है इसका पता लगाना कठिन हो जाता है। अपनी परंपरा से कटे होने के कारण भ्रम की स्थिति बहुत जल्दी घर कर जाती है। ऐसे संभ्रम परिवेश में श्रीकृष्ण जुगनू जी का लेखन एक प्रकाश स्तम्भ की तरह है। भारतीय आस्था के केन्द्र मंदिरों पर उसके स्थापत्य के महत्व पर उनका सरल संवाद पाश्चात्य शैक्षिक दंभ के वातावरण में भूले भारतीयों को झकझोरती है और हमारी अक्षुण्ण परंपरा पर गर्व का भाव जगाती है। भारतीय संस्कृत ग्रंथों के ऐसे सारस्वत साधकों को सरकार द्वारा भी उच्च सम्मान एवं मंच प्रदान किया जाना चाहिए। हमारे सरकारी तंत्रों की मंदमति ही है कि इस तरह के सच्चे साधकों को अनदेखा किया जाता है जबकि अन्य देश अपने रत्नों को तुरंत पहचानते हैं और उन्हें ऐसे पदों पर सुशोभित करते हैं जहां से अधिकाधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

अपने सरस्वती पुत्रों को मां भारती अथक साधना का बल प्रदान करें और वे इसी प्रकार अज्ञात दुर्लभ ग्रंथों को अपनी मेधा से नवीन एवं समकालिक अर्थों में प्रकाशित कर भारत को संवारते रहें, ऐसी मेरी कामना है... अस्तु !!!

सम्पर्क: 502 टॉवर सी 4 इकोविलेज 1, सुपरटेक
ग्रेटर नोएडा वेस्ट गौतम बुद्ध नगर उ.प्र. -201318
मो. 8860327448

■

कलासाधक गोपाल आचार्य: एक चलता-फिरता विश्वविद्यालय

सतीश व्यास 'आस'

सतीश व्यास 'आस' का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वर्तमान में राजस्थान शिक्षा विभाग में वे उपाचार्य पद पर कार्यरत हैं। साहित्य, शिक्षा और रंगमंच की दुनिया में समान रूप से सक्रिय हैं। वे भीलवाड़ा की प्रतिष्ठित संस्था रसधारा नाट्य संस्थान से लंबे समय से जुड़े हुए हैं तथा प्रसिद्ध राजस्थानी नाटक 'भोपा भैरुनाथ' में अपने प्रभावशाली अभिनय से दर्शकों के बीच विशेष पहचान बना चुके हैं। अभिनय के साथ-साथ साहित्य साधना में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है। पिछले दो दशकों से वे सतत लेखन कार्य में संलग्न हैं। ग्रामीण संस्कृति, लोकजीवन और स्मृतियों की धुंध में खोती जा रही परंपराओं को सतीश व्यास 'आस' अपनी संवेदनशील गद्य शैली में जीवंत कर देते हैं। समीक्षा विधा में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण है। वे अब तक दो सौ से अधिक पुस्तकों की समीक्षाएँ लिख चुके हैं, जिनमें साहित्यिक दृष्टि, गंभीर अध्ययन और निष्पक्ष मूल्यांकन की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। शिक्षा, रंगमंच और साहित्य-तीनों क्षेत्रों में सक्रिय सतीश व्यास 'आस' अपनी रचनात्मक ऊर्जा से समाज और संस्कृति को समृद्ध कर रहे हैं।

हर इंसान के भीतर कई-कई कहानियाँ छिपी हुई होती हैं। इंसान जीवन में कई किरदारों को एक साथ जीता है।कहानियाँ होती भले व्यक्तिगत हो मगर एक संवेदनशील रचनाकर्मी कहानी को सामाजिक ताने-बाने में गूँथ कर उपयुक्त माध्यम से सार्वकालिक और सार्वभौम बना देता है। गोपाल आचार्य इस श्रेणी के रचनाकर्मियों की श्रेणी में अपना उच्च स्थान रखते हैं।

यूँ तो गोपाल आचार्य की मूल विधा रंगकर्म है मगर जब इनको बहुत निकटता से जानते हैं ये कला पक्ष के किसी भी पहलू को हल्के में नहीं लेते। जहाँ ये ठहाका मारकर हँसते हुए हर वय के व्यक्ति के साथ दोस्त बन जाते हैं वहीं जब निर्देशन के दौरान इनका व्यवहार नारियल की भाँति बाहर से कठोर मगर भीतर से मृदु और मिठासभरा हो जाता है। गोपाल आचार्य नाट्यविधा के साथ-साथ कविता, कहानी, मूर्तिकला, क्लेआर्ट, चित्रकला में भी उतनी ही महारत रखते हैं। गोपाल आचार्य ठेठ गाँव से अपनी रंगमंचीय यात्रा का पहला कदम रखते हैं और नाटक विधा में अपनी यात्रा को ऊंचाईयां देने के लिए आज तक सतत रूप से अपनी यात्रा को जारी रखे हुए हैं। उम्र के सत्तरवें पड़ाव पर भी आज नाट्य की साधना में उसी ऊर्जा और जोश से लगे हुए हैं जो उत्साह उनके युवावस्था में अभिनय को लेकर होता था।

गोपाल जी आचार्य पर उनके आदर्श शिक्षक पिता स्व०श्री शोभा लाल जी आचार्य का बड़ा प्रभाव है। साथ ही नारी विमर्श और फेमिनिज्म की देन उनकी माता स्व० रुकमणी देवी का ममत्वभरा आँचल है जिसका पल्लू थामकर उनका मासूम बचपन संस्कारों से सुवासित हुआ है। शायद उनके जीवन में बेबाकी, स्वाभिमान, सत्यनिष्ठता और कर्तव्यपरायणता जैसे जीवन मूल्यों का बीजारोपण प्रारम्भ से ही परिवार की छत्रछाया में होने लगा था। ग्रामीण संस्कृति की आत्मा को बहुत करीब से अनुभव करने के कारण इनकी रचनाओं और कृतियों में इस के प्रभाव को देखा जा सकता है। आज भी अपना अधिकांश समय प्रकृति की गोद में बसे इनके मूल गाँव धांगड़ास में अपने आश्रम में बिताते हैं। वहाँ ये पशु-पक्षियों को एकटक देखते-देखते अनायास उनसे मौन भाषा में संवाद करते रहते हैं। आश्रम का वातावरण ही गोपाल आचार्य की अभिव्यक्ति है। यहाँ दीवारों पर टंगी पेन्टिंग, जगह-जगह कुशल हाथों से उकेरी मूर्तियां, पशु पक्षियों के लिए तैयार किए गए कलात्मक विश्राम स्थल और आध्यात्मिक ऊर्जा के लिए निर्मित पूजागृह गोपाल आचार्य के व्यक्तित्व के साक्षात प्रमाण है।

राजकीय सेवा में खनन विभाग से सेवानिवृत गोपाल आचार्य की अतुकान्त और गद्य कविताओं में गहरा दर्शन छुपा हुआ है। इनकी कविताओं का एबस्ट्रेक्ट भाव शांत नदी के भीतर बहती धाराओं की तरह है। ये कविताएं अमूर्त पेन्टिंग की तरह हैं जो दर्शकों को आत्मचिंतन को मजबूर करती हैं वहीं वे अपनी पेन्टिंग्स के जरिए एक लयात्मक काव्य की अभिव्यक्ति भी देते हैं। इनकी पेन्टिंग आधा सच व्यक्त करती हैं और आधा दर्शकों पर छोड़ देती हैं। इनकी पेन्टिंग में कॉन्ट्रास्ट और रेखांकन

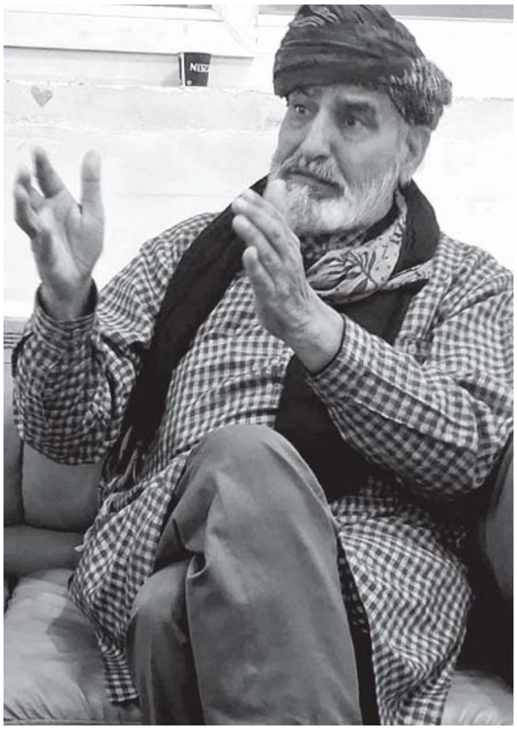

रंगों की इबारत लिखते हैं।

गोपाल आचार्य एक उच्च दर्जे के चिन्तक, विचारक, मनोवैज्ञानिक और प्रखर वक्ता है जो मानवमात्र के प्रमुख लक्ष्य आनंद की प्रबलता से पैरवी करते हैं। इनके अनुभव मौलिक, स्वानुभूत और यथार्थ है। उनकी रचनाएं समाज के परिदृश्य को अमूर्त तरीके से दर्शकों और पाठकों के बीच रखती हैं। इनकी साहित्यिक रचनाओं में बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग इनकी शैली को विशिष्ट बनाते हैं। मानवीकरण और प्रयोग किए उपमान इनकी रचनाओं का सबल पक्ष है।

जहाँ तक नाट्य विधा की बात है तो गोपाल आचार्य को नाटक और रंगमंच का पर्याय मान सकते हैं। राजकीय सेवा में रहते हुए बिना किसी अभिनय की व्यावसायिक डिग्री के भी गोपाल आचार्य ने नाट्यविधा को शिखर तक पहुंचाया है। यह कला उनकी जन्मजात है। अपने भीतर की पीड़ाओं को सामाजिक परिदृश्य को संवेदनशील तरीके से ललित कला से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। रंगकर्म इनकी सबसे प्रमुख विधा है। एक समय था जब गोपाल आचार्य भीलवाड़ा के दर्शकों के लिए नाटक में रूचि जागृत करने के लिए जमीन पर बैठकर खुले में नाटक का प्रदर्शन किया करते थे। इनके नाटक दर्शकों की आत्मा को झंझकोर देते हैं। इन्होने शहर के कुछ नाट्यप्रेमियों के सहयोग से आज से करीब 40 बरस पहले भीलवाड़ा में 'रसधारा' संस्थान की नींव रखी और कई नवोदित कलाकारों को अभिनय की बारीकियों को समझाया। आज रसधारा से प्रशिक्षित कई कलाकार अभिनय में राष्ट्रीय पहचान बना चुके हैं। 'रसधारा' का नाम आज देशभर के सर्वश्रेष्ठ नाट्य संस्थान में बड़े गर्व के साथ गिना जाता है। देश के नामचीन रंगकर्मी समय समय पर रसधारा में अपने अनुभव साझा करने आते हैं तथा यहाँ अपने नाटकों का प्रदर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। रसधारा ने एक बहुत अच्छी परम्परा स्थापित की है कि इसके माध्यम से विभिन्न रसों के नाटक प्रस्तुत हैं।
गोपाल आचार्य ने नाट्य विधा को स्वान्त: सुखाय माना है। ये बताते हैं,"नाटक ही ऐसा माध्यम है जिसमें समस्त ललित कलाओं का समावेश होता है। इस कारण इसे सम्पूर्ण कला की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। नाटक के जरिए एक इंसान एक ही जीवन कई जीवन जी सकता है। जब कोई व्यक्ति किसी पात्र का अभिनय करता है तो वह परकायागमन करता है। इसमें व्यक्ति खुद को भूलकर पात्र के जीवन को जीने लगता है और तब ही आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती हैं। "

गोपाल आचार्य यह भी मानते हैं कि आज टीवी, सिनेमा और सोशल मीडिया के दौर में नाट्यकला को बचाना एक सफेद हाथी को पालने जैसा है। इसके लिए लाईट, साउण्ड, म्यूजिक,मंच सज्जा और परिदृश्य निर्माण बहुत खर्चीला कार्य है ऊपर से कलाकारों की महीनों की अभिनय साधना ! नाटक का प्रस्तुतिकरण टीमवर्क की तरह है और सभी का सामञ्जस्य बहुत महत्वपूर्ण है। नाटक में रिटेक का कोई विकल्प नहीं होता। इस कारण प्रशासन की महत्ती जिम्मेदारी है कि इस कला को पोषित और पल्लवित करे।

राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा पुरस्कृत रंगकर्मी गोपाल आचार्य की पेंटिंग

यह कृति समकालीन भारतीय कला की उस संवेदनात्मक धारा का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ रूपाकार केवल दृश्य नहीं रहते, बल्कि विचार और अस्तित्व के प्रश्नों में बदल जाते हैं। चित्र में दो मुखाकृतियाँ आमने–सामने हैं तथा उनके बीच की रेखा विभाजन और संवाद को समवेत रूप में प्रस्तुत कर रही है। यह विभाजन आधुनिक मनुष्य की द्वैत चेतना का रूपक बनाता प्रतीत होता है—स्व और पर के बीच,स्त्री और पुरुष के बीच, प्रकाश और अंधकार के बीच, प्रकृति और संस्कृति के बीच... निश्चित ही ये आकारिक छवियां दर्शक के चेतना के उत्तंग की ओर बढ़ाती हैं।

यहां रेखांकन की सूक्ष्मता तथा श्वेत–श्याम रंग का संयमित प्रयोग इस कृति को आत्ममंथन का आयाम देता है। चेहरे आपस में विलीन होते दीखते हैं, मानो पहचान की सीमाएँ तरल हो रही हों... ज्यों घट रहा हो मौन में कुछ कुछ...। नीचे जल में प्रतिबिंबित आकृतियाँ 'स्व' के अवचेतन पक्ष की ओर संकेत करती हैं—जो दिखाई दे रहा है, वह पूरा सत्य नहीं है,उसका एक और रूप भीतर, गहराई में विद्यमान है।

चित्र के मध्य भाग में उगता हुआ वृक्ष या पुष्पाकार स्वरूप जीवन, स्मृति और सांस्कृतिक विरासत के बिंब को प्रदर्शित करता है। यह संकेत करता है कि मनुष्य की पहचान केवल जैविक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भी है। समकालीन संदर्भ में, जहाँ पहचान की राजनीति, लैंगिक विमर्श और पर्यावरणीय चेतना प्रमुख प्रश्न हैं, यह चित्र उन सभी मुद्दों को एक साथ छूता है।

इस कृति की विशेषता यह है कि यह प्रत्यक्ष कथन नहीं करती, बल्कि प्रतीकों और संरचनात्मक संतुलन के माध्यम से दर्शक को आत्मसंवाद की स्थिति में ले जाती है। समकालीन कला का यही स्वभाव है। वह उत्तर नहीं देती, प्रश्न जगाती है। यहाँ प्रेम का विभाजन और एकत्व एक साथ उपस्थित हैं; और यही जटिलता इसे कृति को हमारे समय का सार्थक दृश्य-प्रस्ताव बनाती है।

गोपाल आचार्य ने अब तक करीब 40 से अधिक नाटकों और लघुनाटकों का निर्देशन और लेखन किया है। इनके नाटक देश के कोने-कोने में मंचित हो चुके हैं। इसका सबसे चर्चित नाटक "भोपा भैरुनाथ" है जो स्थानीय आंचलिक भाषा में हैं। यह दर्शकों को ग्राम्य रीति रिवाज, पद व धन के दुरुपयोग, पंच व्यवस्था और धार्मिक महत्व के देवरों के मनोवैज्ञानिक महत्व को समझने का प्लेटफार्म तैयार करता है । इसके साथ ही 'बुतबन्दे बनाम प्रायः कहानी', 'बचाओ बच आओ', 'भीड़ भरा एकान्त' नाटक गोपाल आचार्य के मील के पत्थर हैं। इन नाटकों को दर्शक बहुत सराहते रहते हैं। इनके नाटकों को पसंद करने वालों की लम्बी फेहरिस्त है।

रंगकर्म को लेकर गोपाल आचार्य न केवल सजग है अपितु गुणवत्ता को लेकर कदापि समझौता नहीं करते। इनका स्पष्टवादी होना ही इनके नाटकों को ऊँचाईयाँ प्रदान करता है। इन्होने नाट्य विधा के अलावा फिल्मी सिटी मुम्बई की मूवीज और राजस्थानी फिल्मों में अभिनय भी किया है। ये मानते हैं कि इनको जो खुशी रंगकर्म में मिलती है वो फिल्मों में नहीं। इनके मन में पीड़ा और कसक थी कि भीलवाड़ा अंचल में अभी नाट्यविधा को लेकर बहुत काम करना बाकी है। वो इस नाट्य बंजर जमीं पर रंगमंच की फसल लहलहाते देखना चाहते थे। आज वो सपना; सपना नहीं हकीकत के रूप में सबके सामने हैं।

रसधारा संस्थान वर्ष में तीन-चार बार देश भर के चर्चित नाटकों का प्रदर्शन कराता है। रसधारा में करीब सौ सवा सौ दर्शकों की क्षमता वाला "साक्षात् " नामक मिनी ऑडिटोरियम भी बना रखा है। भीलवाड़ा के दर्शकों में रसधारा द्वारा आयोजित नाटकों को देखने के लिए बेताबी से इंतजार रहता है। खुशफहमी की बात है कि इन नाटकों के दर्शक सभी आयु वर्ग के हैं। विशेष रूप से रसधारा के नाटकों के दर्शकों में महिलाओं की संख्या बड़ी खासी रहती हैं। यह सब रसधारा और गोपाल आचार्य की वर्षो की तपस्या का परिणाम है।

गोपाल आचार्य बताते हैं कि रसधारा की भावी योजना है कि इस परिसर भव्य ऑडिटोरियम बनाया जाएगा ताकि नाटक प्रस्तुतीकरण के लिए स्थायी रूप से लाईट्स साउण्ड और मंच का कॉरिडोर उपलब्ध हो जाए।

गोपाल आचार्य नाटक को केवल प्रदर्शन तक सीमित नहीं रखना चाहते। वे चाहते हैं कि नाटक के उपरांत नाटक पर समालोचनात्मक चर्चा अवश्य होनी चाहिए जिसमें निर्देशक अभिनेता और दर्शकों के बीच सीधा संवाद हो। यहीं से नाटक के मूल उद्देश्यों तक पहुँचा जा सकता है। रंगमंच के समृद्ध होने के लिए निर्देशक और श्रोताओं का आपसी समन्वय की महती भूमिका रहती है।

इतने मेधावी और रचनात्मक होने के बावजूद ये जड़ों से जुड़े रहना और बहुत ही सादगी के साथ जीना पसंद करते हैं। आडंबर से कोसों दूर निर्मल भाव के धनी गोपाल आचार्य अभी भी अपने आप को रंगकर्म का विद्यार्थी मानते हैं। इतना ही नहीं रंगकर्म को लेकर इतने समर्पित है कि यह उन्हे पूछा जाए तो यही कहते हैं कि 'रंगकर्म ही मेरा धर्म है। यही मेरे जीवन की प्राणवायु है।'

संपर्क : सेक्टर -2सुखाड़िया नगरपार्क के पास
भीलवाड़ा 311001- Ph 7014377827

कला समय

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग
अतिथि संपादिका
मो. 9928277833

आगामी अंक
अगस्त-सितम्बर 2026

हवेली संगीत विशेषांक

अतिथि संपादिकाः प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग
(वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका, पूर्व अधिष्ठता, ललित कला संकाय
पूर्व अध्यक्ष, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राज.)

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतुः 'हवेली संगीत' विषय पर आपके आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, संस्मरण सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 अगस्त 2026 है।

- संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

कला लेख

प्राणमयी विद्युत धारा के चितेरे : नंदलाल वसु

डॉ. किरण मिश्रा

डॉ. किरण मिश्रा एक प्रतिष्ठित शिक्षाविद्, समाजशास्त्री, विचारक, लेखिका एवं समीक्षक के रूप में सुविख्यात हैं। वर्तमान में वे प्राचार्या के पद पर कार्यरत रहते हुए शिक्षा, साहित्य, समाज और पर्यावरण के विविध आयामों पर गंभीर चिंतन एवं लेखन कर रही हैं। समाजशास्त्र, वेद-दर्शन तथा पर्यावरण विषयों में उनकी विशेष रुचि एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि उन्हें समकालीन बौद्धिक विमर्श में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।उनकी कृतियों में 'समाजशास्त्र : एक परिचय' तथा कविता-संग्रह 'ब्रह्मांड का घोषणा-पत्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रकाओं में उनके लेख तथा गंभीर समीक्षाएं निरंतर प्रकाशित होती रही हैं। पर्यावरण-संतुलन और भारतीय दार्शनिक दृष्टि पर उनका लेखन विशेष रूप से चर्चित रहा है। साहित्यिक एवं बौद्धिक गतिविधियों के लिए राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों द्वारा उन्हें अनेक बार सम्मानित किया गया है।डॉ. मिश्रा का लेखन संवेदनशीलता, वैचारिक गहराई और सामाजिक सरोकारों का सशक्त उदाहरण है।

नंदलाल वसु भारतीय चित्रकला में एक ऐसा नाम है जिसने भारतीय कला संस्कृति को एक नया आयाम दिया है । वे भारतीय चित्रकला के ऐसे दृष्टा ऋषि हैं जिनके सृजन की प्रखर किरणों ने अतीत एवं वर्तमान चित्रकला के जीवन को आलोकित किया है। वे कहते है -

"कला केवल एक सौंदर्यपरक गतिविधि नहीं है, बल्किजीवन, संस्कृति और आध्यात्मिकता का प्रतिबिंब है।"

प्राणमयी विद्युत धारा के वह ऐसे चितेरा थे, जिनका दर्शन अध्यात्म और भारतीय संस्कृति की चेतना पर गहराई से आधारित था। उनका कहना था कि कला का एक व्यापक उद्देश्य होना चाहिए, ऐसा उद्देश्य जो आम जनमानस को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से न मात्र जोड़े वरन् राष्ट्रीय पहचान की भावना को बढ़ाने का भी कार्य करे।

पश्चिम अकादमिक शैलियों के प्रभुत्व को अस्वीकार करके उन्होंने भारत की समृद्ध प्राचीन कलात्मक परम्परा को अपनाया ताकि तत्व कला और दर्शन का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके । एक अनूठी दृश्य भाषा का निर्माण करते उनके चित्र भारतीय संस्कृति की धरोहर है।

सरलता, सामंजस्यता और जीवंतता को अपने चित्रों का आधार बनाते उनके चित्र सहज प्रकृति से जुड़ाव के उदाहरण है। प्रकृति से जुड़ाव का एक उदाहरण हम उनके बनाए शांतिनिकेतन के चित्र में देख सकते हैं । वैसे तो श्री नंदलाल वसु के चित्रों का विषय भारतीय लोक - जीवन है जिनमें चटकीले रंगों और सपाटेदार रेखाएं से बने बहुरंगी लोक चित्र हैं , किन्तु उनके कुछ चित्र जिसमें उन्होंने धूसर रंगों का भी प्रयोग किया है अद्वितीय हैं।

कालिदास कृत कुमारसंभव के पाँचवें सर्ग की पार्वती को उन्होंने इस चित्र में मानों जीवंत कर दिया है। इस चित्र में पार्वती पर्वतराज हिमालय के शिखरों के बीच में खड़ी हैं। शिखरों के साथ उनका धूसर वर्ण एकाकार होता प्रतीत होता है। संकल्प की वज्रमयी दृढ़ता शिलालेख रूप में उनके चारों और साकार हो उठी है।चित्र में अखंड तप, अखंड ध्यान, शिव की प्राप्ति के लिए अखंड समाधि चित्रकार के प्राण की साधना है। चित्र की बारीकी चित्रकार की सूक्ष्म दृष्टि को दर्शाती है। शुभ्र देह में हरित दूब की पवित्री हृदय के निकट शुभ्रता फैलती हुई सी लग रही है। यहां कवि और चित्रकार एक भाव होते दिखाई पड़ते है। यही चित्र की विशेषता है। एक और कवि कालिदास तो दूसरी ओर नंदलाल वोस दोनों ही अपनी - अपनी कला के भावों से अमूर्त से मूर्त रूप होते दृष्टिगोचर हो रहे है।

नंदलाल वोस जैसे चित्रकार इतने संवेदनशील थे कि अपने विषाद में वे उमा का विषाद मिलकर "शोकार्त उमा" बनाते है तो दूसरी और भारतीय लोक जीवन पर आधारित चटकीले रंगों से उल्लास रच देते हैं।

वोस के चित्रों में प्राचीन रंग और प्राचीन लेखन सामग्री का इतना अद्भुत संयोजन है कि हम उनके चित्रों को देख अजंता की गुहाओं में तो कभी भीमवेटका की भित्तियों में पहुंच जाते हैं। यहां पहुंचना स्वयं को दोहराना नहीं है वरन् कला संस्कृति की पुर्नस्थापना है। यह आर्यावर्त से भारत का विस्तार है।

लोक कला और स्वदेशी अभिव्यक्ति की संभावनाओं से मोहित रहने वाले नंदलाल वसु अबनिंद्रनाथ टैगोर जी के प्रिय शिष्य थे।उन्होंने स्वदेशी अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं में समाहित कर स्थानीय जीवन के चित्रण को एक अलग ही शैली में प्रस्तुत किया। उनकी शैली इतनी अनूठी थी कि उसकी नकल आज भी हमें यहां - वहां दिखाई पड़ती है।

चित्रकला मात्र कैनवास पर रंगों और तुलिका से सपाटेदार रेखाओं का समन्वय नहीं है। यह एक संस्कृति का दिक् - प्रवेश है।

वोस कहते हैं कि मनुष्य को सौन्दर्य - भावना कला के रूप में उसे चारों ओर से घेरती है।कला अर्थ साध्य नहीं, भावना और स्वेद जल से सिद्ध होती है।

अजंता गुफा भित्ति चित्रों और मुगल लघु चित्रों जैसे शास्त्रीय स्रोतों से प्रेरणा देते वोस जलरंग की पतली परतों को लगाकर गहराई और सूक्ष्मता प्राप्त करने की तकनीक को अपनाते हुए बंगाल शैली चित्रकला की नींव रखते दिखाई पड़ते है। इस तकनीक ने उन्हें भारतीय पौराणिक कथाओं, लोककथाओं और ग्रामीण जीवन के सारतत्व को समझते हुए अलौकिक और भावपूर्ण कृतियों की रचना करने में सक्षम बनाया। जैसे-जैसे उनकी शैली विकसित हुई, नंदलाल बोस ने अपने काम में लोक कला और शिल्प के तत्वों को शामिल करना शुरू किया, जिसमें उन्होंने गहरी रेखाओं और सरलीकृत आकृतियों पर जोर दिया।

नंदलाल बोस ने संविधान की हस्तलिखित प्रति को बहुत ही सटीक रूप से अलंकृत किया है। उन्होंने प्राचीन सभ्यता से लेकर आधुनिक राष्ट्र तक की यात्रा को दर्शाया है। नंदलाल और उनकी टीम ने बाइस चित्रों की एक श्रृंखला के माध्यम से भारत की ऐतिहासिक यात्रा को चित्रित किया है। सिंधु घाटी सभ्यता से रामायण काल तक, बौद्ध और जैन काल से गुप्त काल तक, और मुगल काल से लेकर आधुनिक स्वतंत्रता आंदोलन तक हस्तनिर्मित चित्रों से संविधान को सजाया। मूल भारतीय संविधान के पन्ने नंदलाल बोस और उनके छात्रों द्वारा बनाए गए उत्कृष्ट चित्रों के नमूने हैं। यह कलात्मक स्पर्श दस्तावेज़ को एक अनूठी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परत प्रदान करता है, जिससे यह न केवल एक मूलभूत कानूनी ग्रंथ बल्कि कला का एक उत्कृष्ट नमूना भी बन जाता है।

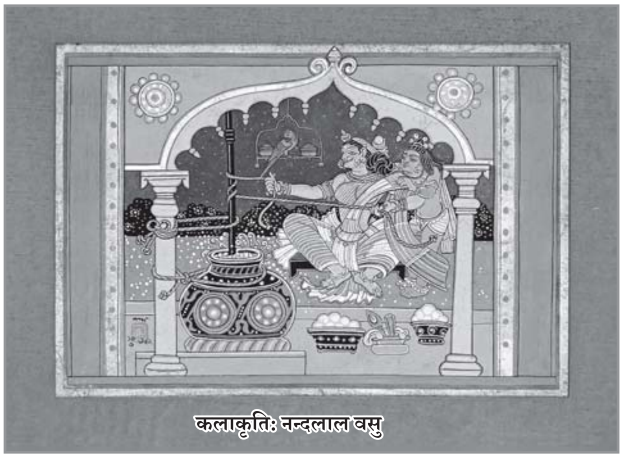
कलाकृतिः नन्दलाल वसु

उन्होंने भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले पुरस्कारों के प्रतीक चिन्ह भी डिजाइन किए थे।

उनके चित्रों में महा - प्रस्थान, संघमित्रा, बृहलता, शोकार्त, उमा, पार्थ - सारथी, कुणाल, धूतप्रसक्त युधिष्ठिर, चैतन्य, अभिमन्यु - वध, नटीर पूजा, गंगावतरण, अंधा बाउल, शिव - सती, शिव का विषपान, विरहिणी राधा, चित्रांगदा के देश में अर्जुन, ऋतुसंहार, देवदास आदि में नंदलाल बसु के चित्रों की प्रमुख विशेषता भारतीय परंपरा, पौराणिक कथाओं और ग्रामीण जीवन का सामंजस्यपूर्ण सम्मिश्रण है। उनके चित्रों में रेखाएं, वॉश तकनीक और टेम्परा का बेहतरीन इस्तेमाल दिखता है। उनकी कला राष्ट्रीयता, सादगी और जीवंतता का प्रतीक है।

नंदलाल बसु की कला भारतीय संस्कृति में गहराई से रमी है। उन्होंने 'सती का देह त्याग', 'शिव का विषपान', और 'दांडी मार्च' (गांधीजी की दांडी यात्रा) जैसे विषयों के माध्यम से राष्ट्रीयता और पौराणिक कथाओं को जीवंत किया।

अजंता और लोक शैली का मेल करते हुए नंदलाल वोस ने अजंता की भित्ति-चित्रों के साथ-साथ कालीघाट चित्र से प्रेरणा लेकर उन्होंनेअपनी एक अनूठी शैली विकसित की।

भारतीय ग्रामीण जीवन, कारीगरों और किसानों को कलात्मक रूप से दिखाया गया, जो उनकी सादगी के प्रति प्रेम को दर्शाता है।

वे तकनीक और रेखांकन का उपयोग सटीक करते थे। उनकी रेखाएं बेहद प्रवाहमय (fluids) और सशक्त होती थीं। उनके चित्रों में शांत रंग योजना दिखाई पड़ती है। उन्होंने अक्सर संयमित और सौम्य रंगों का उपयोग किया, जो भारतीय परिदृश्य को अधिक जीवंत और प्राकृतिक रूप से प्रस्तुत करता है। सात हजार से अधिक कलाकृतियां को बनाने वाले नंदलाल बोस को 'मास्टर मोशाय' के नाम से भी जाना है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के निमंत्रण पर उन्होंने सन् १९१९ में शांतिनिकेतन के विश्वभारती विश्विद्यालय के कला भवन में प्रधानाध्यापक का कार्यभार सम्भाला।

एक बहुमुखी कलाकार के रूप में उन्होंने चित्र, ग्राफिक्स, दृष्टान्त चित्र, सजावटी डिजाइनें और इसके अतिरिक्त भित्ति चित्र भी प्रस्तुत किए। शान्ति निकेतन, श्री निकेतन और बदौड़ा कीर्ति मन्दिर (गुजरात) में बनाए उनके भित्ति चित्रों ने उन्हें और भी लोकप्रिय बना दिया।

नन्दलाल बसु की समस्त कलाकृतियाँ भारतीय संवेदना का प्रतीक है। उनके चित्र जहाँ कला के सैद्धान्तिक पक्षों की व्याख्या करते हैं। वहीं इनका सामाजिक पक्ष भी उन्नत है। जिस प्रकार चीनी, जापानी, यूनानी, भारत की विभिन्न कला धाराओं का उन्होंने अध्ययन किया उसी प्रकार विभिन्न लोक-कला की धाराओं को भी आत्मसात किया और अपने कर्म से इस आवश्यकता की सार्थकता भी प्रकट की।

आधुनिक कला रूपों एवं लोक शैली के कला रूपों का समन्वय एक नए सृजनात्मक बोध को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने जनमानस को अपनी प्राचीन जड़ों से जुड़ने के साथ-साथ नवीनता से भी आत्मसात किया। इस समन्वित दृष्टिकोण की कल्पना अनेक भारतीय चित्रकारों ने अपनी कलाकृतियों में प्रस्तुत की है।

नंदलाल बसु भी एक ऐसे ही विरले कलाकार थे जिन्होंने लोक शैली की इस नव संचित धारा को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति में प्रस्तुत कर अपनी कला को विश्व प्रसिद्ध कर दिया। भारत उनके बनाए चित्रों के व्यापक अर्थ को आत्मसात करते हुए हमेशा उनका ऋणी रहेगा।

सम्पर्क: 7 - ए ओम अपार्टमेंट, ए - 56, दूसरी मंजिल, ए - ब्लॉक, पूर्व - 2
शालीमार गार्डन गाजियाबाद 201005 उत्तर प्रदेश
ब्लॉग : kirankiduniya.blogspot.com ईमेल : kiranpmg@gmail.com

■

कला लेख

नीले वर्ण की संकल्पना: विचार एवं रूपाकार

प्रो. डॉ. ऋतु जौहरी

डॉ. ऋतु जौहरी समकालीन भारतीय कला जगत में एक सक्रिय चित्रकार व कलाविद् दोनों ही रूपों में प्रतिष्ठित हैं। वे जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर के ललित कला विभाग की विभागाध्यक्ष हैं। उनका लेखन मुख्यतः कला चिंतन, इतिहास एवं समीक्षाओं के व्यापक दायरे को समाहित करता है। उनके लेखन व सृजनात्मक कार्य का केंद्रबिंदु दृश्य-भाषा का अध्ययन है, विशेषतः भारतीय कला एवं सौंदर्यपरंपरा में तंत्र की अभिव्यक्ति तथा भारतीय कला-परंपराओं में विचार और रूप (Idea and Image) के मध्य वैचारिक संवाद का विश्लेषण। वे शास्त्रीय, लोक, आधुनिक और समकालीन भारतीय कला-रूपों के साथ आलोचनात्मक रूप से संवाद स्थापित करते हुए बिंब प्रतिबिंब, प्रतीक और सौंदर्य-परिप्रेक्ष्य में हुए रूपांतरणों का अनुशीलन करती हैं।

नीले रंग की असीमित संकल्पना को मानव समाज में भिन्न-भिन्न रूपों में व्याख्यायित किया गया है। भारत सहित विश्व की अनेक सभ्यताओं में नीले रंग की उपस्थिति एवं विचार को ललित कलाओं की दृष्टि के साथ-साथ, दार्शनिक आध्यात्मिक स्तर एवं सामजिक वैज्ञानिक सन्दर्भों में समझा जा सकता है।

द ब्लू सिटी जोधपुर: जोधपुर एक राजसी विरासत वाला नगर है, जहाँ नीली गलियों के रूप में ब्लू सिटी' का सहज ही अनुभव किया जा सकता है। शहर के अनेक घरों और दीवारों पर नीला रंग अत्यंत मनमोहक प्रतीत होता है, इसी कारण जोधपुर को ब्लू सिटी कहा गया है। इस नगर की स्थापना 1459 ई. में राव जोधा द्वारा की गई थी। शौर्य, स्थापत्य कौशल और प्राकृतिक सौंदर्य के साक्ष्यों से सुसज्जित यह नगर उम्मेद भवन पैलेस, मेहरानगढ किला, जसवंत थडा, मंडोर गार्डन तथा अन्य अनेक आंतरिक स्थलों के लिए ख्याति प्राप्त रहा है। ये सभी न सिर्फ जोधपुर के मान और गौरव हैं, बल्कि कलाकारों को सौंदर्यात्मक और आध्यात्मिक रूप से आकर्षित भी करते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, दृश्य कलाएँ चेतना और सुंदर कलाकृतियों से प्रेरित होकर समृद्ध और जीवंत होती है, संभवतः यही कारण है कि फिल्म उद्योग, जलरंग कलाकारों तथा प्रदर्शन कलाओं के कलाकारों ने भी इन स्थलों को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए चुना है।

'कॉपर सल्फेट युक्त चूने की रंगत से आप्लावित जोधपुर का यह नीला रंग अपने इतिहास से जुड़ी रोचक कथाओं को कहता है। आरंभ में नीला रंग ब्राह्मणों के घरों का संकेत माना जाता था, परंतु बदलते समय के साथ यह अन्य सामाजिक वर्षों के लिए भी पहचान का प्रतीक बन गया। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो नीला रंग सूर्य किरणों का अच्छा परावर्तक है, जिससे घर ठंडे रहते हैं। चूंकि दीमक चूने के मिश्रण से बनी दीवारों और संरचनाओं को नुकसान नहीं पहुँचाती है अतः कॉपर सल्फेट के मिश्रण का प्रयोग इस प्रकार के कीटों को दूर रखने में प्रभावी माना जाता है। एक घुमावदार मार्ग 125 मीटर ऊँची पहाड़ी तक जाता है, जिस पर भव्य मेहरानगढ़ किला स्थित है। पुराने नगर के प्रतिष्ठित नीले घरों के रूप में जोधपुर का विहंगम दृश्य, यहां से स्पष्ट देखा जा सकता है।

रंगों के गुण और विशेषताएँ: रंगों का प्रयोग दैनिक अभिव्यक्ति में अर्थ को सशक्त और स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। तात्कालिक उद्देश्य व विचारों के संप्रेषण में रंग का उपयोग विचारशील है। हम ऊष्मा, क्रोध, ईर्ष्या, बुराई या वंदना जैसे भावों को व्यक्त करने के लिए रंगों की प्रतीकात्मकता का उपयोग करते हैं। कुछ क्षेत्रों में रंग-प्रतीक इतने निश्चित होते हैं कि परंपरागत उपयोग को छोड़ना संभव नहीं होता, जैसे कि राष्ट्र ध्वजों के माध्यम से रंग-चिह्नों का उपयोग। यहाँ रंग समूह-परिचय का साधन बनते हैं। समाज के विभिन्न उप-समूहों द्वारा प्रयुक्त कोडित प्रणालियों में भी रंगों को विशेष अर्थ दिए जाते हैं।

इस प्रकार रंग के दो अर्थ होते हैं। एक उसका भौतिक पक्ष (शुद्ध वर्ण, तरंगदैर्ध्य) और दूसरा वह अर्थ जो संस्कृति से प्राप्त होता है। संस्कृति से गुजरते हुए रंग अर्थ

कलाकृति: हेनरी एमिल बेनोआ मातिस

ग्रहण करते हैं और हमारे दृष्टिकोण व आचरण को प्रभावित करते हैं। आधुनिक सिद्धांतों में रॉड्स और कोन्स के द्वैत तंत्र का वर्णन है, जिनमें कोन्स रंग-संवेदना के लिए उत्तरदायी होते हैं। चिकित्सक रंगों का उपयोग निदान में भी करते है, 'लाइट-बाथ', 'कलर्ड ग्लास वॉटर थैरेपी', तथा विशिष्ट रंगों पर ध्यान जैसी विधियों से विभिन्न मनोविकारों का उपचार किया गया है।

भारतीय साहित्य में रंगों की एक समृद्ध परंपरा और विस्तृत विवेचना मिलती है। वास्तुशास्त्र के अनुसार प्रत्येक दिशा व कोण का अपना एक रंग है। सुदूर स्पेस से पृथ्वी का रंग भी नीला दिखाई पड़ता है। रंगों में मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ और ऊर्जा निहित होती है, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति गहराई से अनुभव करता है। नीला शांति और विश्रांति की अनुभूत्ति कराता है। इसे शांत, सुरक्षित और सुव्यवस्थित माना जाता है। स्थिरता और सुरक्षा के रंग के रूप में, नीली कार या एसयूवी विश्वसनीयता और भरोसे का संकेत देती है। नीला स्थिरता और विश्वसनीयता का भी प्रतीक है। सुरक्षा का भाव दर्शाने वाले व्यवसाय अपने विज्ञापन और विपणन में नीले रंग का उपयोग करते हैं।

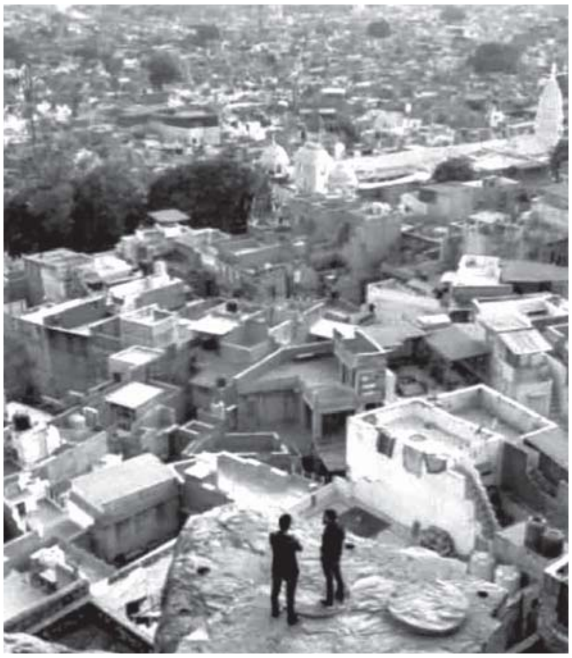

भारत के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे में अशोक चक्र की 24 रेखाओं का रंग भी नीला है। भारत की क्रिकेट टीम भी नीली जर्सी पहनती है। आंतरिक सज्जा में नीले कमरों में काम करते समय लोग अधिक उत्पादक और रचनात्मक प्रतीत होते हैं। लैंगिक संकेतों में, नीला रंग पुरुष शिशु व गुलाबी रंग कन्या शिशु से जोड़ा जाता है। नीला वर्ण भोजन में प्रायः अरुचिकर माना जाता है। भोजन में नीला रंग विष का संकेत भी हो सकता है। कभी-कभी यह उनींदापन भी उत्पन्न करता है। ये तमाम उदाहरण नील वर्ण की संकल्पना और इनके वैचारिक रूपांतरण को दर्शाते हैं।

उच्च आध्यात्मिकता में नीला वर्ण (विशुद्धि चक्र): नीले रंग की आभा आकाश का निर्माण करती है, जो तंत्र और रंगों का प्रतिनिधित्व करता है। कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया का अध्ययन शास्त्रीय और नैदतीक दोनों दृष्टियों से किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मांडीय ऊर्जा की अभिव्यक्ति है और मानव शरीर में ऊर्जा केंद्र (चक्र) स्थित है। प्रत्येक चक्र का अपना रंग होता है। इनके जागरण हेतु विशिष्ट रंग वर्णित है। नवग्रहों, सप्ताह के दिनों और दिशाओं के भी अपने-अपने रंग हैं। महासागर का जलीय नीला रंग आध्यात्मिकता से जुड़ा है। इंद्र के वाहन ऐरावत का वर्ण श्वेत धूसर है।

चक्र-साधना में कंठ चक्र विशुद्धि का रंग नीला माना गया है। यह तंत्रानुसार शुद्ध पंचम प्रधान चक्र है। इस चक्र के अधिष्ठाता पंचवक शिव (पाँच मुख, चार भुजाएँ) हैं और शक्ति शाकिनी है, साथ ही तत्व आकाश है। शाकिनी शक्ति उच्च ज्ञान और सिद्धियों की प्रदात्री मानी जाती है। शाकिनी शक्ति की आकाशी नीली साडी और शिव का नीलवर्ण भारतीय परंपरा में विशिष्ट स्थान रखत्ता है, संभवतः यही कारण है कि मेहरानगढ़ किले के सुदूर नीचे तक नीले घरों की पट्टिकाएं दिखाई देती हैं। नीला रंग भगवान कृष्ण से भी जुड़ा है, अमरत्व, वीरता और दृढ़ संकल्प का प्रतीक। पश्चिमी राजस्थान के लोकदेवता बाबा रामदेव पीर का संबंध नीले घोड़े से माना जाता है। लैपिस लाजुली, एक नीला अर्ध-कीमती रत्न है, जो आध्यात्मिक शक्तियों और ऊर्जा से संबद्ध है। विभिन्न सभ्यताओं में आभूषण, मूर्तिकला और चित्रकला में इसका लम्बे समय से उपयोग होता रहा है।

रंग-मनोविज्ञान में नीलाः जर्मन कवि और वैज्ञानिक योहान वोल्फगैंग (गोएथे) तथा अन्य विद्वानों ने रंग-सिद्धांत प्रस्तुत किए। रंग-मनौविज्ञान का उपयोग क्रोमोथैरेपी (रंग-चिकित्सा) में होता है, जो शरीर और मन में संतुलन लाने में सहायक है। रंगीन प्रकाश, रंगीन तेल से मालिश (लाइट थैरेपी / कलरोलॉजी) आदि भी इसी श्रेणी में आते हैं। नीला रंग रोगों को शांत करने और दर्द में राहत देने वाला माना जाता हैं। एक वैज्ञानिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि श्वेत रंग से 43 प्रतिशत लोगों को 'राहत' मिली, जबकि नीले रंग से 35 प्रतिशत लोगों ने 'राहत' की अनुभूति हुई।

सामाजिक संदर्भों में नीला रंगः नीले रंग का प्रयोग तमाम प्रकार के सामजिक सन्दर्भों में भी किया जाता है। कुछ उदाहरण निम्न हैं-

ब्लूस्टॉकिंगः यह शब्द, 18वीं शताब्दी के इग्लैंड में प्रचलित ऐसी महिलाओं के लिए किया गया, जो अत्यधिक शिक्षित, बौद्धिक, साहित्य कला में रुचि रखने वाली थीं किंतु परंपरागत घरेलू व सजावटी स्त्री-भूमिका से अलग दिखाई देती थीं। अकादमिक और सामाजिक विमर्श में इसे पुरुष-प्रधान समाज की आलोचनात्मक दृष्टि के उदाहरण के रूप में मान्यता मिली।

ब्लू मंडे, हैव द ब्लूज़ः पश्चिमी समाज में सोमवार की थकान, ऊब और मानसिक बोझ को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाने वाला वाक्यांश है। शैली भी है।

द ब्लूज़ः यह एक संगीत शैली है, जो अफ्रीकी अमेरिकी जनता के संघर्ष व पीडा के अनुभव को दर्शाती है।

आउट ऑफ द ब्लू, अ बोल्ट फ्रॉम द ब्लूः आश्चर्य के भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किये जाने वाले शब्द।

ब्लू रिबनः गुणवत्ता को प्रदर्शित करता है।

ब्लू प्लेट स्पेशलः अमेरिकी संस्कृति में छोटे ढाबों/डाइनर्स की परपरा से जुड़ा मुहावरा है, जहाँ दैनिक रूप से सस्ता व सादा घरेलू भोजन मिलता है।

ब्लू बियर्डः क्रूरता को दर्शाता है।

ब्लू लॉज़, ब्लू नोज़ः दमन को दर्शाता है।

वन्स इन अ ब्लू मूनः दुर्लभता को दर्शाता है।

ब्लू फ्लेमः तीव्रता को दर्शाता है।

बालक शिशुः नीले वस्त्र से जुड़ाव रखता है।

ललित कलाओं में नीलाः कला में नीला कभी-कभी उदासी या एकाकीपन का भाव भी उत्पन्न करता है। पिकासो की ब्लू पीरियड की कृतियाँ एकाकी, उदास और विरक्त भावों से युक्त हैं। रंग प्रिज्म में नीले पक्ष के रंग 'कूल कलर्स' कहलाते हैं, जिनमें नीला, बैंगनी और हरा शामिल है।

कलाकार वासिली कैडिस्की की प्रारंभिक रचनाएँ और 1912 में प्रकाशित ग्रंथ ऑन द स्पिरिचुअल इन आर्ट उनके अनुभवजन्य भावों पर आधारित थे, न कि सटीक विज्ञान पर। कैंडिस्की ने विरोधी युग्मों की सूची बनाई। जैसे कि पीला बनाम नीला, श्वेत बनाम काला, लाल बनाम हरा, नारंगी बनाम बैंगनी। फ्रांसीसी कलाकार हेनरी मातिस (1869-1954) की 1952 की चित्र श्रृंखला न्यूड-ब्लू (द ब्लू न्यूड) भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'नि' स्वर को नीले रंग से दर्शाया जाता है। स्पेक्ट्रम म्यूज़िक सिस्टम में 'निषाद' के लिए नीला वर्णित है।

प्रकृति में नीला वर्णक और रंग-तकनीकः प्रकृति में नीला रंग मुख्यतः दो रूपों में मिलता है। पहाड़ी नीला (ताँबे का यौगिक, जो स्थायी नहीं होता) और लैपिस लाजुली, जो प्रकाश से अप्रभावित रहता है। प्राचीन चित्रों में इसे महँगे ग्लेज़ के रूप में आधार चित्रण के लिए प्रयोग किया जाता था। इसे 'ग्लेज स्टोन' भी कहा गया। 'अल्ट्रामरीन नाम भी प्रचलित रहा है, क्योंकि यह कैस्पियन समुद्रों के पार से आता था। आज अल्ट्रामरीन नीला कृत्रिम रूप से सोडा, एल्यूमिना, सल्फर और सिलिसिक अम्ल के संयोजन से बनाया जाता है। यह रंग चक्र में प्राथमिक नीले के सबसे निकट है। इसकी टिंटिंग शक्ति उच्च और वर्ण शुद्ध होता है।

पर्शियन ब्लू जिसे पेरिस या बर्लिन ब्लू भी कहा जाता है, सभी वर्णकों में अत्यंत शक्तिशाली टिंटिंग वाला है। इसे ग्लेज़ के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। मोटी परतों में यह अप्रिय ताँबई आभा ले लेता है और चित्र में 'छेद' जैसा प्रभाव पैदा कर सकता है। अल्ट्रामरीन के साथ मिश्रण उत्कृष्ट परिणाम देता है, विशेषकर परतों में। चूने से यह नष्ट हो जाता है, इसलिए भित्तिचित्रों के लिए अनुपयुक्त किंतु लागत में सस्ता है।

कोबाल्ट ब्लू महँगा रंग है और जिंक व्हाइट के साथ अच्छा कार्य करता है। इसका प्रभाव समृद्ध और आकर्षक होता है। थोड़ी मात्रा में कोबाल्ट ब्लू मिलाने से तैल-रंग जल्दी सूखते हैं। कोबाल्ट ब्लू के दोनों रूप ग्रीन ऑक्साइड सहित, चूने से अप्रभावित रहते हैं, ऊष्मा-प्रतिरोधी होते हैं और पोर्सलीन चित्रण तथा पॉट-ग्लेज़ में प्रयुक्त होते हैं। जयपुर की ब्लू पॉटरी इसका जीवंत उदाहरण है।

आज के समकालीन कला-जगत में नीले के रहस्य की खोज हेतु अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि नीले की कहानी कभी समाप्त नहीं हुई व अद्यतन भी चल रही है।

सम्पर्कः विभागाध्यक्ष, ललित कला एवं चित्रकला संकाय
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
ई. मेलः johriritu@gmail.com

कला समय पत्रिका इन वेबसाइट पर उपलब्ध

https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए। **- संपादक**

कला लेख

कला का मनोविज्ञान

डॉ. मुक्ता मणि मिश्रा
समकालीन भारतीय चित्रकार एवं शिक्षाविद् हैं। इन्होंने राज्य ललित कला संस्थान, जबलपुर से एम.एफ.ए. की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान में आप बरेली (उत्तर प्रदेश) में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।
डॉ. मिश्रा की एकल प्रदर्शनियाँ हीरा लाल कला दीर्घा, जबलपुर में "प्रयास" (2000), राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ (2012), हीरा लाल कला दीर्घा, जबलपुर (2012) तथा युगवीणा, बरेली (2012) में आयोजित हो चुकी हैं। आपको 'अवनीन्द्र नाथ कला पुरस्कार' तथा ज्योति ललित कला अकादमी, बरेली द्वारा सम्मानित किया गया है। आपकी कृतियाँ इलाहाबाद संग्रहालय के संकलन में सुरक्षित हैं तथा आप अनेक समूह प्रदर्शनों में सक्रिय सहभागिता करती रही हैं।

कला के द्वारा कलाकार के मन से एकत्व स्थापित करके दूसरे लोग भी उसी प्रकार आवेगात्मक मनोभावं से मुक्त हो सकते है, जिस प्रकार स्वयं कलाकार उनसे मुक्त होता है। वें कलाकार के समान इन' चित्रों के दर्शन और उनके भावों की अनुभूतियों से अपने मानसिक अंतर्द्वंद को समझकर मानसिक स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से हमें कला का एक. "चिकित्सीय रूप" भी है यह पता चलता है। इसमें जो तादात्म मिला देने या एकत्व (Ampathy) की बात करी गई है वो बहुत कुछ 'रेकी चिकित्सा' के समीपवर्ती प्रणाली जैसी लगती है।

विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों का लक्ष्य मानसिक विकास है, मानसिक विकास दो तरह का होता हैं। एक तो मनुष्य ज्ञान प्रात करना ही अपना लक्ष्य बना सकता है और दूसरा प्राप्त ज्ञान के द्वारा कार्य करता है। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार दोनों में से किसी एक की ओर झुकता है। दार्शनिक का ज्ञान कोरे ज्ञान की कोटि में आता है, परन्तु वैज्ञानिक तथा कलाकार का ज्ञान उपयोगी ज्ञान होता है| दार्शनिक केवल जिज्ञासु की भांति ज्ञान का उपार्जन किया जाता है। उसको इसी में आनन्द आता है, अर्थात उसका ज्ञान अन्तर्मुखी हो जाता वह परन्तु वैज्ञानिक और कलाकार का ज्ञान: अन्तरमुखी नहीं होने पाता और अगर हो जाये तो वह वैज्ञानिक निर्माण या कला की रचना कर ही नहीं सकता। वह ज्ञान को भीतर नहीं खोजता बल्कि प्रकृति में खोजा है साधारण प्रगतिशील मनुष्य के लिये यह दूसरे प्रकार का मानसिक विकास अधिक हितकर है।

कार्य दो प्रकार के होते हैं- एक तो स्वाभाविक कार्य और दूसरा मानसिक। स्वाभाविक कार्य में कला नहीं आती। स्वाभाविक कार्य में मनुष्य को बुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसे रोना, चिल्लाना, हँसना, हाथ पैर हिलाना इत्यादि। परन्तु कला के कार्य में बुद्धि का प्रयोग होता है। जब हम कोई वस्तु बनाना चाहते हैं तभी हमें बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है बिना बुद्धि के रचना का कार्य हो ही नहीं सकता। इसलिये हम कह सकते हैं कि रचना का कार्य बौद्धिक है। कला सर्वप्रथम मानसिक है या कला एक मानसिक गुण है। कला और मनोविज्ञान जैसी इस गूड़ विमर्श की विवेचना प्रो० शुक्ल अत्यन्त सरल साफ शब्दों में करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क का विकास तीन दिशाओं में होता है -

1- दर्शन का आधार, विचार तथा कल्पना है। 2- विज्ञान तथा मनोविज्ञान का आधार, अनुभव का प्रयोग है। 3- कला इन दोनों को आधार मानकर उनके ऊपर कार्य करती है, रचना करती है जिसका आधार रचनात्मक बुद्धि है।

इस प्रकार कला का कार्य करके मनुष्य सभी दिशाओं में अपने मस्तिष्क का विकास कर सकता है।

अभिव्यक्ति का मूल सिद्धान्त, जिसके जनक कान्डस्की थे, ये सिद्धान्त वास्तव में सार्वभौमिक उपयोग का है ये भी मानव मनोविज्ञान से ही सम्बन्धित है न कि किसी जाति विशेष से - The work of art, Kandinsky says, is the out word expression of an inner need.

जिस प्रकार समाज कलाकार के चित्र की अवहेलना नहीं कर सकता, उसी प्रकार कलाकार समाज की रुचि की अवहेलना नहीं कर सकता। कला का कार्य अभिव्यक्ति है और उसका भी उपयोग है, इसलिये जिनके लिये इसका उपयोग है उनकी मनोवृत्ति और रुचि को समझना भी कलाकार के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्ति की रुचि का इतना महत्व है कि इसी से उसका व्यवहार तथा आचरण बदल जाता है या एक भिन्न प्रकार का हो जाता है। पर इस रुचि का आधार क्या है यही एक विचारणीय प्रश्न है।

जिस प्रकार पिघले मोम को साँचे में डालने से मोम का एक दूसरा रूप बन जाता है, उसी प्रकार जीव समाज के वातावरण में पलकर उसी के अनुसार ढलने लग जाता है अर्थात मनुष्य के जीवन में उसका वातावरण बहुत ही

असर रखता है। जैसा वातावरण मिलता है वैसी ही प्रकृति या रुचि मनुष्य की बन जाती है। अर्थात जैसा सम्पर्क मनुष्य को मिलता है वैसी ही उसकी रुचि बनती जाती है। इसी प्रकार रुचि की प्रतिक्रिया कला के बारे में भी प्रत्येक व्यक्ति की बनती है।

चित्र की भाषा का भली भांति अध्ययन करके हम अपने अनुभवों को चित्र द्वारा समाज के सम्मुख रख सकते हैं। मान लीजिए एक मनुष्य समाज द्वारा सताया गया है, तो समाज के प्रति जो उसकी कटु भावनायें हैं उन्हीं को वह अपने चित्र में स्थान देगा। इसी प्रकार चित्रकार भी अपना जो अनुभव या अपनी जो भावना समाज के सामने रखता है उसका उत्तरदायित्व समाज पर है और इसलिए समाज को उसका अनुभव स्वीकार करना होता है। व्यक्ति समाज की देन है, वह समाज का एक अंग है और वह जो कुछ भी करता है उसका उत्तरदायित्व समाज पर है। आधुनिक चित्रकार जो कुछ भी कर रहा है, जैसे भी चित्र बना रहा है उसका कारण समाज है, फिर समाज उसकी कला को स्वीकार क्यों नहीं करता? पर नहीं समाज उसे अंगीकार करने से मुँह मोड़ता है अर्थात समाज को स्वयं अपने से ही घृणा है। यह है आधुनिक समाज की स्थिति। इस प्रकार तो धीरे-धीरे समाज क्षीण हो जायेगा।

परन्तु नहीं, व्यक्ति और उसकी कला का ध्येय समाज में तथा व्यक्ति में सामंजस्य लाना है यदि इसमें वो सफल होता है तो समाज को आगे बढ़ना ही होगा और यही होता है। व्यक्ति अपने में इतनी शक्ति संग्रह करता है कि वह समाज को अकेले खींच ले जाता है। ऐसा ही पुरुष महा पुरुष कहलाता है इस प्रकार कला और कलाकार का यह भी धर्म है कि वह समाज को अपनी शक्ति से प्रगति की ओर खींचे, समाज को घृणित तथा कुरूप होने से बचाये।

चित्रकला की सीमा धीरे-धीरे विस्तृत होती जा रही है। दृश्य चित्रण, कथाचित्रण, रूप चित्रण के पश्चात्य आधुनिक कला अब आकार चित्रण की ओर अग्रसर हो रही है। यही आधुनिक कला की सबसे बड़ी विशेषता है जो विचारणीय है।

अभी तक भाव चित्रण ही कला में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। कला के द्वारा विभिन्न भावों और रसों को उत्पन्न करना ही कलाकार का मुख्य प्रयोजन समझा जाता रहा है। कुछ हद तक आज भी यह प्रवृत्ति मान्य है- विशेष रूप से साहित्य में। साहित्यकार का इस भाव चित्रण से आगे बढ़ना कुछ कठिन सा है क्योंकि साहित्य का माध्यम शब्द है जो बिना भाव या अर्थ के प्रयुक्त होता ही नहीं.........। साहित्य में वर्षा कहते ही अर्थ, भाव और इसकी उत्पत्ति होने लगती है, पर इस प्रकार की दक्षता चित्रकला में नहीं है।

यूनीवर्सल हारमनी का यह भाव साहित्य में विद्यमान है, पर चित्रकला और संगीत में इसका जो स्थान है वह साहित्य में शायद नहीं और तब तक नहीं हो सकता जब तक सारी मानव जाति की एक ही भाषा और एक ही लिपि न हो जाए या प्रत्येक मनुष्य संसार भर की भाषा और लिपि न जानने लग जाए। इस दृष्टि से कला और संगीत की क्षमता साहित्य या कविता से कहीं अधिक है।

भाव जो वस्तु है, वह हमारी मानस क्रिया का परिणाम है किसी चिंतन, किसी धारणा को भी हम भाव कह सकते हैं। भाव के सहज धर्म दो है या तो वह हमारे मन में उदित होकर बाह्य जगत पर आरोपित होता है या बाह्य जगत के सम्पर्क में आकर हमारे मन में भी उदित होता है।

आधुनिक चित्रकला में उपर्युक्त विचार भी काल्पनिक चित्रों की कोटि में आते हैं परन्तु आज इस विचार का एक परिमार्जित रूप काल्पनिक चित्रकला के नाम से सम्बोधित | किया जाता है। काल्पनिक चित्रों में केवल प्रकृति के रूपों का परिमार्जन ही नहीं होता बल्कि | कल्पना के आधार पर नये रूपों तथा वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।

विश्व विख्यात चित्रकार लियोनार्डो डॉ. विन्शी की चित्रकला में कुछ

ऐसे जानवरों, पशु-पक्षियों के चित्र अपनी कल्पना से बनाये गये हैं जो प्रकृति में भी नहीं मिलते। साहित्य के क्षेत्र में 'कल्पना' को काव्य का बोध पक्ष माना गया है। हिन्दी साहित्य जगत के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तीन प्रकार के रूप विधान माने हैं*:-

1- प्रत्यक्ष रूप विधान।

2- स्मृत रूप विधान।

3- कल्पित रूप विधान।

वे भावना को सृजन की दृष्टि से अधिक महत्व देते हुए, युगीन विचारधारा से प्रभावित होते हुए कहीं-कहीं भावना और कल्पना को पर्याय रूप में प्रयुक्त करते हुए भी लक्षित होते हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं, "साहित्य वाले इसी को भावना" कहते हैं और आजकल के लोग "कल्पना"। जिस प्रकार भक्ति के लिये ध्यान या 'उपासना' की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भावों के प्रवर्तन के लिये 'भावना' या 'कल्पना' की अपेक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त वर्णित तीन प्रकार के रूप विधानों में वे 'कल्पित रूप विधान' को पूर्णतः कल्पना का पर्याय मानते हैं क्योंकि "यह हृदय की प्रेरणा से प्रवृत्त तथा हृदय पर प्रभाव डालने वाला है, विभाव पक्ष के अन्तर्गत है तथा भाव व्यंजना के क्षेत्र में पूर्णतः स्वच्छन्द रहता है।" वे नूतन सृष्टि को इसी की कृति मानते हैं।

उपरोक्त व्याख्या के पश्चात् हम अपने प्रारम्भ के विषय को यहाँ समावेशित करेंगे, जहाँ लियोनार्डो ने मात्र काल्पनिक पशु-पक्षियों का चित्रण किया प्राचीन भारतीय चित्रकारों ने भी नरसिंह, गणेश व और उसी प्रकार के अनेक नये रूपों (देवी, देवताओं अवतारों) की कल्पनायें की थीं जो प्रकृति में नहीं मिलते। परन्तु आधुनिक चित्रकार इतने से सन्तुष्ट नहीं होते, वे केवल नये रूप ही नहीं बनाते बल्कि इसी प्रकार के नये रूपों से अपने सम्पूर्ण चित्र का विलक्षण संयोजन करते हैं।

कल्पनाशील चित्रकार यह भी आवश्यक नहीं समझता कि जो रूप वह बनाये वह प्रकृति के विभिन्न रूपों का सम्मिश्रण हो जैसे नरसिंह या गणेश का रूप नरसिंह के रूप में सिर सिंह का शरीर मनुष्य का है, उसी प्रकार गणेश का सिर हाथी का शरीर मनुष्य का है। इस प्रकार के संयोजन में चित्रकार सृष्टि के वस्तुओं या रूपों का अपनी कल्पना के आधार पर सम्मिश्रण करता है परन्तु आधुनिक चित्रकार इतना ही नहीं करना चाहता प्रत्युत वह एक अभूतपूर्व जीव या वस्तु कल्पना के सहयोग से बनाना चाहता है। इस कार्य में सफल होने के लिए पहले चित्रकार को प्रकृति के रूपों के मूल को समझना पड़ता है, वह प्रकृति के रहस्य का भली भांति अध्ययन करता है और यह समझने का प्रयत्न करता है कि प्रकृति में रूप किस आधार पर बनते बिगड़ते हैं। उन्हीं सिद्धान्तों पर अपनी कल्पना से नये रूपों को एक नये वातावरण के साथ अपने चित्र में स्थान देता है। प्रकृति के रूप उसकी कला के अंग नहीं होते प्रत्युत उन्हीं के अध्ययन के आधार पर वह नवनिर्माण करता है।

सम्पर्क: 81/3 गोल्डन ग्रीन पार्क, पोस्ट रोहेलखण्ड, बरेली उप्र - 243001

मो. 9412899277

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ●आकर्षक गेटअप

●नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है- चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ- साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।

- भँवरलाल श्रीवास
निदेशक

आप स्वयं पधारे या सम्पर्क करें...

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कला लेख

भारतीय समसामयिक चाक्षुष कला की अंतर्दृष्टि: एक विश्लेषण

डॉ. रमेशचंद्र मीणा

डॉ. रमेश चंद मीणा समकालीन कला-जगत के सक्रिय अध्येता एवं चित्रकार हैं। आपने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर से उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपकी शोध-रुचि विशेष रूप से राजस्थानी लघुचित्रों और भारतीय सौंदर्यशास्त्र में रही है। आपने एम.फिल. में "जयपुर केंद्रीय संग्रहालय में संग्रहीत लघुचित्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन" तथा पीएच.डी. में "राजस्थानी शैली के लघु चित्रों में नवरस : एक सौंदर्यात्मक अध्ययन" विषय पर शोध कार्य किया।आपको विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली की जूनियर रिसर्च फेलोशिप एवं राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप प्राप्त हुई। वर्ष 2022 में शिक्षक रत्न सम्मान तथा 2023 में रविंद्रनाथ टैगोर कला सम्मान से सम्मानित किया गया। आपकी कला एवं शोध संबंधी रचनाएँ अनेक प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं और साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।वर्तमान में आप राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान) में सहायक आचार्य (चित्रकला) के पद पर कार्यरत हैं तथा राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों में सक्रिय सहभागिता निभा रहे हैं।

कला का सत्य देश, काल और वातावरण के उजास में अंतर्निहित होता है। कला केवल रूप, रंग और आकार का संयोजन नहीं है, बल्कि वह अपने समय की संवेदनाओं, अनुभवों और परिस्थितियों का सजीव प्रतिबिंब होती है। समकालीन कला से आशय उस कला से है जो वर्तमान समय में सृजित होती है अथवा वर्तमान समय की चेतना, जीवन-स्थितियों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को अभिव्यक्त करती है। जिस समय में कलाकार जीता है, उसी समय की अनुभूतियों, संघर्षों, आशाओं और यथार्थ को वह अपनी कला में रूपायित करता है। इस दृष्टि से समकालीन कला "आज की कला" है, जो वर्तमान के साथ संवाद स्थापित करती है।

यद्यपि कला का संबंध अपने समय से होता है, तथापि सच्ची कला शाश्वत और सार्वभौमिक होती है। वह देश और काल की सीमाओं से परे जाकर मानव की मूल संवेदनाओं को स्पर्श करती है। यही कला की अमरता का विधान है, जो 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के आदर्श को मूर्त रूप प्रदान करता है। सच्ची कला अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान में सृजित होती है और भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। इस प्रकार कला तीनों कालों-अतीत, वर्तमान और भविष्य-को एक साथ जीती है। जब कोई कलाकृति काल की सीमाओं से परे जाकर कालजयी बन जाती है, तब उसकी प्रासंगिकता हर युग में बनी रहती है। कलाकृति की यही वर्तमान प्रासंगिकता उसकी समसामयिकता का प्रमाण है।

कलाकृति: किशोर मीणा

दृश्य कला मानव सभ्यता की सृजनात्मक चेतना का वह मूर्त रूप है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी अनुभूतियों, विचारों, संवेदनाओं और अस्तित्वगत प्रश्नों को रूप, रंग, रेखा, आकार और संरचना के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यह केवल दृश्य आनंद का साधन नहीं, बल्कि मानव जीवन, समय और समाज के गहन सत्य का सौंदर्यपूर्ण रूपांतरण है। यह रूपंकर कला है। रूपंकर कला के केंद्र में कृति व अभिव्यक्ति की देह-भाषा हैं। कला अपने समय की साक्षी होती है, इसलिए प्रत्येक युग की कला उस युग की चेतना, उसके संघर्ष, उसकी आकांक्षाओं और उसकी सांस्कृतिक स्थितियों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। इसी संदर्भ में समसामयिक भारतीय दृश्य कला को समझना वस्तुतः वर्तमान भारतीय जीवन, उसकी बहुलता, उसकी जटिलताओं और उसके निरंतर परिवर्तित होते स्वरूप को समझना है।

समसामयिकता का अर्थ केवल वर्तमान समय में निर्मित कला तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक दृष्टि है—एक संवेदनात्मक और बौद्धिक स्थिति—जिसके माध्यम से कलाकार अपने समय के साथ संवाद स्थापित करता है। यह संवाद केवल बाह्य यथार्थ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें कलाकार की आंतरिक चेतना, उसके अनुभव, उसकी स्मृतियाँ और उसकी कल्पना भी सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार समसामयिक कला वर्तमान का दृश्य रूपांतरण होते हुए भी अतीत की विरासत और भविष्य की संभावनाओं से जुड़ी रहती है। कला तीनों कालों- अतीत, वर्तमान और भविष्य-को एक साथ जीती है। वह अतीत से प्रेरणा ग्रहण करती है, वर्तमान में सृजित होती है और भविष्य के लिए अर्थपूर्ण संकेत प्रदान करती है।

भारतीय संदर्भ में समसामयिक दृश्य कला का स्वरूप विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत की सांस्कृतिक परंपरा अत्यंत समृद्ध, बहुलतापूर्ण और दीर्घकालिक रही है। यहाँ कला केवल सौंदर्य का विषय नहीं रही, बल्कि वह जीवन, धर्म, दर्शन और

सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग रही है। भारतीय कला में 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' का आदर्श निहित रहा है, जिसमें सत्य, कल्याण और सौंदर्य का समन्वय होता है। यही कारण है कि भारतीय समसामयिक कला में भी सौंदर्य केवल दृश्य आकर्षण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह अनुभव, विचार और आध्यात्मिक चेतना के साथ जुड़ा हुआ होता है।

समकालीन भारतीय कला के क्षेत्र में अनेक अभिनव प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों का विस्तार विषय-वस्तु, आकृति-संयोजन, रंग-संयोजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों तक देखा जा सकता है। कलाकार अपने जीवन के अनुभवों, संवेदनाओं, स्वप्नों और विचारों को कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यह सृजन प्रक्रिया उसके लिए एक प्रकार की मानसिक और भावनात्मक यात्रा होती है, जिसमें वह आंतरिक संघर्ष और आत्मानुभूति से गुजरता है। सृजन कलाकार के लिए प्रसव-पीड़ा के समान है, जिसके उपरांत उसे आत्मिक संतोष और शांति की अनुभूति होती है। उसकी कलाकृतियाँ समाज में सौंदर्य और संवेदना का पसारती हैं।

भारतीय समसामयिक कला का विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसकी जड़ें औपनिवेशिक काल में निहित हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में जब भारतीय कलाकारों का संपर्क पाश्चात्य कला से हुआ, तब कला की अभिव्यक्ति में नए दृष्टिकोण और तकनीकों का प्रवेश हुआ। राजा रवि वर्मा इस संक्रमणकाल के महत्वपूर्ण कलाकार थे, जिन्होंने भारतीय विषयों और मिथकों को यूरोपीय यथार्थवादी शैली में चित्रित कर भारतीय कला को एक नया स्वर प्रदान किया। उनकी कला में परंपरा और आधुनिक तकनीक का समन्वय दिखाई देता है, जिसने भारतीय कला को आधुनिकता की ओर अग्रसर किया।

कलाकृति: चन्द्रशेखर सेन

इसके पश्चात बंगाल स्कूल का उदय हुआ, जिसने भारतीय कला में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका निभाई। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बोस और यामिनी राय जैसे कलाकारों ने भारतीय परंपराओं, लोक जीवन और आध्यात्मिक चेतना को अपनी कला में पुनर्स्थापित किया। उन्होंने पाश्चात्य यथार्थवाद के स्थान पर भारतीय शैलीगत संवेदनशीलता को महत्व दिया। बंगाल स्कूल ने भारतीय कला को राष्ट्रीय पहचान प्रदान की और यह सिद्ध किया कि आधुनिकता का अर्थ परंपरा से विच्छेद नहीं, बल्कि उसका पुनर्पाठ और पुनर्सृजन भी हो सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय कला में एक नई चेतना का उदय हुआ। यह वह समय था जब भारतीय समाज राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से एक नए स्वरूप का निर्माण कर रहा था। इसी काल में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप का गठन हुआ, जिसमें एफ. एन. सूज़ा, एम. एफ. हुसैन, सैयद हैदर रज़ा, के. एच. आरा, एस. के. बक्षी और अन्य कलाकार शामिल थे। इन कलाकारों ने भारतीय कला को परंपरागत सीमाओं से मुक्त कर आधुनिक और अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया। उन्होंने भारतीय जीवन, मिथकों और सामाजिक यथार्थ को आधुनिक दृश्य भाषा में अभिव्यक्त किया। इसी प्रकार कोलकाता ग्रुप, शिल्पी चक्र और ग्रुप 1890 जैसे कला-समूहों ने भी भारतीय समसामयिक कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

एम. एफ. हुसैन को भारतीय समकालीन कला का पिकासो कहा जाता है। उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति, पौराणिक कथाएँ और आधुनिक जीवन का अद्भुत संयोजन दिखाई देता है। उनकी रचनाएँ केवल दृश्य अनुभव नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद हैं।

तैयब मेहता की कृतियों में मानव की पीड़ा, संघर्ष और अस्तित्वगत संकट का गहन चित्रण मिलता है। उनकी प्रसिद्ध कृति "फॉलिंग फिगर" आधुनिक जीवन की असुरक्षा और तनाव को व्यक्त करती है। चित्रकार- अर्पणा कौर भारतीय समकालीन कला में महिला कलाकारों की कम सहभागिता पर चिंता व्यक्त करती है। नौकरानियाँ, विधवाएं, समय, अंब्रेला (छाता) ट्रैफिक सिग्नल इत्यादि चित्र श्रृंखलाओं में तत्कालीन समाज की विसंगतियों को कलाकृतियों में जीवंत किया हैं। "विषम-विषम रहे विषमाद् जिन देख्या, तिन आया स्वाद" इस भाव का। सृजन पर प्रभाव रहा। दो गज जमीन भी नही मिली? आपका प्रभावी संस्थापन है। आपकी चिता है- समकालीन भारतीय कला का खास वर्ग हैं, आज की कला को आम अवाम से जोड़ना दुष्कर हैं। रामकिंकर बैज भारतीय आधुनिक मूर्तिकला के अग्रदूत थे। उनकी मूर्तियों में श्रमिक जीवन, सामाजिक यथार्थ और मानव संघर्ष का जीवंत चित्रण मिलता है। उनकी कृति "संथाल फैमिली" भारतीय ग्रामीण जीवन की संवेदना को व्यक्त करती है। सतीश गुजराल की कला विभाजन की त्रासदी और मानव पीड़ा को अभिव्यक्त करती है। उनकी कृतियाँ इतिहास और व्यक्तिगत अनुभव का दृश्य दस्तावेज हैं। अनीश कपूर एक अंतरराष्ट्रीय स्तर के भारतीय मूर्तिकार हैं। उनकी कृति "क्लाउड गेट" रूप, स्थान और दर्शक के संबंध को पुनर्परिभाषित करती है। उनकी कला में शून्यता और अनंत का दार्शनिक भाव दिखाई देता है। सुबोध गुप्ता समकालीन भारतीय जीवन के प्रतीकों—जैसे स्टील के बर्तन—का उपयोग करके वैश्वीकरण और भारतीय पहचान के प्रश्नों को उठाते हैं। भारती खेर की कृतियों में स्त्री, पहचान और शरीर के प्रश्न प्रमुख हैं। वे बिंदी को एक प्रतीक के रूप में उपयोग करती हैं।

समसामयिक भारतीय कलाकार रामेश्वर बरूटा के अनुसार बिना विचार के कला संभव नहीं हैं।जिस समाज को अनुभव करता हूँ, वह चेतन-

अवचेतन में मौजूद रहा, जो कलाकृतियों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में साकार हुआ।....खैर मेरे भीतर समाज व देश को लेकर जो भावनाएं थी, न कहीं उस भाव का मूर्तिकरण हुआ है। आदमी, गोरिल्ला, चेहरा व संघर्षरत चित्र श्रृंखलाओं में वही भाव व्यक्त हुआ हैं। कला व बाजार के संबंधों को रेखांकित करते हुए आप मानते हैं कि गम्भीर कलाकार की बजाय दीर्घाओं व बाजारवाद के कारण आम कलाकार को खास रूप में मंड दिया जाता रहा हैं।

समसामयिक भारतीय दृश्य कला की एक प्रमुख विशेषता उसकी वैचारिकता और अंतर्दृष्टि है। कलाकार अब केवल दृश्य वस्तुओं का यथार्थ चित्रण नहीं करता, बल्कि वह उनके पीछे निहित अर्थ, अनुभव और भावनात्मक स्थितियों को अभिव्यक्त करता है। उदाहरणस्वरूप, सैयद हैदर रज़ा की "बिंदु" श्रृंखला केवल एक ज्यामितीय आकृति नहीं है, बल्कि वह भारतीय आध्यात्मिक चेतना, सृष्टि के मूल तत्व और ब्रह्मांडीय ऊर्जा का प्रतीक है। रज़ा की कला में "बिंदु" एक केंद्रीय प्रतीक के रूप में उभरता है। उनकी कला भारतीय दर्शन और आधुनिक अमूर्तन का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रख्यात छाप चित्रकार- युसुफ का मत है कि इस्लाम मे जीवन से संबंधित जीवंत सौंदर्यबोध को चित्रों में गूंथना हराम नही हैं। छापांकन में तकनीक व पोत के सहारें ही कलाकृतियों को सौंदर्य व विविधता प्रदान की जा सकती हैं।कला में अमूर्त के पक्ष में कहते है ज्यों ही हम वस्तु के परे देखते है एक नई दुनिया दृष्टिगत होती है। कला आत्म को विस्तार देने की सहज प्रक्रिया है।...देखो, रचना में रचनाकार को अपने समय से आगे चलना चाहिए। रही बात स्थानीयता की तो हमे उसकी जानकारी-ज्ञान अवश्य होना चाहिए। भारतवर्ष में कला-शिक्षा की खराब हालात के कारण कला विकास की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं। कला बाज़ार विशुद्ध व्यवसाय का प्रश्न है। यह कला मूल्यांकन का आधार नही हो सकता है। इसी प्रकार वी. एस. गायतोंडे की अमूर्त रचनाएँ मौन, ध्यान और आंतरिक शांति की अनुभूति कराती हैं। रामकुमार की चित्र संरचनाओं में आधुनिक मनुष्य की एकाकी स्थिति और अस्तित्वगत चिंता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। तैयब मेहता की कृतियों में आधुनिक जीवन की विडंबना, हिंसा और संघर्ष की तीव्र अभिव्यक्ति मिलती है।

समसामयिक भारतीय कला में सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कलाकार अपने समय के सामाजिक प्रश्नों, जैसे—पहचान, विस्थापन, वैश्वीकरण, पर्यावरण संकट, स्त्री चेतना और सामाजिक असमानता—को अपनी कला के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है। अर्पिता सिंह की चित्रकृतियों में स्त्री जीवन की संवेदनाएँ और स्मृतियाँ गहराई से अभिव्यक्त होती हैं। भारती खेर ने स्त्री शरीर, पहचान और सांस्कृतिक प्रतीकों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

सुबोध गुप्ता ने साधारण घरेलू वस्तुओं को कला का माध्यम बनाकर भारतीय मध्यमवर्गीय जीवन और वैश्विक संस्कृति के संबंध को उजागर किया है। इस प्रकार समसामयिक कला सामाजिक संवाद का एक सशक्त माध्यम बन गई है।

सोमनाथ होरे की "वूंड" श्रृंखला मानव पीड़ा और हिंसा का प्रतीकात्मक चित्रण है। उनकी कला मानव अस्तित्व की त्रासदी को व्यक्त करती है। रेखा रॉडविटिया की कृतियाँ स्त्री शक्ति और स्वतंत्रता का प्रतीक हैं। अर्पिता सिंह की कृतियाँ स्त्री जीवन की संवेदनाओं, स्मृतियों और अनुभवों को व्यक्त करती हैं। उनकी कला में स्त्री जीवन की आंतरिक दुनिया दिखाई देती है।

राबर्ट रोज़ेनबर्ग ने 1960 तथा 1970 के दशकों में अमेरिकी कला के बारे में जो कहा था, आश्चर्यजनक रूप से वह भारत के आज के कला-परिदृश्य पर भी लागू होता प्रतीत होता है—आज की कला केवल दिखाई नहीं जाती, बल्कि उसे प्रदर्शित किया जाता है और उसमें दर्शकों की भागीदारी अपेक्षित रहती है। 'एक्शन पेंटिंग' में दर्शकों का ध्यान कलाकार की सृजन-क्रिया की ओर आकर्षित रहता है। इस सक्रिय कला के साथ कलाकार एक अभिनेता के रूप में भी उपस्थित होता है। 'हैपनिंग्स' में चित्रकार तथा मूर्तिकार मंच-सामग्री का निर्माण करते हैं, दृश्यों का संयोजन करते हैं और प्रदर्शन प्रस्तुत करते हैं।

प्रदर्शन-प्रस्तुति तथा प्रयोग के लिए चित्रांकन की प्रवृत्ति, किसी आदर्श के अनुसार चित्र बनाने के बजाय, अधिक प्रचलित हो गई है। परंपरा में मान्य सभी सौंदर्यशास्त्रीय तत्त्व और मूल्य आज परिवर्तित हो रहे हैं, और दाय से प्राप्त कला-तत्त्वों का किस सीमा तक परिवर्तन होगा, यह प्रत्येक कलाकार की व्यक्तिगत दृष्टि पर निर्भर करता है।

समसामयिक भारतीय दृश्य कला की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रयोगधर्मिता है। कलाकार परंपरागत माध्यमों और तकनीकों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह नए माध्यमों और अभिव्यक्ति के नए रूपों का प्रयोग कर रहा है। पारंपरिक चित्रकला और मूर्तिकला के साथ-साथ इंस्टॉलेशन आर्ट, वीडियो आर्ट, डिजिटल आर्ट, परफॉर्मेंस आर्ट और मिश्रित माध्यमों का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है। इन माध्यमों ने कला की अभिव्यक्ति को अधिक व्यापक, बहुआयामी और सहभागी बना दिया है। अब कला केवल एक स्थिर वस्तु नहीं रही, बल्कि वह एक अनुभव बन गई है, जिसमें दर्शक भी सहभागी होता है।

हर सृजन में अमूर्तन है- बीरेश्वर भट्टाचार्य। आपके कला चिंतन में गतिशीलता हैं। सामाजिक विसंगतियाँ, राजनैतिक उठा-पटक, आतंकवाद आपके चित्र विषय रहे हैं। आपके सृजन में रंगों का प्रयोग रंगों के लिए रहा है। कला की विशुद्धता में बाज़ार अशुभ का सूचक हैं।

समसामयिक भारतीय कला में रूपांतरण और विरूपण भी एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्तिगत साधन बन गए हैं। कलाकार दृश्य यथार्थ को यथावत प्रस्तुत करने के स्थान पर उसे अपनी अनुभूति और विचार के अनुसार परिवर्तित करता है। इस प्रक्रिया में वस्तुएँ अपने मूल रूप से भिन्न होकर एक नए अर्थ और संवेदना को व्यक्त करती हैं। यह रूपांतरण कलाकार की आंतरिक चेतना और उसकी वैचारिक स्थिति का प्रतिबिंब होता है।

भारतीय समसामयिक कला की एक विशिष्ट विशेषता परंपरा और

आधुनिकता का समन्वय है। भारतीय कलाकार अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहते हुए आधुनिक तकनीकों और वैश्विक प्रवृत्तियों को अपनाता है। उसकी कला में लोक परंपरा, मिथक, प्रतीक और सांस्कृतिक स्मृतियाँ आधुनिक दृश्य भाषा के साथ समन्वित होकर एक नवीन सौंदर्यबोध का निर्माण करती हैं। यही समन्वय भारतीय समसामयिक कला को वैश्विक कला-परिदृश्य में विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। कैनवास एक मंच है और रंग चरित्र हैं- मनु पारेख। आपकी हेड चित्र श्रृंखला में दर्द है, त्रासदी है, वेदना है, दबी-कुचली एक आवाज भी हैं। बनारस श्रृंखला में इमारतों, सड़को,गलियों,सीढ़ियों, मंदिरों,नावों-घाटों की व्यथा में जन-जीवन स्पंदित होता हैं। आपकी कलाकृति में अंतराल (space) का काफ़ी महत्व है।जिनको चाँद, पेड़, चिड़िया, व गम्भीर तूलिका घात जैसे कलात्मक तत्व नया संदर्भ भरते हैं। स्थापना कला को नाट्य शिल्प- सौंदर्य से जोड़कर आप देखते हैं।

समसामयिक भारतीय कला का संबंध केवल सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज, जीवन और अस्तित्व के गहन प्रश्नों से जुड़ी हुई है। कलाकार अपने समय के अनुभवों को केवल चित्रित नहीं करता, बल्कि उन्हें समझने और व्याख्यायित करने का प्रयास करता है। उसकी कला एक प्रकार का दृश्य दर्शन बन जाती है, जो जीवन के गहन अर्थों को उद्घाटित करती है। रंगों-रेखाओं के माध्यम से सत्य की खोज में निमग्न है- भारतीय समकालीन कलाकार; गोगी सरोज पाल। सौंदर्य अमूर्त है। सत्य के विविध डाइमेंशन हैं। सत्यं शिवं सुंदरं को जानना कला का हेतु है। आपकी कला में समाज-समय की आवाज़ गूँजती है। कलाकार अगर ईमानदारी से समाज को जीता है तो सृजन का कच्चा माल इसी समाज से मिलता हैं।चित्रकृति में रंग को कितना तपाना है, कितना पकाना है व कितना हल्का रखना है यह सब भाव की मांग अनुसार बदलता रहता हैं। बाज़ार के कारण बहुत से कलाकारों को नाना माध्यमों में सृजन का प्रोत्साहन मिलता हैं।

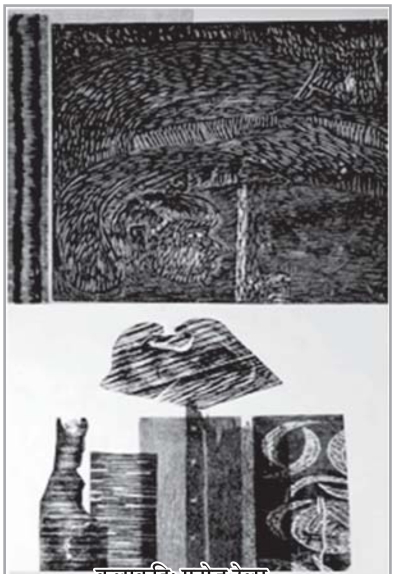
कलाकृति: मनोज टेलर

वर्तमान समय में कला का व्यावसायिक और संस्थागत स्वरूप भी विकसित हुआ है। कला दीर्घाएँ, संग्रहालय, कला मेले और अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियाँ भारतीय कला को वैश्विक मंच प्रदान कर रही हैं। इससे भारतीय कलाकारों को अंतरराष्ट्रीय पहचान और प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है। भारतीय समसामयिक कला अब केवल राष्ट्रीय स्तर तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह वैश्विक कला-संवाद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। वरिष्ठ चित्रकार, छापाकर, रेखाकार, संस्थापनकार, मूर्तिकार- वेद नायर कलाकार समाज का अंग होता है, और सामाजिक अनुभवों को उकेरता हैं।

समसामयिक भारतीय दृश्य कला की अंतर्दृष्टि उसकी संवेदनात्मक गहराई, वैचारिक व्यापकता और सृजनात्मक स्वतंत्रता में निहित है। यह कला केवल रूप और रंग का संयोजन नहीं, बल्कि मानव चेतना, समाज और समय का जीवंत दस्तावेज है। यह हमें अपने समय को देखने, समझने और अनुभव करने की नई दृष्टि प्रदान करती है। समसामयिक भारतीय कला परंपरा और आधुनिकता, अनुभव और प्रयोग, विचार और अभिव्यक्ति के मध्य एक सजीव सेतु के रूप में कार्य करती है। भारतीय समकालीन कला में लोक कला के कलात्मक तत्वों को घोलकर,

कला सौंदर्य का नया मुहावरा घड़ती हैं- माधवी पारेख। आपकी रचनाधर्मिता गाँव की यात्रा सा हैं। आपकी नजर में कला आंतरिक ऊर्जा है। आपकी कला में- कल्पवृक्ष कलाकृतियों का प्रिय विषय हैं। मोटी रेखाएं व सहज आकार विधान विशुद्ध कला सौंदर्य को सृजित करते हैं। ईसा मसीह, फूल का चेहरा आपके अन्य प्रमुख चित्र विषय हैं।

समसामयिक भारतीय दृश्य कला आज एक ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रही है, जहाँ परंपरा, प्रयोग और वैचारिक स्वतंत्रता के मध्य एक सजीव संवाद निरंतर विकसित हो रहा है। वर्तमान समय में चित्रांकन की प्रवृत्ति किसी निश्चित आदर्श या पूर्वनिर्धारित मानकों के अनुसार सीमित न रहकर, प्रदर्शन-प्रस्तुति और प्रयोगधर्मिता की ओर उन्मुख हो गई है। परंपरा से प्राप्त सौंदर्यशास्त्रीय तत्त्व और मूल्य अब स्थिर नहीं रहे, बल्कि वे कलाकार की व्यक्तिगत दृष्टि और संवेदना के अनुसार परिवर्तित हो रहे हैं। आज कला के क्षेत्र में कोई सार्वभौमिक निर्देशक-सिद्धांत नहीं है; प्रत्येक कलाकार अपनी अनुभूति, विचार और अभिव्यक्ति के आधार पर स्वयं अपनी शैली और संरचना का निर्माण कर रहा है। इस प्रकार समसामयिक कला व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सृजनात्मक स्वायत्तता की सशक्त अभिव्यक्ति बन गई है। वुडकट छापाकार श्याम शर्मा के अनुसार समाज के प्रभाव की मौलिक रूप में अभिव्यक्ति कला है। "आस-पास" छापा श्रृंखला इसका जीवंत प्रमाण हैं। आपका मत है कि- किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था का प्रभाव कला पर भी पड़ता है। आपने आम जन को कला से जोड़ने के लिए कला वार्ता, कला चर्चा, कला समीक्षा इत्यादि की आवश्यकता पर भी बल दिया। आपका कथन है कि शब्द में शब्द को अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं है। जबकि रंग को रंग द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता हैं।

वर्तमान भारतीय कलाकार केवल एक सर्जक ही नहीं, बल्कि एक प्रस्तुतकर्ता और संवादकर्ता भी है। उसकी कला अब केवल निजी अनुभूति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह प्रदर्शन, स्थापना (Installation) और बहुमाध्यमीय प्रयोगों के माध्यम से दर्शकों के साथ एक प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करती है। एम. एफ. हुसैन, विवान सुंदरम, गोगी सरोज पाल और रत्नावली कांत जैसे कलाकारों की स्थापना-प्रस्तुतियाँ इस प्रवृत्ति का सशक्त उदाहरण हैं, जहाँ कला एक स्थिर वस्तु न होकर एक 'घटना' के रूप में अनुभव की जाती

है। इस प्रकार समसामयिक कला में कलाकृति की पूर्णता से अधिक उसकी प्रक्रिया, उसका विचार और उसका प्रभाव महत्वपूर्ण हो गया है। विवान सुंदरम- समय, समाज व जीवन की कला के सृजनकार है।आपकी कला जनोन्मुखी है।आप कला सरोकार को सामाजिक-राजनैतिक उथल-पुथल से जोड़ते हैं। "प्लेस फ़ॉर पीपुल" चित्र श्रृंखला इसी भाव की हैं। संस्थापन कला में आपकी प्रयोगधर्मिता का सौंदर्य अभिनव हैं।

समकालीन कला की एक प्रमुख विशेषता उसकी बहुअर्थी और अपूर्ण संरचनात्मक प्रवृत्ति है। कलाकार अब कैनवास के रिक्त स्थानों, विरूपित आकृतियों, गहन धरातलों और रूपांतरण के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की नई संभावनाओं की खोज कर रहा है। विरूपण यहाँ केवल आकृति के विकृतिकरण का साधन नहीं, बल्कि अनुभूति की गहनता को व्यक्त करने का माध्यम है। यह रूपांतरण कलाकार की आंतरिक संवेदना और उसके दृष्टिकोण का दृश्य रूप है, जिसके माध्यम से वह बाह्य संसार को नए अर्थ प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में रूप, संतुलन, लय, अंतराल और संरचना जैसे विशुद्ध कला-तत्त्व भी भावाभिव्यक्ति के सशक्त साधन बन जाते हैं।

कलाकृति: जगदीश प्रसाद मीना

प्लेटो ने सौंदर्य को एक निरपेक्ष आदर्श माना, जबकि इमैनुएल कांट ने इसे अनुभूति और निर्णय की प्रक्रिया से संबंधित बताया। आधुनिक डिज़ाइन में लुईस सुलिवन का प्रसिद्ध सिद्धांत "Form follows function" इस बात पर बल देता है कि रूप का निर्धारण प्रयोजन से होना चाहिए। वहीं डिटर राम्स ने कहा—"Good design is as little design as possible", जो सादगी और उपयोगिता में निहित सौंदर्य की ओर संकेत करता है। भारतीय समकालीन कला में भी यह द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ कलाकार केवल दृश्य आकर्षण नहीं, बल्कि विचार, अनुभव और सामाजिक यथार्थ को भी महत्व देता है। भारतीय छापा कला के सक्रिय छापाकार के.आर.सुब्बन्ना रतिप्रिया (नायिका) के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं। प्राकृतिक सौंदर्यबोध को पोत के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकता हैं। रेखाएं कला उत्पत्ति का आधार है। आपकी कृतियों में रेखाएं नाचती हैं।

समसामयिक भारतीय कला का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका वैश्विक और स्थानीय प्रभावों के मध्य संतुलन स्थापित करना है। एक ओर कलाकार पश्चिमी कला प्रवृत्तियों और वैश्विक सौंदर्यबोध से प्रभावित है, वहीं दूसरी ओर वह अपनी सांस्कृतिक परंपरा और ऐतिहासिक चेतना से भी प्रेरणा ग्रहण करता है। यह द्वंद्व कभी-कभी कलाकार के भीतर असमंजस की स्थिति उत्पन्न करता है, किंतु यही स्थिति उसकी सृजनात्मकता को नई दिशा प्रदान करती है। परंपरा और आधुनिकता के मध्य यह तनाव समसामयिक भारतीय कला की विशिष्ट पहचान बन गया है। कला में विचार हावी नहीं होना चाहिए, क्योंकि सबसे पहले वह दृश्य कला हैं- अमिताव दास। कला के दृष्टा पक्ष को उकेरते हुए कहते है कि दर्शक को भी कला की तह में जाकर कृति को समझने की आवश्यकता है। देखना आना चाहिए। आपके सृजन का आधार प्रकृति है।

समकालीन कला का सत्य उसकी प्रयोगधर्मिता, वैचारिकता और स्वतंत्रता में निहित है। यह कला किसी निश्चित शैली या नियम से बंधी नहीं होती। यह निरंतर परिवर्तनशील है। समकालीन कलाकार अपने समय के प्रश्नों से संवाद करता है। वह केवल सुंदरता का सृजन नहीं करता, बल्कि सत्य का अनावरण करता है। चित्रकार सुरेंद्र नायर, अतुल डोडिया अपने सृजन में भारतीयता, राजनैतिक मूल्यों व पौराणिक मिथकों के साथ समसामयिक कला की नई भाषा को पुरज़ोर मौलिक सौंदर्यबोध से घड़ रहे हैं। सुदर्शन सेट्टी बाथ टब, कैंचियों व यांत्रिक मोटर के सहारे संस्थापन व प्रबीर गुप्ता के वृहदाकार संस्थापन, इस विधा में सृजन को नए आयाम देते हैं।आज कला का स्वरूप बहुआयामी हो गया है, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, कविता और अन्य कलाओं के मध्य की सीमाएँ धुंधली हो रही हैं। कला अब वस्तु-निरपेक्ष होकर संवेदना और अनुभूति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का माध्यम बनती जा रही है। अमूर्तता और प्रतीकात्मकता के माध्यम से कलाकार उन अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास करता है, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करना संभव नहीं होता। इस प्रकार कला बाह्य दृश्यता से अधिक आंतरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति बन गई है। अतुल भल्ला के शब्दों में सीमाओं का अतिक्रमण कर, समय-अवकाश-अनुभव-स्थल इत्यादि की एकनिष्ठ स्थिति में संस्थापन जन्म लेता है। स्थल विशेष संस्थापन में "अभी और यहाँ" का विचार विकसित होता है। एक कृति समय एवं अवकाश में अभिव्यक्त होती है। वहीं, शीला गौड़ "द्रोपदी" शीर्षक संस्थापन में लाल पैबंद से जुड़े सूती धागे के लंबे चुन्नट को टाँगकर विषय की प्रभावी अभिव्यक्ति करती है।

पश्चिम बंगाल के समसामयिक कलाकार सोमनाथ मैती की "संरचनाएं" विषयक कलाकृतियां सौंदर्यात्मक और कलात्मक दृष्टि से सरोबार है। कलाकृतियां,एक गहन कलात्मक अनुभव प्रदान करती हैं। शहरीकरण के गतिशील और बहुस्तरीय अनुभव को जीवंत रंगों, संरचनात्मक प्रतीकों, और अमूर्त रूपों के माध्यम से प्रस्तुत करती है। मैती की "संरचनाएं" प्रदर्शनी में प्रदर्शित कलाकृतियों में रचनावाद (Constructivism) गहराई से सन्निहित है। साथ ही, विश्लेषणात्मक घनवाद के प्रभाव से भी अछूती नहीं हैं। कलाकार ने रचनावाद के मूल सिद्धांतों—संरचना, कार्यात्मकता, और तर्कसंगतता—को शहरी जीवन की जटिलताओं के संदर्भ में व्यक्त किया है। सोमनाथ मैती की चित्रकृतियों के संरचनात्मक रूपाकारों(Shapes) में मुगलिया वास्तुकला के तत्वों का

समावेश, जैसे मेहराब और गुम्बदाकार संरचनाएं, शहरी परिदृश्यों में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर के प्रभाव को रेखांकित करती हैं। ये तत्व चित्रों में आधुनिक शहरीकरण के साथ एक रोचक कंट्रास्ट उत्पन्न करते हैं।

ये कलाकृतियाँ वस्तुनिरपेक्ष और व्यक्तिगत भावनाओं से सर्वथा मुक्त हैं। कलाकार सापेक्ष से निरपेक्ष व निरपेक्ष से सापेक्ष के मध्याधिन साधनारत है। कलाकृतियों में भावनाओं का संकुचन नहीं है। कलाकार ने भावनाओं से परे जाकर शुद्ध ज्यामितीय संरचनाओं और तर्कसंगतता के आधार पर सौंदर्य की खोज की है। इस दृष्टिकोण से, कला को एक बौद्धिक संरचनात्मक अनुभव में बदल दिया गया है, जो सरस दर्शकों को बरबस सोचने पर विवश करता है।

भारतीय समसामयिक चाक्षुष कला के व्यापक परिदृश्य में राजस्थान के युवा दृश्यकला-सृजेताओं की सृजनधर्मिता एक विशिष्ट ऊर्जा और वैचारिक विस्तार के साथ उभरती है। यह पीढ़ी परंपरा और आधुनिकता के मध्य संवाद स्थापित करते हुए निजी संवेदनाओं, सामाजिक सरोकारों तथा सांस्कृतिक स्मृतियों को नवीन दृश्य-भाषा में रूपायित कर रही है।

जगदीश प्रसाद मीणा की अर्द्ध-अमूर्त चित्रकृतियाँ साकार-निराकार के मध्य एक गतिशील संतुलन रचती हैं। प्रतीकात्मक आकृतियाँ, धुँधली छायाएँ और चिंतित चेहरे सामाजिक यथार्थ, हिंसा तथा मानवीय असुरक्षा के भावों को उद्घाटित करते हैं। उनकी प्रेम विषयज कृति "The Eternal Embrace" में उलझी आकृतियाँ, नीले रूपक और लाल पृष्ठभूमि प्रेम, देह और आध्यात्मिक एकत्व की जटिल संवेदनाओं को नाटकीय तीव्रता प्रदान करती हैं, जहाँ कलाकार की निजी शैली सुदृढ़ रूप से उभरती है।

चंद्रशेखर सेन के टेराकोटा शिल्प मरुस्थलीय लोकविश्वासों को समकालीन संवेदना में रूपांतरित करते हैं। "बीकानेर राजा" में कोदमदेसर भैरव से प्रेरित मुखाकृति सहज, लोकधर्मी और आत्मीय प्रतीत होती है, जबकि "मृत पत्ते" जीवन की क्षणभंगुरता तथा पुनर्जन्म के दार्शनिक बोध को मूर्त रूप देता है। सूक्ष्म पत्तीय बनावट, पकाई मिट्टी का मृदुल रंग और सामूहिक विन्यास अस्तित्व के चक्र तथा प्रकृति की नश्वरता पर शांत, चिंतनशील प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

राजस्थानी युवा छापाकार मनोज टेलर के वुडकट छापांकन रेखा, बनावट और संरचना की सघनता से मानवीय अंत:अनुभवों को व्यक्त करते हैं। तीक्ष्ण कटावों से निर्मित लयात्मक रेखाजाल स्मृति, एकाकीपन और संबंधों की सूक्ष्म मनोव्यंजना को उद्घाटित करता है। सीमित रंगों का नाटकीय प्रयोग पारंपरिक तकनीक को समकालीन जीवनानुभवों से जोड़ते हुए एक विशिष्ट दृश्यात्मक भाषा रचता है।

किशोर मीणा की चित्रकृति "Reflection of Nature" में लाल रंग का व्यापक विस्तार प्रकृति की ऊर्जा और अंत:स्पंदन का प्रतीक बनता है। अमूर्त तानों, गहन छायाओं तथा ज्यामितीय संकेतों का संयोजन दृश्य में रहस्य और गति का भाव उत्पन्न करता है। साथ ही उनके व्यंग्यात्मक प्रयोग समकालीन कला को सामाजिक आलोचना और जनसरोकारों से जोड़ते हैं।

युवा चित्रकार अमित हरित के चित्र स्वप्न, स्मृति और प्रकृति के आत्मीय संसार का सौम्य रूप प्रस्तुत करते हैं। पीताभ पृष्ठभूमि पर जैविक आकृतियाँ, वृक्ष और सूक्ष्म प्रतीक एक कल्पनात्मक कथा का निर्माण करते हैं, जहाँ रंगों की कोमलता और संरचना की मुक्त प्रवाहशीलता दर्शक को रहस्य, बालसुलभ जिज्ञासा तथा प्रकृति के साथ आत्मीय संवाद की अनुभूति कराती है।

इस प्रकार राजस्थान के ये युवा कलाकार विविध माध्यमों-चित्रकला, मृण्शिल्प और छापांकन के माध्यम से समकालीन भारतीय दृश्यकला में सशक्त हस्तक्षेप करते हुए परंपरा, लोकस्मृति और आधुनिक जीवनानुभवों के बीच एक जीवंत, बहुआयामी कलात्मक विमर्श का सृजन कर रहे हैं।

आज के वैश्वीकरण के दौर में भारतीय समसामयिक चाक्षुष कला कला माध्यम-तकनीक, सौंदर्यबोध, सृजन नवाचार, नव रूप-विरूपण एवं बाजार तंत्र इत्यादि के अपने निजी मसले हैं। हम कला में एक साथ ही स्थानीय भी है तो वैश्विक भी। आज, कला समीक्षक व प्रदर्शनी अधिकारी कैसे कलाकार को गढ़ रहे हैं, यह किसी से अछूता नही हैं। कलाकार का अपनी कला भाषा- पहचान के लिए संघर्षरत है। यह विमर्ष का समय है, मंथन का समय है। अब देखना यह है कि इस मंथन में अमृत किसके हिस्से आता है एवं हलाहल किसके हिस्से आता है। यह समीचीन है कि भारतीय समसामयिक कला चिंतन, मंथन की प्रक्रियाधीन है। निकष तक पहुँचने तक भारतीय समसामयिक कला- सौंदर्य विमर्श के गड-मड अस्तित्व को स्वीकारने के अलावा, कोई चारा फ़िलहाल नहीं बचता हैं। यह एक त्रासद पहलू है। आज सृष्टा-दृष्टा (कलाकार-सहृदय) को कृति के सेतु से जोड़ने की आवश्यकता पर बल देना समय की मांग भी और अनिवार्यता भी।निष्कर्षतः, समसामयिक भारतीय दृश्य कला एक सतत विकसित होने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया है, जो मानव की रचनात्मक प्रतिभा, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है। यह कला केवल सौंदर्य का सृजन नहीं करती, बल्कि वह जीवन के गहन सत्य को उद्घाटित करती है। यह हमें अपने अस्तित्व, अपने समय और अपने समाज के साथ एक नए संवाद की ओर प्रेरित करती है।

समसामयिक भारतीय कला की अंतर्दृष्टि उसकी प्रयोगधर्मिता, वैचारिक स्वतंत्रता और संवेदनात्मक गहनता में निहित है। यह कला परंपरा और आधुनिकता, रूप और अमूर्तता, तथा स्थानीय और वैश्विक चेतना के मध्य एक सृजनात्मक सेतु का निर्माण करती है। समसामयिक भारतीय कलाकार अपने समय, समाज और सांस्कृतिक विरासत के साथ संवाद स्थापित करते हुए कला को एक जीवंत, गतिशील और अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में विकसित कर रहा है। यही समसामयिक भारतीय कला की वास्तविक सार्थकता और उसकी सृजनात्मक अंतर्दृष्टि है।

संपर्क : 355, थानेदार होस्टल के पास (कृष्णा पार्क) कृष्णा नगर,
भरतपुर - 321001
मो.न.- 9816083135

■

अभाव से अभिव्यक्ति तक : मोहम्मद मोईन के चित्रों में पहाड़ों की संवेदना

डॉ. राजकुमार पांडेय

कला इतिहासकार, लेखक एवं शिक्षाविद् हैं। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से कला इतिहास में पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की, जिसका शोध-विषय "निज़ामाबाद की काली मृद्भांड परंपरा का कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन" रहा। यूजीसी-नेट उत्तीर्ण डॉ. पांडेय वर्तमान में देवभूमि उत्तराखंड विश्वविद्यालय, देहरादून के ललित कला विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। इनके शोध-पत्र राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत हुए हैं तथा शोध-जर्नलों, पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों में अनेक लेख प्रकाशित हैं। इनकी पुस्तक "Understanding of Visual Arts: Theory and Practice" (2024) तथा "छापा कला" सह-लेखन उल्लेखनीय हैं। भारतीय लोक एवं पारंपरिक कला, विशेषकर निज़ामाबाद की काली मृद्भांड कला, मधुबनी, मंडला, वारली, चिकनकारी आदि विषयों पर इनका विशिष्ट अध्ययन और लेखन रहा है। इन्होंने "Black Pottery of Nizamabad" शीर्षक से एक वृत्तचित्र का निर्माण भी किया है।

किसी विद्वान ने कहा है कि कलाकार कोई अलग या विशेष प्रकार का व्यक्ति नहीं होता, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर एक विशिष्ट कलाकार को समेटे होता है। यह कथन देहरादून के एक सिद्धहस्त कलाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व में पूर्णतः चरितार्थ होता है। वह न केवल अपनी निरंतर कला-साधना के लिए जाने जाते हैं, बल्कि उनके सरल व्यवहार, चेहरे पर सदैव खिली मुस्कान और सहयोग की भावना उन्हें कला जगत में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। उनका व्यक्तित्व मानवीय संवेदनाओं और रचनात्मक ऊर्जा का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है। इसी मानवीय संवेदनाओं और रचनात्मक के बीच स्थित देवो की भूमि उत्तराखंड अपने नैसर्गिक सौंदर्य, रमणीय प्राकृतिक दृश्यों तथा ऐतिहासिक और धार्मिक विरासत के लिए विश्वविख्यात है। इसी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिवेश में पले-बढ़े कलाकार उत्तराखंड की कलाकृतियाँ एक गहन आत्मिक, आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी चित्रकला केवल दृश्यात्मक सौंदर्य तक सीमित नहीं रहती, बल्कि दर्शक को चिंतन और अनुभूति के गहरे स्तर तक ले जाती है। इनकी की प्रत्येक कृति मात्र एक चित्र नहीं होती, बल्कि वह एक कलाकार की सतत साधना, मुक्त विचारों और कठोर परिश्रम का सजीव परिणाम होती है। उनकी कला में प्रकृति, इतिहास और आध्यात्मिक चेतना का ऐसा समन्वय दिखाई देता है जो उत्तराखंड की आत्मा को प्रतिबिंबित करता है। इनकी कला-सृजन न केवल उनकी रचनात्मक क्षमता को दर्शाता है, बल्कि उनके सरल, सहज और विनम्र व्यक्तित्व को भी स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है।

हम चर्चा कर रहे हैं यथार्थ चित्रण के सिद्धहस्त कलाकार मोहम्मद मोइन की कला-यात्रा अभाव से प्रभाव तक की एक प्रेरक कथा है। जीवन में अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ आईं जब उन्हें कला से विमुख होकर जीविकोपार्जन के लिए अन्य कार्यों की ओर जाना पड़ा, किंतु कला के प्रति उनका समर्पण और आंतरिक लगाव कभी समाप्त नहीं हुआ। संघर्ष, सीमित संसाधन और आर्थिक दबाव उनके सृजनात्मक संकल्प को डिगा नहीं सके।मोहम्मद मोइन के लिए कला केवल आजीविका नहीं, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति और जीवन-सत्य से संवाद का माध्यम रही है। उनकी कृतियों में यथार्थ का सजीव चित्रण, मानवीय संवेदनाएँ और सामाजिक अनुभव गहराई से व्यक्त होते हैं। अभाव की परिस्थितियाँ उनकी कला को रोकने के बजाय उसे अधिक संवेदनशील और प्रभावशाली बनाती हैं। यही कारण है कि उनकी रचनात्मक यात्रा संघर्ष से होकर गुजरते हुए प्रभाव की ऊँचाइयों तक पहुँचती है और दर्शकों को गहरे स्तर पर प्रभावित करती है।

कला आलोचक डॉ. राजकुमार पांडेय से कलाकार मोहम्मद मोइन के साक्षात्कार के दौरान उन्होंने बताया कि कला उनके लिए केवल रंगों और कैनवास का संयोजन नहीं है, बल्कि आत्म-अनुभूति और जीवन-दर्शन का माध्यम है। उनका मानना है कि कलाकार की सच्ची साधना तभी पूर्ण होती है, जब वह अपने परिवेश, प्रकृति और समाज से गहरे स्तर पर जुड़कर सृजन करता है। उत्तराखंड की पर्वतीय भौगोलिक संरचना, शांत घाटियाँ, आध्यात्मिक ऊर्जा और लोक-संस्कृति उनकी कला को निरंतर प्रेरणा प्रदान करती हैं। स्वयं अपना परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि मेरा जन्म सन 1986 में उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में हुआ। मेरी कला-यात्रा की शुरुआत मेरे बड़े भाई रफीक अहमद के माध्यम से हुई। उनके मित्र अजय कुमार जी एक उत्कृष्ट चित्रकार होने के साथ-साथ एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे। उनके कला और संगीत के प्रति समर्पण को देखकर मैं अत्यंत प्रभावित हुआ और यहीं से मेरे भीतर कला के प्रति रुचि जागृत हुई। अजय कुमार जी के मार्गदर्शन में ही मुझे देहरादून के जाने-माने चित्रकार ध्रुव रत्न एवं स्वर्गीय देवी सिंह जी के पास जाकर कला सीखने की प्रेरणा मिली। इसके पश्चात् चकराता रोड, देहरादून स्थित रूपरेखा आर्ट स्कूल में गुरु स्वर्गीय उमेश शर्मा जी के

सान्निध्य में मैंने औपचारिक रूप से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की। निरंतर अभ्यास, अध्ययन और अनुभव के साथ मेरी कला-यात्रा आगे बढ़ती रही। चित्रलेखा आर्ट स्कूल से शिक्षा प्राप्त करने के बाद मेरे पिताजी ने लगभग 23–24 वर्ष की आयु में मेरा विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् जीवन की जिम्मेदारियाँ अचानक मेरे कंधों पर आ गई। जब तक मैं पिताजी के सान्निध्य में रहकर काम सीख रहा था, तब तक जीवन-यापन के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी; सीमित संसाधनों में भी काम चल जाता था। किंतु विवाह के बाद यह स्पष्ट हो गया कि अब परिवार की जिम्मेदारियों के लिए स्थायी और पर्याप्त रोजगार आवश्यक है। इसी सोच के साथ मैं रोजगार की तलाश में आगे बढ़ा। परंतु उस समय कला के क्षेत्र में आधुनिकता और तकनीक का प्रभाव तेज़ी से बढ़ रहा था। डिजिटल कैमरों और मशीनों से प्रिंटिंग का चलन बढ़ने लगा, जिसके कारण पेंटिंग से जुड़ा पारंपरिक और व्यावसायिक कार्य धीरे-धीरे कम होता चला गया। यह स्थिति मेरे लिए आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण थी। इन परिस्थितियों को देखते हुए मेरे मन में विचार आया कि क्यों न मैं किसी स्कूल में बच्चों को कला सिखाने लगूँ। इससे मुझे सम्मानजनक रोजगार भी मिल सकता था और कला से भी जुड़ा रह सकता था। मैं विभिन्न स्कूलों में गया और अपनी बात रखी कि मुझे कला का अच्छा ज्ञान है, मैंने विधिवत कला सीखी है। मैंने यह भी कहा कि आप चाहें तो मेरा डेमो ले सकते हैं—चाहे लैंडस्केप हो, पोर्ट्रेट हो या बच्चों को पढ़ाने की शैली। परंतु स्कूल प्रबंधन का उत्तर यही था कि केवल कलाकार होना पर्याप्त नहीं है, यह बताना होगा कि आप कहाँ से प्रमाणित हैं, आपके पास कोई डिग्री, डिप्लोमा या सर्टिफिकेट है या नहीं। दुर्भाग्यवश, आठवीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देने के कारण मेरे पास कोई औपचारिक प्रमाण-पत्र नहीं था। इस स्थिति में मन में निराशा भी आई। एक समय ऐसा भी लगा कि शायद यह क्षेत्र छोड़कर कोई और काम करना पड़े। मेरा एक मित्र एसी और फ्रिज रिपेयरिंग का काम करता था। उसके साथ मैंने कुछ दिन काम भी किया पर मन वहाँ नहीं लगा। मेरा मन तो चित्रकला में ही रमता था। जब मैंने उससे पूछा कि इस काम में दक्ष होने में कितना समय लगेगा, तो उसने कहा लगभग छः–सात साल। तभी मेरे मन में विचार आया कि यदि उतना समय देना ही है, तो क्यों न मैं फिर से पढ़ाई शुरू करूँ। यहीं से मेरे जीवन ने नया मोड़ लिया। मैंने आठवीं के बाद पुनः दसवीं, फिर बारहवीं, उसके बाद डीएवी कॉलेज, देहरादून से बीए, फिर एमए और बीएड की शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार संघर्ष, संकल्प और निरंतर परिश्रम के साथ मेरी कला-यात्रा आगे बढ़ती रही। मेरे जीवन का अब यही संकल्प है—जब तक जीवन है, तब तक सीखते रहना है, संघर्ष करते रहना है और अपनी कला के प्रति सच्चे रहना है।

मेरे जो गुरुजन रहे—देवी सिंह जी और उमेश शर्मा जी, एम एस कुमार, अब्दुल खालिक—उनके निर्देशन में मैंने जो कला सीखी, उसका बड़ा हिस्सा उस समय कॉमर्शियल कार्य से जुड़ा हुआ था। कॉमर्शियल कार्य से मेरा आशय है—पोर्ट्रेट, इच्छानुसार बनवाए गए लैंडस्केप, मिनिएचर पेंटिंग्स तथा वॉटरकलर आदि। उस दौर में हमें हर प्रकार का कार्य करना पड़ता था और हमने पूरे मनोयोग से किया भी। यह कार्य न केवल आजीविका का साधन था, बल्कि तकनीकी दक्षता और अभ्यास का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम था,

लेकिन इन सबके बीच मेरे मन के किसी कोने में उत्तराखंड का प्राकृतिक सौंदर्य और यहाँ की धार्मिक परंपराएँ व रीति-रिवाज बार-बार मुझे अपनी ओर आकर्षित करते रहते थे। चाहे कितना भी व्यावसायिक काम क्यों न कर रहा होऊँ, भीतर ही भीतर यह भावना चलती रहती थी कि हो न हो, मुझे यह सब जरूर पेंट करना है—इन पहाड़ों की आत्मा को इनके देवस्थलों को, इनके जीवन को।

आज मैं एक कलाकार के रूप में उत्तराखंड के प्राकृतिक सौंदर्य और यहाँ के जनजीवन को अपने चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा हूँ। चूँकि मैं मूल रूप से उत्तराखंड का निवासी हूँ, इसलिए इस भूमि से मेरा गहरा भावनात्मक जुड़ाव है। मैंने उत्तराखंड के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण किया है, वहाँ के पहाड़, नदियाँ, वन, गाँव और लोगों का दैनिक जीवन बहुत निकट से देखा है। इन्हीं अनुभवों ने मेरे भीतर यह विचार उत्पन्न किया कि क्यों न मैं अपने चित्रों के माध्यम से उत्तराखंड की प्रकृति और यहाँ के जीवन को संसार के सामने प्रस्तुत करूँ।

इसी भाव के साथ कॉमर्शियल काम के बीच-बीच मैंने अपने लिए समय निकालकर स्वतंत्र चित्रण करना शुरू किया। इसी क्रम में मैंने मानसू देवता पर आधारित एक चित्र बनाया, जो प्राकृतिक सौंदर्य से घिरे उस क्षेत्र के अलौकिक वातावरण को दर्शाता है। वहाँ जाकर जो दिव्य अनुभूति होती है, उसे कैनवास पर उतारने का प्रयास मैंने पूरे मन से किया। इसके अतिरिक्त मैंने पंचचुली पर्वत श्रृंखला पर भी कार्य किया—उत्तराखंड की पाँच चोटियों वाला वह पर्वत, जिस पर लगभग बारहों मास बर्फ जमी रहती है। पंचचुली के आसपास के गाँवों का जीवन, वहाँ की प्रकृति और वातावरण भी मेरे चित्रों का विषय बना। साथ ही पहाड़ की महिलाओं के पारंपरिक परिधान, उनका पहनावा-ओढ़ावा और जीवनशैली भी मैंने अपनी पेंटिंग्स में स्थान दिया। किसी न किसी रूप में मैं निरंतर इस दिशा में कार्य करता रहा हूँ और आगे भी करता रहना चाहता हूँ। हज़ारों पेंटिंग्स बनाने के बाद भी आज तक मुझे वह पूर्ण

संतुष्टि नहीं मिली है, जिसकी तलाश मेरे भीतर है। शायद यही एक कलाकार की असली बेचैनी होती है। ईश्वर ने चाहा तो किसी न किसी माध्यम से, किसी न किसी रूप में मैं अपने इस अधूरे स्वप्न को अवश्य पूर्ण करूँगा। मेरे लिए ये सभी पेंटिंग्स केवल चित्र नहीं हैं, बल्कि मेरी कला-साधना हैं। इस साधना के माध्यम से मैं उत्तराखंड की कला, संस्कृति, परंपरा और विरासत को निरंतर चित्रित करता रहना चाहता हूँ। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर को कैसे संजोया जाए और उसे आगामी पीढ़ियों तक स्थानांतरित किया जाए—यह एक कलाकार के रूप में मेरा सामाजिक दायित्व भी है।

अपने कला-यात्रा मैंने कई पेंटिंग्स का निर्माण किया है, जो आज दिल्ली, गुजरात, बड़ौदा, अहमदाबाद, मुंबई, जम्मू सहित देश के विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं। अनेक धनाढ्य और कुलीन वर्ग के लोगों ने मुझसे कार्य करवाया और मैंने पूरे समर्पण के साथ वह कार्य किया। फिर भी सच यही है कि उत्तराखंड का प्राकृतिक सौंदर्य और इसकी कला-संस्कृति मुझे हमेशा अपनी ओर खींचती रही है—और आगे भी खींचती रहेगी। यही मेरी प्रेरणा है, यही मेरी पहचान और यही मेरी कला-यात्रा का मूल उद्देश्य है। इस देवभूमि की आत्मा, उसकी सरलता, संघर्ष और सौंदर्य की अभिव्यक्ति हैं। मेरा उद्देश्य यही है कि मेरी कला के माध्यम से उत्तराखंड की पहचान और संवेदनाएँ दूर-दूर तक पहुँचे। आगे हम चर्चा करते हैं इनके कृतियों पर जिन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य को अपने कोरे कैनवास पर रंग और कूची के माध्यम से भी घेरा है। कुछ प्रमुख कलाकृतियां हैं, जिनका क्रमवार विश्लेषण करना नितांत आवश्यक है जो उत्तराखंड के कला और संस्कृति को परिभाषित ही नहीं करेगी बल्कि मानवीय संवेदना को भी प्रलक्षित करेगी।

उत्तराखंड की लोक संस्कृति

यह ऑयल पेंटिंग (माध्यम: ऑयल, आकार: 36 × 53) मानवीय संवेदना, स्मृति और सामूहिक अनुभव की गहन अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। चित्र के अग्रभाग में एक स्त्री का सशक्त और भावपूर्ण चेहरा केंद्र में स्थापित है। उसका शांत भाव, गंभीर दृष्टि और सौम्य मुस्कान जीवन के संघर्षों के बीच अंतर्निहित आत्मबल और धैर्य को दर्शाती है। सिर पर बंधा वस्त्र और पारंपरिक आभूषण उसकी सांस्कृतिक पहचान को रेखांकित करते हैं, जो परंपरा और निरंतरता का प्रतीक बनते हैं।

रंगों का चयन अत्यंत संयमित और सधा हुआ है। धूसर, मिट्टी जैसे मृदु रंग और हल्की रोशनी–छाया का प्रयोग चित्र को एक स्मृतिमय, स्वप्निल वातावरण प्रदान करता है। पृष्ठभूमि में उभरती हुई स्त्रियों की आकृतियाँ मानो अतीत की परतों से निकलकर वर्तमान में प्रवेश कर रही हों। ये आकृतियाँ सामूहिक जीवन, श्रम, विस्थापन या साझा पीड़ा के अनुभवों की ओर संकेत करती हैं। उनका हल्का धुंधलापन यह आभास देता है कि वे केवल दृश्य नहीं, बल्कि स्मृतियों और अनुभवों की छाया हैं। चित्र की पृष्ठभूमि में स्थापत्य और प्राकृतिक तत्वों को जानबूझकर धुंधला रखा गया है। यह अनिश्चितता समय और स्थान की सीमाओं को तोड़ती है तथा जीवन की क्षणभंगुरता को रेखांकित करती है। चित्र के भीतर बहती हुई रेखाएँ या मार्ग दृष्टि को एक दिशा देती हैं, जो जीवन-यात्रा और समय के प्रवाह का प्रतीक प्रतीत होती हैं। तकनीकी दृष्टि से ऑयल माध्यम का प्रयोग अत्यंत कुशलता से किया गया है। कोमल ब्लेंडिंग और चयनित विवरण, विशेषकर चेहरे पर भावनात्मक प्रभाव को सशक्त बनाते हैं। समग्र रूप से यह कृति केवल एक स्त्री-चित्र नहीं, बल्कि नारी जीवन, स्मृति और सामूहिक पहचान पर आधारित एक संवेदनशील दृश्य-कथा है, जो दर्शक को मौन संवाद के लिए आमंत्रित करती है।

प्राकृतिक सौंदर्य

यह चित्र उत्तराखंड के प्राकृतिक सौंदर्य का एक शांत, विस्तृत और भावनात्मक दृश्य प्रस्तुत करता है। माध्यम: ऑयल तथा आकार: 53 × 33 इंच में निर्मित यह कृति प्रकृति और मनुष्य के सह-अस्तित्व को अत्यंत संतुलित और सौम्य रूप में अभिव्यक्त करती है। चित्र में फैली हरियाली, दूर तक विस्तृत खेत, पर्वत श्रृंखलाएँ और बीच से बहती नदी—ये सभी तत्व मिलकर एक ऐसी मौन कथा रचते हैं, जिसमें जीवन की निरंतरता और प्रकृति की उदारता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। चित्र की रचना (कम्पोज़ीशन) अत्यंत प्रभावशाली है। अग्रभाग में फैले हरे और पीले खेत मानव श्रम, कृषि संस्कृति और ग्रामीण जीवन की पहचान को दर्शाते हैं। बीच से बहती नदी जीवन-प्रवाह, समय और सतत गति का प्रतीक बनकर उभरती है। नदी की वक्राकार गति दर्शक की दृष्टि को चित्र के भीतर गहराई तक ले जाती है, जिससे दृश्य में स्वाभाविक गतिशीलता और विस्तार का अनुभव होता है। पृष्ठभूमि में स्थित पर्वत, जिन पर हल्का कुहासा और बादल छाए हैं, उत्तराखंड की भौगोलिक विशिष्टता और रहस्यमय सौंदर्य को सशक्त बनाते हैं। रंग-योजना इस कृति की आत्मा है। हरे रंग के विविध टोन भूमि की उर्वरता, शांति और जीवनदायिनी शक्ति को व्यक्त करते हैं, जबकि पीले खेत प्रकाश, ऊर्जा और आशा का संकेत देते हैं। आकाश में फैले धूसर-नीले रंग और पहाड़ों पर छाया कुहासा वातावरण में ठंडक, दूरी और आध्यात्मिक शांति का भाव जोड़ता है। ऑयल माध्यम के प्रयोग से रंगों में गहराई, कोमलता और सहज ब्लेंडिंग स्पष्ट दिखाई देती है, जो चित्र को यथार्थ के साथ-साथ भावनात्मक स्तर पर भी प्रभावशाली बनाती है। यह चित्र केवल एक प्राकृतिक दृश्य नहीं, बल्कि कलाकार की प्रकृति के प्रति संवेदनशील

और सम्मानपूर्ण दृष्टि का प्रतिबिंब है। यहाँ प्रकृति को उग्र या नाटकीय नहीं, बल्कि शांत, संतुलित और जीवन को संवारने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समग्र रूप से यह पेंटिंग उत्तराखंड की भूमि, प्रकृति और मानव जीवन के गहरे संबंध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो दर्शक को ठहरकर देखने और भीतर तक महसूस करने के लिए प्रेरित करती है।

प्रकृति और श्रम-संस्कृति

यह ऑयल कलर पेंटिंग (आकार: 36 × 53 इंच) ग्रामीण जीवन, प्रकृति और श्रम-संस्कृति की सजीव तथा भावनात्मक अभिव्यक्ति है। चित्र में एक किसान दंपत्ति को खेत जोतते हुए दिखाया गया है, जहाँ बैलों की जोड़ी के साथ पुरुष हल चला रहा है और स्त्री पीछे झुककर बीज बोने या मिट्टी समतल करने का कार्य कर रही है। यह दृश्य भारतीय ग्रामीण जीवन की उस परंपरा को दर्शाता है, जहाँ खेती केवल आजीविका नहीं, बल्कि जीवन का संस्कार और सामूहिक श्रम का प्रतीक है। चित्र की रचना (Composition) अत्यंत संतुलित और गतिशील है। अग्रभूमि में हल चलाते बैल और किसान की आकृति चित्र का मुख्य केंद्र हैं, जो गति और परिश्रम का आभास कराते हैं। बैलों के आगे बढ़ते कदम और हल की रेखा खेत में लय और दिशा उत्पन्न करती है। पीछे की ओर झुकी हुई स्त्री आकृति श्रम की निरंतरता और सहयोग का संकेत देती है। इस प्रकार चित्र पुरुष और स्त्री दोनों के संयुक्त प्रयास को महत्व देता है, जो ग्रामीण समाज की वास्तविक संरचना को दर्शाता है।

पृष्ठभूमि में विस्तृत हरे-पीले खेत, सघन वृक्ष और दूर तक फैली पर्वत-श्रृंखलाएँ दिखाई देती हैं। पहाड़ों की ठोस उपस्थिति प्रकृति की स्थायित्व और विशालता को दर्शाती है, जबकि उनके ऊपर फैला नीला-धूसर आकाश वातावरण में शांति और विस्तार का भाव भरता है। दूर स्थित छोटा सा घर मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व का सुंदर संकेत है, जहाँ मनुष्य प्रकृति के बीच विनम्रता से अपना स्थान बनाता है। रंग-योजना इस कृति की विशेष शक्ति है। मिट्टी के भूरे और लालिमा लिए रंग खेत की उर्वरता और श्रम की कठोरता को दर्शाते हैं। हरे रंग के विभिन्न शेड्स जीवन, आशा और प्रकृति की उदारता का प्रतीक हैं। बैलों का सफेद रंग शुद्धता, शक्ति और ग्रामीण जीवन की आत्मा को उजागर करता है। ऑयल माध्यम के कारण रंगों में गहराई, चमक और कोमल ब्लेंडिंग दिखाई देती है, जिससे दृश्य अत्यंत यथार्थपूर्ण और जीवंत बन गया है। भावनात्मक दृष्टि से यह चित्र केवल खेती का दृश्य नहीं, बल्कि परिश्रम, धैर्य और जीवन-संघर्ष की कथा कहता है। किसान का झुका हुआ शरीर, स्त्री की मेहनत और बैलों की निरंतर गति—तीनों मिलकर यह संदेश देते हैं कि धरती से अन्न निकालना तपस्या के समान है। समग्र रूप से यह पेंटिंग ग्रामीण भारत की आत्मा, प्रकृति के प्रति सम्मान और श्रम की गरिमा की सशक्त एवं संवेदनशील अभिव्यक्ति है, जो दर्शक को यथार्थ से जोड़ते हुए भीतर तक प्रभावित करती है।

महासू देवता मंदिर

यह पेंटिंग उत्तराखंड के जौनसार-बावर क्षेत्र में स्थित हनोल के महासू देवता मंदिर का एक गहन आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चित्रण प्रस्तुत करती है। कलाकार ने मंदिर की विशिष्ट काष्ठ स्थापत्य शैली को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ अंकित किया है। मंदिर की बहु-स्तरीय छतरियाँ, लकड़ी की दीवारें, नक्काशीदार प्रवेश द्वार और धातु कलश पारंपरिक हिमालयी वास्तुकला की समृद्ध परंपरा को दर्शाते हैं। यह संरचना केवल धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि स्थानीय समाज की आस्था और जीवन-दर्शन का प्रतीक भी है।

चित्र की पृष्ठभूमि में फैले हरित पर्वत, धुंध में लिपटी घाटियाँ और शांत आकाश एक दिव्य वातावरण का निर्माण करते हैं, जो मंदिर की पवित्रता को और अधिक प्रभावशाली बनाता है। हल्के और संतुलित रंगों का प्रयोग चित्र में सौम्यता और शांति का भाव उत्पन्न करता है। प्रकाश का संयमित उपयोग सुबह या संध्या के समय का आभास कराता है, जिससे दृश्य में आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार होता है।

अग्रभूमि में मंदिर की ओर बढ़ते श्रद्धालु, परिसर में बैठे पशु और खुले प्रांगण का विस्तार लोकजीवन की सहजता और आस्था की निरंतरता को दर्शाता है। मानव आकृतियाँ चित्र को जीवंत बनाती हैं और दर्शक को इस पवित्र स्थल से भावनात्मक रूप से जोड़ती हैं।

यह पेंटिंग केवल महासू देवता मंदिर का दृश्यांकन नहीं है, बल्कि जौनसार-बावर की लोकआस्था, सांस्कृतिक विरासत और प्रकृति के साथ मनुष्य के सामंजस्य का एक सशक्त कलात्मक दस्तावेज है, जो दर्शक को आध्यात्मिक शांति और सांस्कृतिक गर्व का अनुभव कराता है।

पर्वतीय ग्रामीण जीवन

यह पेंटिंग उत्तराखंड के पर्वतीय ग्रामीण जीवन का एक अत्यंत संवेदनशील और यथार्थपूर्ण दृश्य प्रस्तुत करती है। चित्र में पत्थरों से बने मार्ग पर चलती गायों का झुंड और उनके पीछे चलता ग्रामीण पात्र पहाड़ी जीवन की दैनिक दिनचर्या को सहजता से अभिव्यक्त करता है। यह दृश्य केवल पशुपालन का नहीं, बल्कि मनुष्य और प्रकृति के बीच गहरे सामंजस्य का प्रतीक है। पृष्ठभूमि में धुंध से आच्छादित ऊँचे पर्वत, देवदार और चीड़ के वृक्ष तथा दूर बसे छोटे-छोटे मकान उत्तराखंड के ग्रामीण परिवेश को जीवंत बनाते हैं। हल्के रंगों और सौम्य प्रकाश का प्रयोग चित्र में शांति और स्थिरता का भाव उत्पन्न करता है। पर्वतों पर पड़ती रोशनी और धुंध का संयोजन वातावरण में गहराई और रहस्यमय सौंदर्य जोड़ता है।

अग्रभूमि में गायों की विविध मुद्राएँ और चाल-ढाल चित्र को गतिशीलता प्रदान करती हैं। पशुओं के शरीर पर रंगों का संतुलित प्रयोग उनके स्वभाव और प्राकृतिक बनावट को दर्शाता है। मार्ग की बनावट, पत्थरों की संरचना और आसपास की हरियाली कलाकार की सूक्ष्म अवलोकन क्षमता को दर्शाती है।

यह पेंटिंग पहाड़ के साधारण जीवन, श्रम, धैर्य और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है, जो दर्शक को ग्रामीण संस्कृति की आत्मीय अनुभूति कराती है।

शांत जलाशय

यह पेंटिंग प्रकृति के शांत, रहस्यमय और जीवनदायी स्वरूप का अत्यंत संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत करती है। चित्र में घने वन के बीच स्थित एक शांत जलाशय दिखाई देता है, जिसकी सतह पर फैली हरी जलकुंभी और कमल-पत्तियाँ प्राकृतिक संतुलन और जैव विविधता का संकेत देती हैं। जल में वृक्षों की प्रतिबिंबित आकृतियाँ चित्र को गहराई और विस्तार प्रदान करती हैं, जिससे दृश्य में यथार्थ और सौंदर्य का अद्भुत समन्वय उत्पन्न होता है।चारों ओर खड़े लंबे वृक्ष, उनकी पतली शाखाएँ और कोमल हरी पत्तियाँ वन के सजीव वातावरण को दर्शाती हैं। रंगों का चयन अत्यंत सौम्य और संतुलित है—हरे, नीले और भूरे रंगों का संयोजन चित्र में शांति, ताजगी और स्थिरता का भाव उत्पन्न करता है। प्रकाश का सूक्ष्म प्रयोग ऐसा प्रतीत होता है मानो सुबह या संध्या का समय हो, जब प्रकृति ध्यानमग्न अवस्था में होती है।जल की सतह पर हल्की तरंगें और पत्तियों की स्वाभाविक फैलाव संरचना कलाकार की सूक्ष्म अवलोकन क्षमता को दर्शाती है। यह पेंटिंग केवल एक प्राकृतिक दृश्य नहीं है, बल्कि यह दर्शक को आत्मिक शांति, मौन और प्रकृति के साथ जुड़ाव का अनुभव कराती है। संपूर्ण कृति ध्यान, संतुलन और प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण की भावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

पहाड़ी जीवन

यह पेंटिंग पहाड़ी जीवन की आत्मा को अत्यंत संवेदनशीलता और भावनात्मक गहराई के साथ प्रस्तुत करती है। चित्र में चार ग्रामीण पात्र पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर दूर तक फैली हिमालयी पर्वत श्रृंखलाओं को निहारते दिखाई देते हैं। उनकी पीठ दर्शक की ओर है, जिससे यह दृश्य आत्ममंथन, प्रतीक्षा और सामूहिक अनुभूति का प्रतीक बन जाता है। यह स्थिति पहाड़ी समाज की जीवन-दृष्टि को दर्शाती है, जहाँ प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन का केंद्र है। पात्रों के पारंपरिक वस्त्र—रंग-बिरंगी साड़ियाँ, ऊनी शॉल, सिर ढकने की शैली—स्थानीय संस्कृति, मौसम और जीवन संघर्ष की कहानी कहते हैं। महिलाओं और पुरुष की साधारण लेकिन सुदृढ़ देह-भाषा पर्वतीय जीवन की सहनशीलता, श्रम और आत्मनिर्भरता को व्यक्त करती है। उनके मौन में भी अनुभवों, स्मृतियों और आशाओं की गूँज महसूस होती है।

पृष्ठभूमि में धुंध से आच्छादित पर्वत, बर्फ से ढकी चोटियाँ और नीला आकाश प्रकृति की विराटता और मानव की लघुता का बोध कराते हैं। रंगों का संतुलन—नीले, भूरे और हल्के सफेद—शांति, गंभीरता और आध्यात्मिक भाव उत्पन्न करता है। बादलों की गति और पर्वतों की परतें चित्र में गहराई और विस्तार प्रदान करती हैं।यह पेंटिंग केवल एक दृश्य नहीं, बल्कि पहाड़ के जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति है, जहाँ कठिन परिस्थितियों के बावजूद सामूहिकता, धैर्य और प्रकृति के प्रति सम्मान बना रहता है। यह कृति दर्शक को पहाड़ी जीवन की सादगी, संघर्ष और सौंदर्य से आत्मिक रूप से जोड़ती है तथा मन में मौन, स्थिरता और चिंतन का भाव जगाती है।

उपरोक्त सभी पेंटिंग्स को समग्र रूप में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि कलाकार मोहम्मद मोइन की कला-यात्रा केवल दृश्य चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रकृति, लोकजीवन, आस्था और मानवीय संवेदनाओं की गहन अनुभूति का सशक्त दस्तावेज है। उनकी कृतियाँ उत्तराखंड के पहाड़ी भू-दृश्य, मंदिर संस्कृति, ग्रामीण जीवन, वन-पर्यावरण और मानवीय सहभागिता को एक सूत्र में बाँधती हैं। यह यात्रा बाह्य सौंदर्य से आरंभ होकर अंततः आत्मिक और दार्शनिक स्तर तक पहुँचती है। महासू देवता मंदिर की पेंटिंग में जहाँ लोकआस्था, पारंपरिक वास्तुकला और आध्यात्मिक चेतना का गहन स्वरूप दिखाई देता है, वहीं ग्रामीण जीवन और पशुपालन के दृश्य पहाड़ की श्रमशील जीवनशैली, प्रकृति पर निर्भरता और सहज संतुलन को उजागर करते हैं। जंगल और जलाशय की कृति प्रकृति के मौन, ध्यान और जैविक संतुलन की ओर संकेत करती है, जो कलाकार के भीतर की शांति और सूक्ष्म दृष्टि को दर्शाती है। वहीं "पहाड़ी जीवन" विषयक पेंटिंग में मानव आकृतियाँ प्रकृति के विराट स्वरूप के सामने खड़ी होकर सामूहिक स्मृति, संघर्ष, आशा तथा जीवन-दर्शन का प्रतीक बन जाती हैं।

मोहम्मद मोइन की कला-यात्रा की विशेषता यह है कि वे यथार्थ को केवल प्रतिलिपि नहीं बनाते, बल्कि उसमें भाव, अनुभव और सांस्कृतिक स्मृति का समावेश करते हैं। उनका रंग संयोजन सौम्य, संतुलित और वातावरण के अनुरूप होता है, जिससे चित्रों में शांति, गहराई और स्थायित्व का भाव उत्पन्न होता है। प्रकाश, धुंध और पर्वतों की परतें और मानवीय आकृतियाँ—सब मिलकर उनकी कृतियों को कथा-प्रधान बनाती हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मोहम्मद मोइन की कला-यात्रा "अभाव से प्रभाव" की यात्रा है, जहाँ सीमित संसाधनों और कठिन परिस्थितियों के बावजूद उनकी कला व्यापक संवेदना और गहन दृष्टि से समृद्ध होती गई। उनकी पेंटिंग्स केवल दृश्य आनंद नहीं देतीं, बल्कि उत्तराखंड की सांस्कृतिक पहचान, लोकजीवन और प्रकृति के प्रति सम्मान को संरक्षित करती हैं। इस दृष्टि से मोहम्मद मोइन एक ऐसे कलाकार के रूप में स्थापित होते हैं, जिनकी कला समय, स्थान और समाज—तीनों से संवाद करती है और दर्शक को आत्मिक अनुभूति तक ले जाती है।

सम्पर्क: सहायक आचार्य, ललित कला विभाग,
देवभूमि उत्तराखंड विश्वविद्यालय, देहरादून, यूनिवर्सिटी कैंपस, नवगाव
मण्डूवाला -248007

■

कला लेख

प्रकृति की गोद में नारी सौंदर्य : मौन में रची संवेदनाएँ

भूपेंद्र कुमार अस्थाना

भूपेंद्र कुमार अस्थाना यवा चित्रकार, क्यूरेटर एवं लेखक हैं।इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के कला एवं शिल्प महाविद्यालय से ललित कला (छपाकला) में स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। वर्ष 2011 में 30वीं राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश द्वारा छपाकला में राज्य पुरस्कार से सम्मानित हुए। साथ ही 2012-13 में राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश तथा 2018-19 में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा "कला संयोजन एवं प्रलेखन" में राष्ट्रीय छात्रवृत्ति प्राप्त की।वर्ष 2014-16 तक कला स्रोत तथा वर्तमान में फ्लोरेन्स आर्ट गैलरी में आर्ट क्यूरेटर एवं सलाहकार के रूप में सक्रिय हैं। कला आयोजन और समकालीन कलाकारों पर संवाद इनके कार्यक्षेत्र की प्रमुख पहचान है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, पोर्टलों और ब्लॉगों पर नियमित लेखन के साथ अनेक कला प्रदर्शनियों, संगोष्ठियों और कला शिविरों में सहभागिता रही है। नादरंग हिंदी कला पत्रिका में सह संपादक के रूप में भी कार्य किया है। स्वतंत्र चित्रकार, कला संयोजक, प्रलेखक, समीक्षक और क्यूरेटर के रूप में सक्रिय भूपेंद्र कुमार अस्थाना का मानना है कि मौलिकता ही कलाकार की वास्तविक पहचान है।

सुप्रसिद्ध शिल्पकार श्रीधर महापात्र भारतीय मूर्तिकला परम्परा के ऐसे साधक थे जिनकी कला में उदात्तता, साधना और आत्मानुभूति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने केवल प्राचीन शिल्प–वैभव को संरक्षित ही नहीं किया, बल्कि नूतन और पुरातन के संतुलित मेल से अपनी मौलिक शैली का सृजन किया। उनकी कृतियों में परम्परा का श्रृंगार और आधुनिकता का यथार्थ साथ-साथ चलता है। स्वयं महापात्र का यह स्वीकार—कि उन्होंने पुरानी कला से सीखकर आधुनिक अभिव्यक्ति में नवीन संशोधन और रूप-विचार के माध्यम से अपना अलग कला-पथ खोजा—उनकी सृजनशीलता और आत्मसंघर्ष दोनों को उद्घाटित करता है। उनकी कला आत्मतोष के साथ आत्मप्रगति का भी प्रतीक रही।

महापात्र का जन्म ऐसे शिल्पी परिवार में हुआ जहाँ पीढ़ियों से मूर्तिकला जीवन का हिस्सा थी। हथौड़ी और छेनी की ध्वनियाँ उनके बचपन की लोरी थीं। अनगढ़ पत्थरों में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा और मानव आकृतियों की जीवंतता उनके मानस में प्रारम्भ से ही रच-बस गई। औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के बिना ही उन्होंने पारिवारिक परम्परा से शिल्पकला सीखी, बाद में इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट में विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया। लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के प्राचार्य असित कुमार हाल्दार द्वारा उन्हें सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया जाना उनकी प्रतिभा की स्वीकृति का प्रमाण है।

पत्थर, लकड़ी, मिट्टी और धातु—सभी माध्यमों पर उनकी समान पकड़ थी। महीन नक्काशी और काष्ठ-खुदाई में वे विशेष रूप से दक्ष थे। 'उमा की तपस्या', 'राधा-कृष्ण', 'शिव-सती', 'अर्द्धनारीश्वर', 'गंगा' और 'कृष्ण का मुरलीवादन' जैसी कृतियों में उनकी आध्यात्मिक चेतना मुखर हो उठती है। भारतीय मूर्तिकला के सूक्ष्म तत्त्व—सौन्दर्यबोध, रचना-प्रक्रिया, प्रविधि और परिकल्पना—को उन्होंने गहराई से आत्मसात कर अपने ढंग से प्रस्तुत किया। देवशैली और व्यवहारिक शैली, दोनों का संतुलित उपयोग उनकी विशेषता रहा। 'नायिका', 'अभिसारिका' और 'देवदासी' जैसी प्रतिमाएँ भावाभिव्यक्ति की कोमलता और शारीरिक लयात्मकता का सुंदर उदाहरण हैं। समय के साथ उनकी प्रतिभा निरन्तर विकसित होती रही। उन्होंने उड़ीसा की पारम्परिक शिल्पधारा को आधुनिक स्थापत्य दृष्टि से जोड़ा और भारतीय कला के मूल सिद्धान्तों—आकृति, अनुपात और भंगिमा—को सुदृढ़ आधार दिया। उनकी कृतियों को देश-विदेश में व्यापक सराहना मिली; अनेक विदेशी कला-रसिकों ने उनकी मूर्तियाँ संग्रहित कीं। 'अभिसारिका' की मूर्ति का लंदन के इंडिया हाउस में स्थापित होना उनकी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा का सशक्त संकेत है।

परम्परावादी होते हुए भी वे जड़ता के पक्षधर नहीं थे। उनके लिए परम्परा जीवनदायी तत्वों का स्रोत थी, न कि रूढ़ि का बंधन। उन्होंने केवल उन्हीं तत्त्वों को अपनाया जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी कला में न अतिशयोक्ति है, न वैषम्य—अपितु एक आत्मप्रेरित प्राणवत्ता है जो दर्शक को भीतर तक स्पर्श करती है। इस प्रकार श्रीधर महापात्र भारतीय मूर्तिकला के उन विरल शिल्पियों में गिने जाते हैं जिनकी साधना, संवेदना और सृजनशीलता आज भी प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

श्रीधर महापात्र (जन्म 1912, पुरी, उड़ीसा) ने भारतीय कला की उस सशक्त धारा को अनुप्राणित किया जिसका प्रतिपादन ई. वी. हैवेल तथा गुरुदेव अवनीन्द्रनाथ

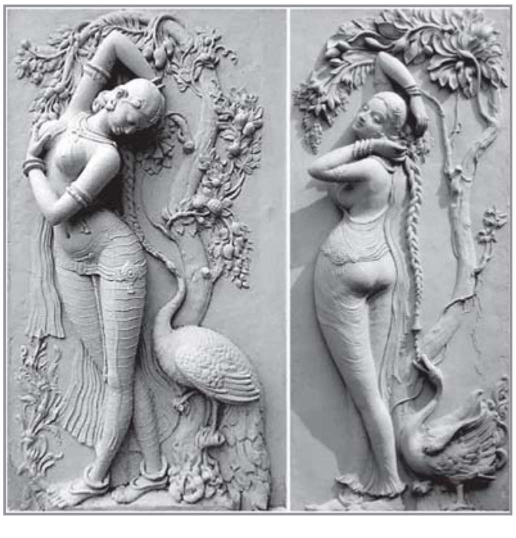

ठाकुर ने किया था। उनके पिता गिरधारी लाल महापात्र स्वयं उड़ीसा की विशिष्ट पारम्परिक शिल्पशैली के अद्वितीय कलाकार थे और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के अत्यंत निकट रहे। इसी पारिवारिक एवं सांस्कृतिक सान्निध्य में श्रीधर महापात्र ने भारतीय कला के मर्म को गहराई से आत्मसात किया। आगे चलकर उन्होंने कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में प्रशिक्षण देकर कलाकारों की ऐसी पीढ़ी तैयार की, जिसने देश-विदेश में भारतीय कला का प्रतिनिधित्व किया और उसकी गरिमा को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

महापात्र जी का व्यक्तित्व अत्यंत सरल, विनम्र और मृदुभाषी था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी प्रत्येक श्वास में कला का ही वास हो। मिट्टी या पत्थर उनके सम्मुख आते ही उनके मानस में संचित कल्पनाएँ मूर्त रूप लेने लगती थीं। उनकी रचनाओं में आयु और अनुभव का स्वाभाविक परिपक्व प्रभाव स्पष्ट झलकता है। सॉफ्ट स्टोन (मृदु पत्थर) पर कार्य करना उन्हें विशेष रूप से प्रिय था; इस माध्यम में वे सूक्ष्म भावों और कोमल आकृतियों को अद्भुत सहजता से उकेरते थे। उनकी कला पर वैष्णव भक्ति परम्परा की गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है। विषय चयन में प्रायः रतिभाव प्रधान श्रृंगार रस की सौम्यता और आध्यात्मिक संवेदना का समन्वय मिलता है। शिव-पार्वती, गणेश-पार्वती, सीता-राम, सरस्वती, बुद्ध तथा नायिका जैसे विषयों पर निर्मित उनके मूर्तिशिल्प शारीरिक संरचना, भाव-भंगिमा और भारतीय कला-दृष्टि के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी कृतियाँ केवल रूपात्मक सौन्दर्य ही नहीं, बल्कि भावात्मक गहराई और सांस्कृतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति हैं।

उनकी अनेक मूर्तियाँ नगर महापालिका गैलरी, लखनऊ, राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश तथा विभिन्न निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं। ये कृतियाँ न केवल श्रीधर महापात्र के मौलिक व्यक्तित्व और कृतित्व की साक्षी हैं, बल्कि भारतीय कला की आदर्श और प्रेरणादायी धरोहर के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उनकी साधना और योगदान के सम्मानस्वरूप 21 नवम्बर 1983 को अकादमी द्वारा उन्हें फेलोशिप प्रदान की गई—जो उनके जीवनपर्यंत कला-समर्पण की औपचारिक स्वीकृति थी। कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ परिसर में बनी आचार्य श्री श्रीधर महापात्र जी की मूर्तिशिल्पों को एक साथ देखने पर एक ही भावधारा स्पष्ट रूप से उभरती है—स्त्री, प्रकृति और सौंदर्य का शांत, सहज और संवेदनशील मेल। ये दोनों ही रचनाएँ अलग-अलग मुद्राओं में होते हुए भी एक ही अनुभूति रचती हैं, जहाँ देह केवल देह नहीं रहती, बल्कि प्रकृति की लय में ढलती हुई एक जीवंत भावना बन जाती है।

मूर्तियों में स्त्री आकृति वृक्ष के सहारे दिखाई देती है। कहीं वह सीधे खड़ी है, कहीं हल्के से झुकी हुई, पर हर स्थिति में उसका शरीर स्वाभाविक और सहज लगता है। शरीर की वक्र रेखाएँ किसी बनावटी सौंदर्य का प्रदर्शन नहीं करतीं, बल्कि एक शांत लय का आभास देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो स्त्री और वृक्ष के बीच कोई दूरी नहीं है—लताएँ उसके केशों जैसी लगती हैं, शाखाएँ उसके हाथों का विस्तार बन जाती हैं। प्रकृति यहाँ पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि स्त्री के भावों की सहभागी है। शिल्पों में वस्त्रों की रेखाएँ शरीर की गति और कोमलता को बहुत सरल ढंग से उभारती हैं। वस्त्र बहते हुए प्रतीत होते हैं, जैसे हवा के साथ संवाद कर रहे हों। पैरों की स्थिति और शरीर का झुकाव मूर्तियों में ठहराव के साथ-साथ गति का भी संकेत देता है। यह ठहरी हुई गति ही इन मूर्तियों को जीवंत बनाती है। रचनाओं में नीचे या पास में बना पक्षी—हंस या मोर—शांति, सौम्यता और संतुलन का भाव जोड़ता है। वह स्त्री सौंदर्य को केवल बाहरी आकर्षण तक सीमित नहीं रहने देता, बल्कि उसे एक आत्मिक और गरिमामय रूप देता है। इससे पूरा दृश्य शांत और मर्यादित बन जाता है।

समय के साथ आई हल्की टूट-फूट, रंग की फीकी परतें और सतह की दरारें इन मूर्तियों की सुंदरता को कम नहीं करतीं, बल्कि उनमें स्मृति और इतिहास का भाव भर देती हैं। यह क्षरण भी मानो कहता है कि सौंदर्य स्थिर नहीं, बल्कि समय के साथ जीता हुआ अनुभव है। मूर्तिशिल्पों का सबसे बड़ा गुण यह है कि ये दर्शक को जल्दी में देखने नहीं देतीं। ये ठहरकर देखने, धीरे-धीरे महसूस करने और भीतर तक उतरने का आग्रह करती हैं। इनका सौंदर्य शोर नहीं करता, बल्कि मौन में बोलता है। यही मौन, यही सहजता और यही संवेदनशीलता इन दोनों रचनाओं को विशेष और स्मरणीय बनाती है।

वरिष्ठ कलाकार जय कृष्ण अग्रवाल जी ने अपने एक संस्मरण में आचार्य श्री श्रीधर महापात्र को "दैवीय सौन्दर्य के सच्चे साधक" कहा था। यह कथन केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि उनकी कला-दृष्टि का सटीक मूल्यांकन है। एक दिगम्बर जैन मुनि द्वारा नग्न और दिगम्बर के अंतर की जो सुंदर व्याख्या की गई है, वह भारतीय कला की आत्मा को समझने में सहायक है। उनके अनुसार, जब मन में विकार होता है, तब लज्जा उत्पन्न होती है और उसी लज्जा को ढकने के लिए वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में, निर्विकार अवस्था ही दिगम्बरता है। भारतीय कला परंपरा में नग्न आकृतियों को इसी भावभूमि में देखा और रचा गया है। जब नग्न मानव आकृति को निर्विकार दृष्टि से देखा या सृजित किया जाता है, तो उसमें वही प्राकृतिक सौंदर्य प्रकट होता है, जैसा सृष्टि के किसी भी अन्य सौंदर्य में।

भारतीय कलामनीषियों ने शाश्वत सौंदर्य और कामुकता के अंतर को अपनी कला में अत्यंत स्पष्टता से परिभाषित किया है। शायद यही कारण है कि हमारे प्राचीन मंदिर—जो धार्मिक आस्था के केंद्र होने के साथ-साथ कला की समृद्ध धरोहर भी हैं—आज भी हमें अपने परिवार के साथ बिना किसी संकोच या लज्जा के देखने और अनुभव करने का अवसर देते हैं।

आचार्य श्री श्रीधर महापात्र जी उड़ीसा के श्री जगन्नाथ पुरी मंदिर के मूल शिल्पियों की वंश परंपरा से जुड़े थे। अपनी संस्कारित शिल्प परंपरा का सम्मान करते हुए उन्होंने समय के साथ अपनी एक विशिष्ट और पहचान योग्य शैली विकसित की। कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ के प्रांगण में स्थापित उनकी अनेक कृतियों में से ये दो विशाल नारी प्रतिमाएँ और नौ रस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ये दोनों प्रतिमाएँ नारी के शाश्वत सौंदर्य को अत्यंत गरिमा और संयम के साथ प्रस्तुत करती हैं। इनमें न तो प्रदर्शन है, न ही कोई विकार—केवल एक शांत, दिव्य और प्राकृतिक सौंदर्य का अनुभव है। ये कृतियाँ इस बात का सशक्त प्रमाण हैं कि महापात्र जी वास्तव में दैवीय सौंदर्य के सच्चे साधक थे।

संपर्क : भूपेन्द्र कुमार अस्थाना/ रानी देवी, आशीर्वाद भवन
ES-1, B/290, सेक्टर -A, (एम एल एम इन्टर कॉलेज के पास) अलीगंज
लखनऊ - 226021 उप्र मो. 7011181273

■

कला लेख

भारतीय और पाश्चात्य कला : संवाद, विभेद और समन्वय

डॉ. मनीषा आमेटा

डॉ. मनीषा आमेटा पिछले 9 वर्षों से महाविद्यालयी शिक्षा क्षेत्र में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। वे स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन करती हैं तथा पाठ्यक्रम निर्माण, सेमिनार, कार्यशाला एवं शैक्षणिक संगोष्ठियों में सक्रिय सहभागिता रखती हैं। अध्यापन के प्रति समर्पण और विषय के प्रति गंभीर अध्ययनशीलता उनकी विशेषता है। संस्कृत साहित्य से सम्बंधित सांस्कृतिक लेखन विशेष रूप से उल्लेखनीय है विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध आलेख एवं रचनाएं प्रकाशित।

कला केवल सौन्दर्य की वस्तु नहीं है, बल्कि मनुष्य की आंतरिक चेतना और बाहरी जीवन के बीच एक सजीव सेतु है। प्रत्येक सभ्यता अपने अनुभव, संघर्ष, सपनों और जीवन-दृष्टि को कला के माध्यम से व्यक्त करती है। इसलिए भारतीय और पाश्चात्य कला का अध्ययन केवल शैलीगत अंतर समझने का विषय नहीं, बल्कि दो सांस्कृतिक दृष्टियों के गहरे संवाद को समझने का प्रयास है।

भारतीय कला की आधारभूमि धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जुड़ी हुई है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य को 'पंचम वेद' कहा और उसे लोकमंगल तथा आत्म-विकास का साधन माना। आगे चलकर अभिनवगुप्त ने 'रस' की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताया कि कला व्यक्ति को उसकी सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक चेतना से जोड़ती है। इस प्रकार भारतीय कला का मूल स्वर आध्यात्मिक समरसता और सामूहिक अनुभव में निहित है।

इसी दार्शनिक दृष्टि का मूर्त रूप हमें अजंता गुफाओं के भित्तिचित्रों में दिखाई देता है, जहाँ करुणा और शांति जीवंत हो उठती है। उसी आध्यात्मिक भाव का प्रतीक नटराज की प्रतिमा है, जो सृष्टि और संहार के दार्शनिक रहस्य को व्यक्त करती है। मधुबनी चित्रकला जैसी लोक परम्पराएँ यह स्पष्ट करती हैं कि भारत में कला जीवन से अलग नहीं, बल्कि जीवन की लय का अभिन्न अंग है।इसके साथ ही गांधार कला यह प्रमाणित करती है कि भारतीय परम्परा ने बाहरी प्रभावों को स्वीकार करते हुए भी अपनी मूल आत्मा को सुरक्षित रखा।

इसके विपरीत, पाश्चात्य कला का विकास अलग ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ। पुनर्जागरण के समय कलाकारों ने ईश्वर और आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ मनुष्य के शरीर, उसकी समझ और उसके व्यक्तित्व को महत्व देना शुरू किया। लियोनार्दो दा विंची ने कला और विज्ञान का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया, जबकि माइकल एंजेलो ने 'डेविड' के माध्यम से मानव-सौन्दर्य को आदर्श रूप दिया।आधुनिक युग में यह मानव-केंद्रित दृष्टि और अधिक तीव्र हो गई। विन्सेंट वैन गॉग की 'स्टारी नाइट' व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति है, जबकि पाब्लो पिकासो की 'गुएर्निका' युद्ध-विरोध का सशक्त प्रतीक है। इस प्रकार, जहाँ भारतीय कला समरसता पर ध्यान देती है, वहीं पाश्चात्य कला विचार और प्रश्नों के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का प्रयास करती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में यह सवाल उठा कि कला पुरानी परम्पराओं को अपनाए या पश्चिम की नई आधुनिक कला से जुड़े। इसी समय, 1947 में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप बना। एफ. एन. सूज़ा, एम. एफ. हुसैन और एस. एच. रज़ा जैसे कलाकारों ने भारतीय पहचान को बनाए रखते हुए आधुनिक शैली में काम किया।

दूसरी ओर, चित्तप्रसाद भट्टाचार्य और सोमनाथ होरे ने समाज की सच्चाई और आम लोगों के जीवन को अपनी कला का विषय बनाया। इस तरह परम्परा और आधुनिकता के बीच एक नया रचनात्मक संवाद शुरू हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रॉकफेलर फाउंडेशन और फोर्ड फाउंडेशन जैसी संस्थाओं ने देशों के बीच कला के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया। जैक्सन पोलॉक को विश्व-स्तर पर पहचान मिलने में भी इन संस्थाओं का सहयोग महत्वपूर्ण रहा। इससे यह सवाल उठने लगा कि क्या कला का महत्व केवल कलाकार की रचनात्मकता से तय होता है, या फिर बड़ी संस्थाओं के समर्थन से भी उसकी पहचान बनती है।इन्हीं विचारों के बीच रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह कथन महत्वपूर्ण हो जाता है कि "कविता लिखते समय शब्द किसी भाषा में आते हैं, पर चित्र बनाते समय कोई भाषा बाधा नहीं बनती।" इससे स्पष्ट होता है कि कला सीमाओं से परे है; उसका स्वभाव खुला और उदार होता है।अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय और पाश्चात्य कला एक-दूसरे की विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे को पूरा करने वाली हैं। एक तरफ आत्मा की गहराई है, तो दूसरी तरफ सोच-विचार और विश्लेषण। एक ओर समरसता है, तो दूसरी ओर प्रश्न और विरोध। जब ये दोनों मिलकर संवाद करती हैं, तभी नई सृजनात्मक संभावनाएँ जन्म लेती हैं।

आज आवश्यकता न अंधानुकरण की है और न पूर्ण अस्वीकृति की; ज़रूरत है ऐसे रचनात्मक संतुलन की, जहाँ परम्परा और आधुनिकता साथ-साथ आगे बढ़ें। आध्यात्मिक सोच और वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोध में न होकर एक-दूसरे को मजबूत करें। लोकजीवन की जड़ों से जुड़ाव भी बना रहे और साथ ही वैश्विक सोच से भी संबंध हो। तभी भारतीय कला विश्व मंच पर अपनी अलग, स्पष्ट और सशक्त पहचान बना सकेगी।

सम्पर्क: द्वारा लवनीश आमेटा 15/234, गणेश नगर यूनिवर्सिटी रोड, उदयपुर (राजस्थान)- 313001

पाबू जी की पड़ का अद्भुत कथा-चित्रांकन एवं दृश्य कला का मनोहारी प्रदर्शन

डॉ. पूरन सहगल

मालवी लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति पर निरंतर शोध कार्य। विभिन्न राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में सतत् लेखन। अब तक अपराध पेशा एवं देह व्यवसाय में लिप्त जातियों पर समाज शास्त्रीय अध्ययन एवं लेखन। यायावर जाति वामनिया बंजारा कालबेलिया गाडोलिया सांटिया एवं अन्य जातियों पर अध्ययनरत्। दशपुर जनपद के संतों, सेनानियों पर लेखन। मालवी की नारी कवयित्रियों कृष्ण भक्त चन्द्रसखी नवनिधि कुँवर गवरीबाई, श्रृंगार की प्रसिद्धि कवयित्री सुन्दर एवं रूपमति आदि के साहित्य का संकलन संपादन एवं ग्रंथ प्रकाशन। अब तक 109 पुस्तकें प्रकाशित। दलित चेतना के सतर्क चिंतक, लेखक एवं समाजसेवी, विख्यात कहानीकार, आलेख लेखक, समीक्षक, वार्ताकार, शिक्षाविद् एवं प्रवक्ता। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर प्रसारित वक्तव्य एवं काव्य पाठ।

लोकजीवन का मूलाधार लोक देवता ही है। अनेक लोक देवताओं में रामदेव, देवनारायण, हरबूजी. डूंगजी, गोगापीर, तेजाजी और पाबूजी गाँव-गाँव घर-घर पूजे आराधे जाते हैं। पाबूजी राम अनुज लक्ष्मण के अवतार माने जाते हैं। वे गौरक्षक अवतार थे। उनकी घोड़ी कालमी शक्ति का अवतार थी। देवल चारणी ने गौमाता की रक्षा के लिए यह घोड़ी पाबूजी को भेंट में दी थी। पाबूजी ने अपने प्राणों को न्यौछावर करके भी गौरक्षा करने का देवल चारणी को वचन दिया था।

देवल ने पाबूजी के परवाड़े रचे और उन्हें गा-गाकर पाबूजी को उनके जीवनकाल में ही लोक नायक बना दिया।

सोढ़ी रानी के विवाह में तीसरा फेरा लेते लेते उन्हें सूचना मिली कि. जींदा राव खीची, देवल चारणी की गायें घेरकर ले गया है। सोढ़ी फूलवंती को अधपरणी छोड़कर वे जींदा राव पर चढ़ दौड़े। भयंकर युद्ध हुआ। देवल की गाये अपने प्राणों को न्यौछावर करके भी पाबू जी ने मुक्त करवाई। पाबूजी लोक नायक से लोक देवता बन गये।

देवल ने परवाणों को चारण कवियों ने परवान चढ़ाया और अनेक परवाडे और गाथाएँ रचीं। उन्हें गा-गाकर पाबू जी का यश विस्तृत किया। गाथाओं को दृश्य स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से पड़ चित्रावण की योजना बनी। पड़ का मूल अर्थ पट्ट होता है। पड़ को फड़द या फड़ भी कहा जाता है। पाबूजी की पड़ के चितरे जोशी होते हैं। ये जोशी अमरकोट के राज ज्योतिषी जयराम जोशी के वंशज हैं। सोढ़ी रानी अमरकोट के राजा सूरजमल सोढ़ा की बेटी थी।

पड़ को सम्पूर्णता में आने में एक लम्बा अंतराल लगा। धीरे-धीरे 'पड़' चित्राम ने देवता का रूप धारण कर लिया। पड़ वाचक नायक भोपा-भोपी अपने अभिनय, राग संगीत और भाव-भाषा के लटकों झटकों से पड़ प्रदर्शन कर ऐसा अदभुत रस रंग बिखरते हैं कि, दर्शक रात भर बैठकर पड़वाचन का आनंद लेते रहते हैं। कब प्रभात हो जाता है पता ही नहीं चलता। गाँव-गाँव गोगा और घर-घर पाबू की उक्ति व सत्यता सर्वत्र प्रचलित है।

जितनी अदभुत पाबूजी की कथा। उससे भी अधिक अद्भुत और प्रभावशाली चरणों-कवियों की लिखी पाबूजी की यशोगाथा। इन दोनों से भी अधिक मनोहारी है। भोपों नायकों की गायकी और उस पर रणत्ये की रणक-झणक से भरी पूरी रसपगी तंतुस्वर लहरी। लेकिन इन सबसे भी अधिक चमत्कृत करने वाली होती है भोपा-भोपी की दृश्य-श्रव्यकला प्रदर्शन की अभिनय क्षमता। विदेशों में ब्लेक थियेटर शैली को चुनौती देती यह भोपा-भोपी की पड़ प्रदर्शन कला दर्शकों को अपना 'आपा' भुला देने में इतनी सफल होती है, कि उन्हें अग-जग तक का भान नहीं रह जाता। समूचा वातारवण कलामय और कथामय हो जाता है। समाधि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैसा एक समय कृष्ण गोपियों के रास नृत्य में हुआ करता होगा। ठीक वैसी ही तन्मयता, एकात्मकता और रामरसता का अनोखा वातावरण उत्पन्न हो जाता है। दृश्य-श्रव्य शैली का यह प्रस्तुतिकरण अद्भुत अकल्पनीय और मनमोहक हो जाता है।

क्या यह अद्भुत और आश्चर्यजनक नहीं कि 'पड़' में चित्रित कथानक का कोई भी जीवित पात्र मंच पर सशरीर उपस्थित नहीं हो फिर भी ऐसा लगने लगे माने सारे के सारे पात्र हमारे समक्ष प्रस्तुत होकर उस अलौकिक गाथा को हमारे समक्ष प्रस्तुत कर रहे हों? घोड़े दौड़ रहे हों। तलवारें खन-खना रही हों। मारो काटो की ललकारें और घायलों की चीत्कारें कानों को झनझना रही हों। ऐसे ही अनेक कथा चित्र सजीव होकर हमारे सामने साकार होते हुए दिख पड़ते हैं। वस्तुतः यह सब साकार होते हुए दिख पड़ते हैं। वस्तुतः यह सब चमत्कार भोपा-भोपी की कला साधना और अलौकिक शक्तियों के कारण ही होता है। इसीलिए भोपा पड़ प्रदर्शन से पूर्व अपने इष्ट देवता पाबूजी से प्रार्थना करता है-

सगती देओ पाबू। आ पड़ मुंडे सूं बोले अर सगली गाथा की घुँड़ियाँ खोले।

अर्थात् शरीर से पाबूजी, यह पड़ मुँह से बोले और कथा के सारे अर्थों को स्पष्ट करें। इस आस्था और विश्वास के

साथ भोपा पड़' वाचन के लिए स्वयं को तैयार करता है। ऐसा कहते हैं भोपा-भोपी के शरीर में देवी शक्ति प्रवेश कर जाती है। यह है लोक में आस्था की ऊँचाई और दृश्य कला का चमत्कार।

पड़ वाचन वाले स्थान चौक चबूतरे को लीप-छाप कर पवित्र किया जाता है। दो बांसों के सहारे पड़ फैलाकर टांग जी जाती है। भोपा-भोपी विधिपूर्वक पड़ देवता की पूजा करते हैं। देवता का स्तुतिगान करते हैं। चारों और अंधेरा। सामने एकाग्रचित्त दर्शक श्रोता। स्त्री-पुरुष। पारम्परिक वेशभूषा से सजे सँवरे भोपा-भोपी। चटक रंग वाली आधी पिंडलियों तक घाघरी, पर कुंदनेदार टुकियों वाली जरीदार सतरंगी काँचली। जरी तारों से चाँद सितारों जडी चटकीली चूनर। माथे गुँथी रखड़ी। कलाई से कँधे तक सुहाग चडला। सुहाग चिन्हों की समूची रलक दलक पर लज्जा रक्षक नाक तक ढका घूँघट। पाँवों में बिछिया-पायजप की झीनी झंकार। दायें हाथ में लम्बी लौ वाला दीपक। ऐसा लगता हैं मानों कला की देवी स्वयं अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सम्पन्न अभूतपूर्व आभा मंडल सहित मंच पर उपस्थित हो या फिर माता भवानी शिव शंकर सहित लीला रचाने आन पहुँची हो। भोपे की घुटनों तक कसी ऊजल धोती। फुंदनेदार अंगरखा। सिर पर धजदार लहरिया पाग। गले में हँसुली और नाभा। कभी-कभी पैरों में कड़ा। हाथ में अपना लोक वाद्य रणत्या। जिसका तुम्बी वाला सिरा बायें कंधे पर सटा हुआ। डाँड बाहर थोड़ी सी नमी हुई। बायें हाथ की उँगलियाँ रणत्ये के तार पर और दायें हाथ में तांत और घुंघरू से सज्जा सँवरा धनुषाकार गज थामे अलाप लगाकर स्वर साधने को तमत्यार भोपा भोपी। दोनों के अंगों में बिजली जैसी थिरकन। भोपे की चपलता और भोपी की मान सुलभ शालीनता। वाह क्या रंग। क्या रंगत। क्या ही अद्भुत अनुपम छवि।। चारों ओर के अंधकार में रोशनी केवल भोपी के हाथ। अलौकिक दृश्य। जिसने देखा उसके भी बखान से परे। जिसने नहीं देखा उसके अनुमान से भी परे। पड़ पर चित्रित अनेक कथा चित्र। चारों और अँधेरा। प्रकाश में केवल भोपी के हाथ वाले दीपक का। भोपा रणत्ये पर गज घुमाता है। लम्बी आकाशी तान खींचता है। भोपी सावचेत हो जाती है। दर्शकों की आँखें और कान एक केन्द्र पर स्थिर सावधान। भोपे से अधिक सावचेत सक्रिय भोपी को रहना पड़ता है। उसे भोपे के कड़ावे को भी दोहरना है तथा कथा दृश्य के वर्णित चित्रावण पर दीपक से प्रकाश भी दिखाना है। कई बार दीप हाथ में लिये ही लूम भी लेना हैं। जिस चित्र पर कड़ावे के साथ ही भोपा गज की नोक छुआता है। भोपी कड़ावे के साथ ही भोपा गज की नोक छुआता है। भोपी कड़ावा दोहराते दोहराते उस दृश्य को उजागर कर देती है। इस प्रकार एक के बाद अगले कड़ावे की प्रतीक्षा करती भोपी दर्शकों को कथा और प्रदर्शन से बाँधे रखती है। मोहक होती है वह दृश्य आभा। 'पड़' की एक विचित्र बात यह कि, पड़ पर बने घटना-चित्र कथाक्रम के अनुसार क्रमबद्ध नहीं होते। एक कहीं उस छोर पर तो दूसरा कहीं दूसरे छोर पर। इस अक्रम चित्रण का भी मनोवैज्ञानिक कारण होता है। दर्शक को यह पता ही नहीं होता है कि अगला घटना दृश्य कहाँ है ? इससे उसमें जिज्ञासा बनी रहती है। भोपी ही ने अपने दीप प्रकाश से वह कथा चित्र प्रदर्शित करती है। इससे पूरी पड खुली रहने पर भी दर्शक पात्रों और घटना चित्रों को जोड़कर समझ नहीं पाता।

दर्शक की समस्त इंद्रियाँ एकचित्त होकर टकटकी लगाये नेत्रों व सावेचत कानों से समायोजित रहती है। बीच-बीच में भोपा भोपी के मनोरंजक लटके झटकेदार अभिनय और बोल कड़ावे वातावरण को सजीव बनाए रखते हैं। यह दृश्य-श्रव्य का पारंपरिक कथा प्रसंग प्रभात होने तक जारी रहता है। भोपा-भोपी अपने पवाड़े द्वारा मंच पर नौ रसों का अद्भुत समा बिखेर कर राग-रागनियों की रस वर्षा कर दर्शकों को रस विभोर कर देता है। पड़ को विश्राम देने के पहले 'सिवरण' होता है। एक बार फिर सभी देवी-देवताओं का सुमरिण किया जाता है। भोपा विरदावली बखानता है। समूचे कथानक को अरथाता है।

'भला नाम ठाकरां पाबूजी रा सुणै, सांभले जांकां रा। सुणे अंदाताजी की कथा चित्र लग आवेई वा। वधे धन ने पाप की खोज जावे। मंडगी हे ठाकर रे पाबूजी री बस्ती जोत। उठे-भाग जावे, बारा बरसां की बस्ती खेड़ा की चौथ।

अर्थात् "जो भी पाबूजी की कथा सुने समझे। कथा चित्रों का प्रदर्शन करवाये। उसके घर अन्न धन के भण्डार भरे रहें। जिस बस्ती में पाबूजी की जोत जली है। उस बस्ती से बारह बरस का दुख-दारिद्र निकल जावे। सबका शुभ-कल्याण हो।"

यह अरथावा खूब लम्बा होता है। इसी अरथावे में भोपा अपने लच्छेदार भाषा में सम्पूर्ण कथा का सार संक्षेप भी एक बार फिर से दोहरा देता है। अंत में हाथ जोड़कर भोपा-भोपी सब का अभिवादन करते हैं। पड़ चित्र को नमन करते हैं तथा बसती मां बाप कहकर अपने पड़ प्रदर्शन व वाणी को विश्राम देते हैं। पड़ प्रदर्शन की इस विधा के अतिरिक्त कथा बखान की और भी कुछ विधाएँ प्रचलित है। समय और परिस्थितियों के मान से जो विधा आवश्यक होती है। उसका प्रदर्शन, वाचन अथवा वादन होता है। दोनों नवरात्रि व यजमानों की इच्छा व मन्नत मनौती के अनुसार यह पड़ प्रदर्शन होता ही रहता है और लोकजन सदा अपने आस्तिक मन से अपने लोक देवताओं को कंकोतरियों भेजकर नोता देता हुआ प्रार्थना करता ही रहता है-

'पाबू, हरबू, रामदे मांगलिया मेहा।
पांचों पीर पधार जो, गोगा जी जेहा ।।

यह पड़ चित्रावण एवं प्रदर्शन पाबू जी की गाथा का जीता-जागता गीत-संगीत-नृत्य एवं नाट्य का बहुत बडा प्रयोग है। ऐसा ही प्रदर्शन लगभग सभी गाथाओं का किया जाता है।

सम्पर्क: निदेशक- मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा जि. नीमच (म.प्र) मो. 9424041310

■

संवाद में संवाद

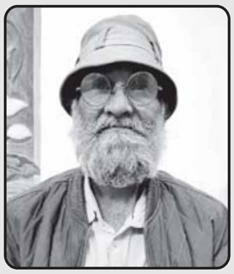

डॉ. गगन बिहारी दाधीच

डॉ. गगन दाधीच समकालीन भारतीय कला के एक महत्वपूर्ण चित्रकार, टेराकोटा कलाकार, कला शिक्षक और लेखक हैं। वे राजस्थान के नाथद्वारा स्थित राजकीय महाविद्यालय में ड्रॉइंग एवं पेंटिंग के प्राध्यापक रहे तथा कला संस्थान टखमण–28, उदयपुर के सक्रिय सदस्य हैं।डॉ. दाधीच को राजस्थान ललित कला अकादेमी, नेहरू युवा केंद्र, राज सिंह पुरस्कार, यूजीसी छात्रवृत्ति सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान एवं फैलोशिप प्राप्त हुई हैं। टेराकोटा पर उनके शोध एवं प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। उन्होंने देश-विदेश में अनेक कार्यशालाओं, रेज़ीडेंसी कार्यक्रमों और कला शिविरों में भाग लिया, जिनमें वेल्स (यू.के.) और फ्रांस की अंतरराष्ट्रीय रेज़ीडेंसी शामिल हैं।उनकी एकल व समूह प्रदर्शनियाँ जयपुर, उदयपुर, अहमदाबाद, दिल्ली, मुंबई, जैसलमेर, काठमांडू, कार्डिफ़ (यू.के.) आदि प्रमुख कला केंद्रों में आयोजित हो चुकी हैं। उनके कला-कार्य राजस्थान ललित कला अकादेमी, जवाहर कला केंद्र, दूरदर्शन, भारतीय दूतावास (नेपाल व फ्रांस) तथा अनेक सार्वजनिक व निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं।

वैश्वीकरण ने भारतीय कला जगत को भी कई रूपों से प्रभावित किया हैं। इसके कई रुप प्रतिरुप दिखाई देते हैं जिनमें वैश्विक कलाकारों के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजनाओं की भूमिका बेहद अहम् रही हैं। गत तीन दशक में ऐसी कई सांस्कृतिक योजनाओं ने मूर्त कला लेकर भारतीय कला जगत के रचनात्मक फलक को वृहद बनाया हैं।

दरअसल, वैश्विक सांस्कृतिक योजनाओं का अहम् पहलू यह रहा कि वैश्विक कलाकारों के मध्य सृजन पर संवाद होता हैं जो तकनीक व रचना प्रक्रिया से लेकर विषयवस्तु के प्रस्तुतिकरण तक विस्तारित होता हैं। एक भारतीय कलाकार किस रुप में यूरोपिय देशों की संस्कृति, जीवन शैली, म्यूजियम में संग्रहित विविध कला रुपों का प्रतिनिधित्व करती कलाकृतियां को किस रुप व संदर्भ में देखता हैं। या यूं कहें कि यूरोपिय देशों के कलाकार किस रूप में भारतीय संस्कृति के साथ ही यहां के दुर्ग, स्थापत्य, शिल्प व चित्रण परम्परा को देखते-परखते व प्रेरित होते रहे हैं।

इस आलेख का मंतव्य राजस्थान के सांस्कृतिक परिवेश से संदर्भित है तथा उन विदेशी कलाकारों को संदर्भित करने का हैं जिन्होंने मोलेला एवं स्टुडियों 25 टेराकोटा में प्रवासरत रहकर माटी व सिरेमिक विधा में कलापरक कार्य किया। मुझे अपनी कलायात्रा के दौरान वेल्स (ब्रिटेन) व ल-बौन (फ्रांस) में रेजिडेंसी फेलोशिप के रुप में टेराकोटा व सिरेमिक में सृजन रुप गढ़ने का अवसर मिला। युवा अवस्था में मिले इन अवसरों ने मेरे रचनात्मक व तकनीकि पक्ष को प्रभावित किया। यह भी स्पष्ट कर दे कि मैं गत चार दशक से मिट्टी से बनी लोक देवी देवताओं की कला के लिए प्रसिद्ध मोलेला गांव में रचनाशील रहा। वहां के कुंभकारों के साथ काम करना बेहद रोचक व प्रेरणास्पद रहा। वो माटी में लोक देवी-देवताओं की तो मैं उसी माटी से नवीन रुपकारों को लौकिक संदर्भ में रचता रहा। कुंभकारों के मोहल्ले में मैंने एक छोटा-सा आवासीय स्टुडियो बनाया जहां दो दशक से ज्यादा कलाकर्म किया, बाद में मोलेला

मोलेला गाँव के स्टूडियो - 25 में
नीदरलैण्ड के कलाकार एलेन गिलेन

गांव से 5 किमी. दूर एक पहाड़ी के मध्य नया स्टुडियों डेवलप किया, जो वर्तमान में मेरी सृजन स्थली हैं।

कुछ मेरे विदेशी कलाकार मित्रों का इन दोनों ही स्टुडियों में आना-जाना रहा। मेरी सृजन संवाद की प्रक्रिया उन कलाकारों से अनवरत रही। यूं तो कई विदेशी कलाकारों ने मेरे स्टुडियो में प्रवासरत रह कर कला कर्म किया किंतु इस आलेख में से उन कलाकारों का जिक्र करना चाहूंगा जो राजस्थान के सांस्कृतिक रुप, रंग-बिरंगे रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, दुर्ग व मंदिर स्थापत्य से प्रेरित रहकर अपनी दृष्टि से नवीन आकारों को प्रस्तुत किया।

सर्वप्रथम मैं फ्रांस के कलाकार प्रो. विंसेंट बैरी का जिक्र करूंगा जो तीन दशक से लगातार राजस्थान आते रहे हैं और मुख्यतः मोलेला प्रवास के दौरान माटी में ही इन्होंने अपने त्रिआयामी शिल्प रचे। यहीं नहीं, विंसेंट ने माटी के इन शिल्पों की कला प्रदर्शनी न केवल फ्रांस की कलादीर्घा में प्रदर्शित की अपितु मेरे साथ जुगलबंदी शीर्षक भी प्रदर्शनी में सिटीपैलेस, उदयपुर, जयपुर, अहमदाबाद व भोपाल के भारत भवन की कलादीघाओं में भागीदारी रहीं।

एकोलद व बोजार, पेरिस से ही शिक्षा प्राप्त विंसेंट ने इसी महाविद्यालय में तीन दशक तक अध्यापन कार्य किया और विविध कला माध्यमों में निरन्तर सृजनरत रहें। राजस्थान से उनका विशेष लगाव रहा। वे बताते भी है कि राजस्थान की पृष्ठभूमि बहुरंगी हैं, जो कलाकारों को कई रुपों में प्रभावित करती है। इनकी कला में रंग व रंगतों के साथ ही लौकिक संस्कृति के प्रतीक भी प्रेरणास्पद दिखाई देते हैं। मोलेला प्रवास की अवधि में विसेंट से कलारुपों पर संवाद भी कायम रहा ओर संयुक्त रुप से रचनाशील भी रहें। 2 दशक पूर्व जब विंसेंट ने मोलेला की माटी में रुपाकार बनाये तब राज्य में सूखा था, पानी की बेहद कमी थी तो विंसेंट ने मयूर व मृदभाण्ड आदि की रचना में पानी की कमी को दर्शा कर पानी के सामाजिक व रचनात्मक पक्ष को उजागर किया। मोलेला, गोगुन्दा, चितौडगढ, कुंभलगढ़, भोपाल व पोकरण आदि की यात्राओं में वों चयनित रुपों का रेखांकन तो करते ही, उनको अपने वृहदाकार शिल्प में आकारित कर देशज रुपाकारो को सृजनात्मक भाषा में भी रचते रहे हैं।

रचना संवाद के इस क्रम में स्वीडन मूल के कलाकार रेज फाल्हा का जिक्र करना समीचीन होगा। मृणशिल्प व सिरेमिक के साथ ही फोटोग्राफी को अपना माध्यम बनाने वाले रेज की कला दृष्टि बेहद सूक्ष्म रही हैं... सामान्य विषय रुपाकार को नई भाषा में रचना इनका मुख्य शगल हैं। राजस्थान, विशेष रुप से मोलेला की मृणकला के साथ ही लोक देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को खरीदनें वाले भोपा समुदाय की जीवन शैली पर भी इन्होंने कलात्मक फोटोग्राफी व डॉक्युमेंटेशन कर देश-विदेश में प्रदर्शित किया हैं।

स्टूडियो - 25 में फ्रांस के कलाकार विसेंट बैरी

रेज का मानना है कि कलाकारों को अपने आस-पास के परिवेश को कलाकार की दृष्टि से देखना चाहिये.... उसे नवीन अर्थ में संयोजित कर एक नई कला भाषा को विस्तारित किया जाना चाहिये। वो स्पष्ट कहते है कि यहां के कलाकारों को पाश्चात्य् जगत से नजर हटाकर देशज तत्वों को आत्मसात करना चाहिये.... लेकिन हाँ, तकनीकि पक्ष का आदान-प्रदान भी रचना प्रक्रिया को बढ़ाता है। वो स्वीकारते है कि राजस्थान की मृणकला बेहद समृद्ध हैं तथा लकड़ियों से अवाड़ा पकाने की तकनीक भी इन्होंने मोलेला व गोगून्दा के कुंभकारों से सीखी। उल्लेखनीय है कि यूरोप के कुछ देशों में ही वुड फायर तकनीक का प्रयोग टेराकोटा, सिरेमिक पकाने में किया जाता हैं। मुख्यतः वहां गैस व इलेक्ट्रिक फर्नेस का प्रयोग प्रचलन में हैं।

आयरलैण्ड मूल की जैन जरमाईन का नाम पोटरी के साथ ही सिरेमिक शिल्पों के लिए भी जाना जाता है। विश्व के कई कला केन्द्रों पर अपने तकनीकि कौशल का डेमोस्ट्रेशन दे चुकी जैन ओबवरा तकनीक एवं पेपरक्ले में सिद्धहस्त हैं। स्टुडियो 25 टेराकोटा परिसर में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला शिविरों में इन्होंने ओबवरा व पेपरक्ले की रचनात्मक संभावनाओं पर प्रायोगिक प्रदर्शन भी किया। उनका मानना है कि लोक कलाकारों से हम प्रेरित होते रहते हैं कितु हम उन्हें प्रेरित नहीं कर सकते। लोक कलाकार हमारे तकनीकि पक्ष को स्वीकार करते रहे है किंतु इससे उनके कला कौशल में ही कमी आती रहेगी। जैन का मानना है कि कलाकारों के लिए प्रकृति के साथ ही सामाजिक संवाद होना जरूरी है। यहीं देखे हुये रंग व रुपाकार जब कलाकार आत्मसात करता है तभी रचनात्मक रुप आकारित हो पाते हैं। इन्होंने दिल्ली के इंडिया हेबिटेट सेंटर में अपने सिरेमिक शिल्पों को प्रदर्शित किया हैं, साथ ही मेरे साथ संयुक्त रुप से उदयपुर, जयपुर, अहमदाबाद व बड़ौदा में भी प्रदर्शनियों का आयोजन किया।

डच मूल के कलाकार एलेन गिलेन वर्षो से जयपुर, उदयपुर व मोलेला आते रहे हैं। प्राचीन गली मोहल्ले की संस्कृति से इन्हें लगाव हैं तथा इनका मानना है कि कलाकार की कलर पेलेट से ज्यादा राजस्थान में रंग व रंगतो की बहार हैं। मेवाड़ का शिल्प स्थापत्य इनकी प्रेरणा के स्थल रहें है तथा इसी भावना से इन्होंने अपने चित्र व माटी के शिल्पों में नारी आकृति की गतिमय लय को उकेरने का प्रयास किया है। अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में वो बताते है कि खूब घुमता हुँ, खूब स्केच करता हूँ और फिर जब मैं अपना काम शुरु करता हूँ तब में नवसृजित रुपाकारों से संवाद स्थापित करता हूँ, मजा इसी में है कि हम अपने नवजात आकारो को मनचाही भावनाओं से भर दें।

फ्रेंच कलाकार रिबाऊ स्वप्रेरित कलाकार है जो चार दशक से भारत आते रही है। नैसर्गिक प्रकृति को अपनी प्रेरणा मानने वाली रिबाऊ को राजस्थान का रंगीन परिवेश भी प्रेरित करता है। लोक संस्कृति व मिथकों को इन्होंने अपना रचना का आधार बनाया है तथा गत 3-4 वर्षो से स्टुडियो 25 टेराकोटा में प्रवासरत रहकर यथार्थपरक नव मुखाकृतियों को जीवन्त कर रही है। वो मानती भी है कि मैं और मेरा शिल्प एक ही हैं। रिबाऊ का रुझान मुलतः भारत की मृण कला के प्रति रहा है और इसी भावना से इन्होंने तमिलनाडु, गुजरात, बनारस व केरल के साथ ही कुंभकारो की कला के लिए प्रसिद्ध राजस्थान के कई गांवों का अवलोकन भी किया हैं।

संपर्क : 21जे, सुखाड़िया नगर,
नाथद्वारा-313301 राजस्थान

■

कला भाव

ब्रज रतन जोशी की एक कलाकार-कवि पर आत्मीय टीप

ब्रज रतन जोशी

ब्रजरतन जोशी संपादक, आलोचक, अनुवादक और शोधकर्ता हैं। साहित्य, संस्कृति, नाट्यालोचना और लोक-विद्याओं में उनकी विशेष रुचि है। उनकी प्रमुख कृतियों में भाषा एक सराय है, नाट्यन्वेषण, अनुभव और उत्कर्ष, जल और समाज, हिन्दी व्याकरण सार आदि शामिल हैं। वे राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर में सह-आचार्य (हिन्दी) हैं। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के सह-अध्येता तथा साहित्य अकादमी, दिल्ली के हिंदी परामर्श मंडल के सदस्य रहे हैं। 2019–2023 तक राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' का संपादन किया। श्री जोशी को भत्तमाल जोशी पुरस्कार (1997) तथा राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी द्वारा संस्कृति सम्मान (2022, 2023) से सम्मानित किया गया है।

एक कवि जब चित्रकार हो और एक चित्रकार जब कवि हो,तो उसका रचनात्मक संसार केवल दो माध्यमों का जोड़ या आदान प्रदान भर नहीं रह जाता,बल्कि एक ही चेतना की दो अभिव्यक्तियां में मुखरित होता है। इसलिए ऐसे रचनाकार के यहां शब्द दृश्य की तरह सोचते हैं और रंग कविता की तरह बोलते हैं।

हिंदी काव्य परिदृश्य में अमित कल्ला ऐसे ही रचनाकार हैं।लगभग पच्चीस वर्ष से तो मैं उनकी यात्रा को देख समझ रहा हूं।उनके भीतर के कवि का वैशिष्ट्य इसमें है कि वह अर्थ को लिखता नहीं वरन रचता है।कभी रेखा से, कभी मौन से तो कभी रंगों के मेल से और इसके साथ ही अपने पाठक-दर्शक को देखने और पढ़ने के बीच एक नए अनुभव भूगोल में ले जाता है। आज वसंत पंचमी पर उनकी एक कविता के अंतर्पाठ से उनके रचनाकार को समझने का प्रयत्न हैं।

श्वेत में घुला हुआ पहला रंग,
जिसे आँख नहीं, अंत:करण पहचानता है
रेखा यहाँ अभ्यास नहीं करती,
स्मृति की तरह लौट आती है
पुस्तक बंद है, फिर भी अर्थ बह रहा है,
जैसे नदी बिना नाम के जानती हो अपना पथ
दृष्टि विचार में बदलती
और चित्र, स्वयं को जानने लगता है।

यह रचना अपने आकार में भले ही छोटी हो, पर इसमें व्याप्त संवेदनात्मक सघनता और अनुभूत्यात्मक अन्वेषण उसे बड़ी रचना बनाता है।

यह कविता 52 शब्दों और 13 पंक्तियों का ऐसा संसार है जिसमें प्रविष्ट होते ही हमें यह भान होता है कि यह किसी दृश्य का वर्णन नहीं है, बल्कि दृश्य बनने की प्रक्रिया को खोलने का काव्य उपक्रम है। यहाँ रंग, रेखा, पुस्तक, नदी, दृष्टि और चित्र—ये सब वस्तुएँ नहीं, बल्कि चेतना की अवस्थाएँ हैं। अपनी शैल्पिक संरचना में यह देखने से जानने तक की यात्रा की कविता है।

"श्वेत में घुला हुआ पहला रंग,
जिसे आँख नहीं, अंत:करण पहचानता है"

दार्शनिक दृष्टि से यह पंक्ति ज्ञानमीमांसा की मूल समस्या को स्पर्श करती है।ज्ञान का स्रोत क्या है? क्या ज्ञान इंद्रियों से आता है या चेतना के किसी गहरे तल से? "श्वेत में घुला पहला रंग" कोई प्रत्यक्ष रंग नहीं है; यह संभावना है, बीज है। यह उस ज्ञान की ओर संकेत करता है जो अनुभव से पहले मौजूद रहता है। आँख यहाँ असमर्थ है, क्योंकि आँख केवल रूप पकड़ती है; जबकि अंत:करण उस पूर्व-बोध को पहचानता है जो रूप बनने से पहले उपस्थित होता है।

यह विचार भारतीय दर्शन की प्रतिभा की अवधारणा से जुड़ता है ,जहां ज्ञान तर्क या अभ्यास से नहीं, बल्कि भीतर से प्रस्फुटित होता है। पश्चिमी दर्शन की भाषा में इसे पूर्व-चेतना या इंट्यूशन कहा जाएगा। यहाँ कवि यह संकेत देता है कि सत्य का पहला रंग देखने से नहीं, पहचान से आता है।

"रेखा यहाँ अभ्यास नहीं करती,
स्मृति की तरह लौट आती है"

आध्यात्मिक दृष्टि से यह पंक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साधना को प्रायः अभ्यास माना जाता है।दोहराव, अनुशासन, रेखा खींचने जैसा प्रयास लेकिन यहाँ रेखा अभ्यास नहीं करती; वह लौट आती है। यह लौटना आत्मा की उस स्मृति जैसा है जिसमें कुछ नया नहीं सीखा जा रहा, बल्कि भूला हुआ याद आ रहा हो।

यह अवधारणा उपनिषदों के उस विचार से मेल खाती है कि ज्ञान अर्जन नहीं, अनावरण है। आत्मा पहले से जानती है; साधना केवल परदा हटाती है। इसलिए रेखा का बनना एक आध्यात्मिक घटना है-वह भीतर की स्मृति का बाह्य रूप है।

"पुस्तक बंद है, फिर भी अर्थ बह रहा है"

यहाँ पुस्तक प्रतीक है शास्त्र का। आध्यात्मिक परंपराओं में कहा गया है कि अंतिम सत्य ग्रंथों में बंद नहीं रहता। जब चेतना जाग्रत होती है, तब अर्थ स्वयं बहने लगता है। यह बहाव नदी की तरह है - स्वतः, बिना प्रयास के।

साहित्यिक दृष्टि से यह कविता अत्यंत संयत और सघन प्रतीकात्मकता से भरी है। इसमें कोई अलंकार प्रदर्शन नहीं है; भाषा लगभग वस्त्र आभूषण से मुक्त है। श्वेत, रंग, रेखा, पुस्तक, नदी आदि बिंब दृश्य से अधिक वैचारिक हैं।

"जैसे नदी बिना नाम के जानती हो अपना पथ"

यह उपमा कविता का केंद्रीय बिंब है। नदी यहाँ कवि,

पाठक, या चेतना स्वयं हो सकती है। नाम पहचान है, वर्गीकरण है। लेकिन साहित्य का गहन अनुभव नामों से परे घटित होता है।

कविता यह बता रही है कि सृजन और अर्थ दोनों ही अपने पथ को जानते हैं, भले ही उन्हें कोई नाम न दिया गया हो।

यहाँ मौन की भाषा काम कर रही है। कविता बहुत कुछ कहती है, पर संकेतों में। यही आधुनिक काव्य की विशेषता है।वह पाठक को सह-रचनाकार बनाती है। अर्थ बताया नहीं जाता, स्वतः अपने बहाव में मिलता है।

मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह कविता चेतना की गहरी परतों में उतरती है। "अंतःकरण" को यदि आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में कहें, तो यह अवचेतन या पूर्व-चेतन का क्षेत्र है। पहला रंग वही है जो व्यक्ति किसी अनुभव को अर्थ देने से पहले महसूस करता है।

"स्मृति की तरह लौट आती है"

यहां स्मृति व्यक्तिगत भी हो सकती है और सामूहिक भी। कई बार हम किसी कला, किसी दृश्य, किसी कविता से इसलिए जुड़ते हैं क्योंकि वह हमारे भीतर किसी अनजानी स्मृति को छू जाता है। यह कविता उसी क्षण को पकड़ती है।

"दृष्टि विचार में बदलती"

यह पंक्ति संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का सार है। देखने और सोचने के बीच एक रूपांतरण होता है। यहाँ कवि कविता में उस क्षण को दर्ज कर रहा है, जब इंद्रिय अनुभव विचार बन जाता है। यह रचनात्मक चेतना का निर्णायक बिंदु है।

"और चित्र, स्वयं को जानने लगता है।"

यह कविता का सबसे गहन दार्शनिक क्षण है। यहाँ सृजनकर्ता पीछे हट जाता है और सृजन स्वयं चेतन हो उठता है। चित्र अब केवल वस्तु नहीं, विषय बन जाता है। यह आत्मपरकता कला की उच्चतम अवस्था है, जहाँ कला अपने रचयिता से स्वतंत्र होकर स्वयं का अर्थ खोजने लगती है।

दार्शनिक रूप से यह स्व-चेतना का क्षण है। आध्यात्मिक रूप से यह साक्षी भाव है। साहित्यिक रूप से यह आधुनिकता का संकेत है, जहाँ रचना आत्मसंवादी हो जाती है। और मनोवैज्ञानिक रूप से यह रचनात्मक तल्लीनता की अवस्था है, जहाँ कर्ता और कर्म का भेद मिट जाता है।

अस्तु ,यह कविता किसी एक अनुशासन में सीमित नहीं रहती। यह दर्शन से प्रश्न उठाती है, अध्यात्म से उत्तर लेती है, साहित्य में सौंदर्य देती है और मनोविज्ञान में उसे अनुभव बनाती है।

इसका केंद्रीय स्वर यह है कि सच्चा अर्थ बाहर से नहीं आता; वह भीतर से बहता है। देखने से पहले पहचान, अभ्यास से पहले स्मृति, नाम से पहले पथ- यही इस कविता का कथ्य है।

यह कविता हमें सिखाती है कि कला का अंतिम उद्देश्य वस्तु को दिखाना नहीं, चेतना को जाग्रत करना है। दृष्टि जब विचार बनती है, और चित्र जब स्वयं को जानने लगता है, तब कविता केवल कविता नहीं रहती,वह आत्मबोध का एक शांत, लेकिन गहरा क्षण बन जाती है।इन क्षणों को पकड़ना ही कवि की असली कमाई है।

सम्पर्क : अक्षयलोक, करमीसर मार्ग, नत्थूसर गेट के बाहर, बीकानेर–334004 मो. 9414020840

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email: bhanwarlalshrivas@gmail.com I kalasamaymagazine@gmail.com
मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

हेमंत शेष की कविताएं

हेमंत शेष

हेमंत शेष समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, प्रखर कला-आलोचक और राजस्थान प्रशासनिक सेवा (RAS) के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी हैं। एक शिक्षित एवं साहित्यिक परिवेश में जन्मे शेष जी को कविता-संस्कार अपने पिता (जो वकील होने के साथ कवि भी थे) से विरासत में मिला। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत वे राजस्थान प्रशासनिक सेवा में चयनित हुए और महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन किया। प्रशासनिक दायित्वों के समानांतर उनकी साहित्यिक यात्रा निरंतर सक्रिय और सृजनशील रही। अब तक उनकी 28 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 13 कविता-संग्रह शामिल हैं। उनके चर्चित काव्य-संग्रह 'जगह जैसी जगह' के लिए उन्हें प्रतिष्ठित बिहारी सम्मान से अलंकृत किया गया है...

रेखाचित्र: डॉ सुरेंद्र सिंह चुंडावत

01.

कहीं नहीं जाते हैं हम जब कहीं जाते हैं
जगहें वहीं की वहीं रहती हैं
हम प्रविष्ट हो जाते हैं
सिर्फ
एक बदले हुए दृश्य में.

02.

तुम्हारी आँख के बादल
और गर्भवती धरती की नमी के लिए
जब रास्ते
शब्दों से निकलना शुरू होंगे
तभी होगी सुबह।
अर्थों के शिशु।
सूरज के घोड़े।
रोशनी की चिड़िया।
हैं सब समाए हुए सदियों से
सिर्फ़ शब्द की आँख में।

रेखाचित्र: डॉ सुरेंद्र सिंह चुंडावत

03.

बीतना समय का
जैसे रामनारायण की सारंगी पर
क्रमश: ख़त्म जैजैवन्ती।

04.

तितलियों के दाँत नहीं होते।
सुन्दरता के लिए शायद ज़रूरी है
कुछ बातों की अनुपस्थिति।

रेखाचित्र: डॉ सुरेंद्र सिंह चुंडावत

05.

अंतरिक्ष के मैदान में
उड़ती पृथ्वी की फ़ुटबाल
इसे ठोकर मारते हैं
कुछ एटमी-पाँव
स्टेडियम की तालियाँ हाहाकार में बदलने वाली हैं
एक फूल
चुपचाप कहीं खिलना चाहता है
एक चिड़िया
शाम से पहले अपना घोंसला
पूरा कर डालना चाहती है
घर की रसोई में
खड़क रहे हैं बर्तन
लोग
पवित्र नदियों में डुबकियाँ लगा रहे हैं
हर दृश्य
एक पुरानी इबारत है
बस एक नई बुलेट-ट्रेन
भविष्य में सोए हुए बच्चों को चीर कर आगे बढ़ रही है
अज्ञात स्टेशन की तरफ़

सम्पर्क: 501, हेवेन्स टैरस, ग्रीन विलास, मांगयावास, स्वर्णपथ दक्षिण, 6 डी इंजिनियर कॉलोनी, मानसरोवर, जयपुर- 302020 मो. 9314508026

■

कला कविता

प्रो. रतन चौहान की कविता

प्रो. रतन चौहान

मध्यप्रदेश के रतलाम ज़िले के इटावाखुर्द में जन्मे प्रो. रतन चौहान समकालीन हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण कवि, कथाकार और अनुवादक हैं। अंग्रेज़ी साहित्य के सेवानिवृत्त प्राध्यापक के रूप में उन्होंने अध्यापन और सृजन—दोनों क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया है। कविता, कहानी और अनुवाद की पचास से अधिक पुस्तकों के माध्यम से उनकी साहित्यिक सक्रियता व्यापक रूप से स्थापित है।उन्होंने निराला, मुक्तिबोध और जयशंकर प्रसाद जैसे उत्कृष्ट साहित्यकारों की रचनाओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर भारतीय साहित्य को वैश्विक पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपको हाल ही में प्रतिष्ठित "विष्णु खरे फैलोशिप" प्राप्त हुई है।

कला को एक रचनाकार परखता है तो एक नई रचना का जन्म होता है। प्रख्यात चित्रकार श्री महावीर वर्मा की कला पर केन्द्रित वरिष्ठ कवि प्रो.रतन चौहान की कविता इसका प्रमाण है। पढ़िए यह ताज़ा कविता-

- संपादक

कलाकृति : महावीर वर्मा

वासती

बड़ी विकट होती है सुंदरता की चाह
एक पागलपन सवार हो जाता है
आदमी के माथे पर,
प्रकृति का सौंदर्य,स्त्री का सौंदर्य,
मनुष्य हृदय का सौंदर्य
कहां-कहां बिखरा पड़ा है सौंदर्य,
सौंदर्य की करोड़ों करोड़ छवियां।
एक जुनून तारी हो जाता है,
अपने यहीं के चित्रकार दुर्गा शर्मा को देखो न
मंदसौर के सेठों की
हवेलियों की दीवारों पर
पहले हल्का पानी छिड़कता
फिर नाखूनों से आहिस्ता-आहिस्ता
ऊपर की चूने की परत हटाता
वह खोज लाया सुंदरता का अद्भुत संसार
जो न मालूम कितने दशकों पहले
दीवारों पर बने चित्रों में उकेरा गया था,
दुर्गा ने, कि मिट्टी नहीं जाएं सुंदरता की छवियां
धुंधला नहीं हो जाए मनुष्य जीवन का सौंदर्य
उसकी भावनाओं, उसके राग रंग
उसके हर्ष- विषाद का सौंदर्य,
अनुकृतियां बना ली उनकी
इतिहास के पन्नों से बहती हुई
सुंदरता की धारा हम तक आ गई ।
राजा - महाराजा, अमीर-उमरा,जागीरदारों की
ज़िंदगियों में ही नहीं बिखरा पड़ा है सौंदर्य
वह,खड़ी लाल मिर्च का भजिया खाते
और मांदल पर थिरकते
झाबुआ के भीलों में भी है
पेरिस छोड़कर पाल गोगां भागा
ताहिती के आदिवासियों के बीच
उनके झोपड़ों की दीवारों को उसने
कैनवस बना दिया
यामिनी रॉय संतालों के बीच आ गए
कि वहां आग थी, ज़िंदगी थी,
जिंदगी की जद्दोजहद थी ।
महलों की अपनी कलावीथिकाएं हैं
राज मालाएं और कृष्ण और राधा की
प्रणय लीलाएं भी
दर्पण में अपना निर्वसन रूप निहारती
युवतियां भी हैं,
पर धान काटती हुए औरत की भी
अपनी सुंदरता है
चटख सूरजमुखी फूलों का एक अगाध समुद्र

कलाकृति : महावीर वर्मा

रंगों में उड़ेल दिया था वान गो ने
सतमंज़िला कोठियो से निकल कला आ गई
लंबी काली हिंदुस्तानी लड़कियों और औरतों के बीच
रवि वर्मा ने हिंदुस्तान राज दरबारों में देखा
अमृता शेरगिल ने रंगों से कहा
कि हिंदुस्तान तो यह है ।
हिंदुस्तान ही में ढूंढ रहे हैं
मेरे यहां के चित्रकार महावीर वर्मा मुसव्विर,
कभी मेरे मित्र कवि निर्मल शर्मा ने
देवास के अफ़ज़ल से पूछा था
कि तुम्हें क्रांति की लपट चित्रित करना होगा
तो आग का रंग क्या होगा ?
मतलब यह कि कलाएं भी
क्रांति की हमसफर होती हैं
उनकी आंखों में होता है
बेहतर जिंदगी का सपना
मैं नहीं जानता रेखाओं और रंगों की भाषा
और उसकी तालीम भी नहीं है मुझे
बाम्बे की आर्ट गैलरी भी देखी है
लुव्र का भी नाम सुना है
और कितने-कितने कला नक्षत्र हैं
मातिस, सेजां, रज़ा ,हुसैन , बेंद्रे , तैयब मेहता, दोत्रां, पिकासो ।
पर इतना जानता हूं कि
यह सब सौंदर्य के रखवारे हैं , साधक हैं
जीवन और ब्रह्मांड का अनंत सौंदर्य
जिसे तबाह करने तुले हैं सौंदर्य के हत्यारे
युद्धों के अपराधी , ईर्ष्या और
घृणा के व्यापारी ,
अगर ऐसा नहीं होता तो
पाब्लो पिकासो की ग्वेर्निका नहीं होती ।
इंदौर के प्रभु जोशी वीरान मकान को
चित्रित करते रहे
उजड़ गए मकानों को वे शायद भरना चाहते थे जीवन संगीत से ।
मैं फिर कह रहा हूं कि मेरी आंख समर्थ नहीं है
कि क्या व्यंजित करती हैं चित्र लिपियां
रंगों का आरोह अवरोह
और कला के अर्थ कहां समझ में आते हैं सेंतमेंत
मित्र महावीर वर्मा से कहता रहता हूं
मुझे सिखाओ तुम्हारी इस चित्रकारी का तिलिस्म
बस इतना जानता हूं कि इन चित्रों में
साधारण लोग हैं ,उनके सुख दुःख और संघर्ष हैं।
मैं उनसे वही कहना चाहता हूं
जो नेरुदा को बाहों में भरते
किसान ने कहा था कि
यह तो नहीं जानता कि तुम्हारी कविता क्या है
पर मुझे लगता है कि ये मेरे दिल के नज़दीक है
कि इसमें मेरी बात है ।
मालवा और राजस्थान बोलता है तुम्हारे चित्रों में
इनमें श्रम का सौंदर्य है
कला की ख़ामोश आग है
और आग के लिए दुनिया जहान में
क्यों भटका जाए !
तुम्हारे पास ही चला आऊं
जैसे गांव में घर के सामने
लालसिंग बा की परेम आती सुबह-सुबह घर
और मेरी मां से कहती
'मामी वासती'।

कलाकृति : महावीर वर्मा

संपर्क - 6, कस्तूरबा नगर, रतलाम (म.प्र.)- 457001

कला कविता

विजय कांत आर्य की कविताएं

विजय कांत आर्य

विजय कांत आर्य समकालीन भारतीय कला जगत के सक्रिय और बहुआयामी कलाकार हैं, जिन्होंने देश-विदेश में अनेक महत्वपूर्ण प्रदर्शनियों में भाग लेकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उनकी कला यात्रा में ज्यूरिख, यांगून और काठमांडू जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुतियाँ शामिल हैं। वहीं भारत में AIFACS, जवाहर कला केंद्र तथा देश की विभिन्न प्रमुख दीर्घाओं में उनकी उपस्थिति रही है। उन्हें स्वर्ण एवं रजत पदकों सहित "नंदलाल बोस कला रत्न पुरस्कार" और "आर्ट एक्सीलेंस अवॉर्ड" जैसे सम्मान प्राप्त हुए हैं। जो उनके प्रयोगशील तथा अभिनव कला अवदान की पुष्टि करते हैं। आर्य ने नेपाल में लुम्बिनी वर्ल्ड पीस फोरम और अंतर्राष्ट्रीय कला शिविरों में भाग लेते हुए कला के माध्यम से सांस्कृतिक संवाद को भी समृद्ध किया है। शैक्षिक रूप से उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। चित्रकला के साथ-साथ उनकी संगीत तथा साहित्य जगत भी महत्वपूर्ण उपस्थिति है। तबला वादन के साथ वे निरंतर ग्राफिक्स, वेब डिजाइन, फिल्म तथा एनीमेशन जैसे क्षेत्रों में भी सक्रिय रहे हैं।

THE STARRY NIGHT
June 1889, Oil on Canvas, MOMA, Museum of Modern Art, New York (Acquired through The Lillie P Bliss Bequest)

सेंट रेमी की
खिड़की से दिखती वह
आकाश गंगा
नक्षत्रों से उतरकर
पहाड़ के पेट पर
लेट गई है
और विंसेंट की आत्मा
गीले कोबाल्ट ब्ल्यू नभ को
यथा प्रयास निचोड़ रही है।
कोयला खदानों की निर्मम
कालिख से सने हृदय से
आइवरी ब्लैक
टप टप रिस रहा है।
हीनभावना से ग्रस्त एक तारा
भारतीय पीला रंग लपेटे और
शुक्र गृह का छद्म आवरण लिए
टेढ़ा चांद बन गया है।
अपने ही वृत में बावले बने
टिमटिमटिमाते बालक सदृश
आंख मिचकाते मनोरोगी तारे
अपने प्रकाश पुंज में उमड़ घुमड़ रहे हैं।
एक गहरा हरा पेड़
अपनी ठोड़ी के पास
नन्हे नक्षत्र को चिपकाए खड़ा है और
अचानक वही साइप्रस
हरी अगन लपटों में उबल पड़ा है।
नीचे लिलिपुटियन नीले मकान
चुप्प सोए पड़े हैं।
प्रतिपल आते विचारों के
हरे से पीले से नीले से
काले से संतरी से आसमानी से
घूमते बवंडरों ने
प्रकाशित हाहाकार मचा दिया है।
उत्तुंग चर्च
विंसेंट के धर्मरथ पर
आरूढ़ होकर
गगन गंगा की
नाभि तक पहुंच गया है।
प्रकाश का ऐसा ज्वार
मैंने तरह अरब साल
पहले देखा था।।

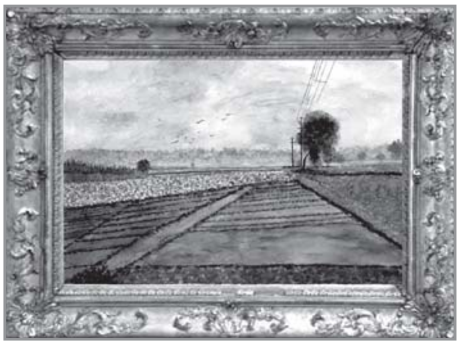

चित्र – जल रंग कागज पर

एक बूंद सूर्य

मेरे संग संग

रेंगती जाती
पूर्वजों की
जम चुकी आत्माएं।
गहरी धुंध में
घुसती धंसती
पिघल चुकी
तीन चीलें ।
ऊपर से
रेंगता जाता
घरघराता हवाई जहाज
और
घिसटता जाता मैं
अपने शुद्धिकरण का
लेप लगाए।
मेरे हृदय की आँखें
निरंतर नाम हैं।
अब मेरा शीत रुधिर
धुंधली नहर है
और
पहला आंसू
एक बूंद सूर्य ।।

REAPER WITH SICKLE (AFTER MILLET), Saint R'emy, Sept 1889, Oil on Canvas, Rijks Museum Vincent Van Gogh Foundation, Amsterdam.

विंसेंट द्वारा
गीले दहाने की
घोर मिट्टी से
लीपा हुआ चेहरा।
गीले आटे से
अपनी रीढ़ चिपकाए
मुश्किल से झुका है।
बाजरे के पांवों को
खुरदरी दरांती से
कुतरता हुआ।
निपट खाली घर में छोड़ आए
भूखे पेट बच्चों को
अपने आंसुओं से भरता हुआ
नीला किसान।
उधर से ऊंघते
सूरज को जगाती
असंख्य नन्हीं नटखट चिड़ियां।
अपने नहर के पानी में भीगे हुए
प्रातः गीत गाकर
स्नेहलेप करते हुए।
पके बाजरे का पीला
स्लेटी मटमैला लाल
आकाश की छाती पर
मसलते हुए
आज का दिन भी
कुछ बूंद आशा को
चाटते हुए
यूं ही पिघल गया ।।

NOON : REST (After Millet) January 1890, Oil on Canvas, The Louvre, Paris

वान गॉग ने
क्लोद मोने के
आसमानी रंग को
खुरदरी हथेली से
विस्तृत व्योम पर
लीप दिया है।
खेत पशु
नीचा मुंह करके
बाजरे के पीले
स्वर्ण दानों को
पपोलते हुए
निर्बन्ध खड़े हैं।
गहन छांव तले
पिंक कफ़न पहने
स्त्रियोचित कोमलता को
जैसे तैसे संभाले
नियॅविना किसान पत्नी
थककर
औंधे मुंह
निढाल पड़ी है।
निर्लज्ज निर्धनता ने
किसान दंपत्ति की
रीढ़ को तोड़ दिया है।
पसीने में सिक्त
जीवित पति के
रूखे पैर
नीली अर्थी से
बाहर लटक रहे हैं।
एक दूजे से
खाली पेट को छुपाते
दो उल्टे प्रश्नचिन्ह
पास ही
पड़े हुए हैं।
असंख्य बार
रौंदे गए
तुड़े मुड़े जूते
सूखे बाजरे की फसल में
गड़े हुए हैं।

ब्रह्म जगत में
कुछ घटनाएं
चुपचाप हो रही हैं।
दो आत्माएं
स्वर्ण दानों के
गट्ठरों से बनी
मां की गोद में
सो रही हैं।।

WHEATFIELD WITH CROWS
July 1890, Oil on Canvas, Rijks Museum Vincent Van Gogh, Amsterdam

कृषक श्रम का
पीला रक्त
गेहूं बालों के
ऊपर बिखर गया है।
धूल धूसरित
मटमैली पगडंडी
अपने जननांगों के आसपास
उगी हरी घास को
पोषण देती हुई।
ईश्वर से असहमत
वान गॉग ने
आकाश को
नीले और काले रंग से
री-पेंट किया है।
लेटी हुई नवयौवना
पृथ्वी की छाती पर
काला नीला आकाश
चुम्बन लेने को आतुर।

सहसा!
यक्षध्वनि से भौंचक्के
घनघोर विषाद में डूबे
हारमोनियम के सुर
उखड़कर
काले कौवों का
भेष बदलकर
सुदूर गगन के
मोक्ष अंधकार में
विलीन हो रहे।।

संपर्क : 37 ए, राजीव नर्सिंग होम के पीछे,
औचांदी रोड, बवाना, दिल्ली – 110039 (भारत)
मोबाइल: 9312482093
व्हाट्सऐप नं.: 9312482093
ईमेल: vijaykant435@gmail.com

समवेत

स्टेशन पंचायत की ओर से श्री झूलेलाल जन्मोत्सव का समापन व छठी महोत्सव

श्री झूलेलाल धर्मशाला स्टेशन पंचायत की ओर से शुरू किए गए 12 दिवसीय श्री झूलेलाल जन्मोत्सव का आज छठी महोत्सव, रंगारंग कार्यक्रम, पुरुस्कार वितरण व सम्मान समारोह के साथ समापन हुआ।

पंचायत के संरक्षक हरीश जगवानी ने बताया कि आज कार्यक्रम में समाज सेवी बंसीलाल साधवानी, प्रेम भाटिया, डी एन नैनानी, राज ठाकुर, विमल परियानी, जय चंचलानी, सावित्री गुप्ता, भुवनेश बबलानी, विष्णु नागपाल, रमेश कुमार छोटवानी का व विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं का सम्मान अध्यक्ष बजरंग सुखवानी वरिष्ठ महासचिव गोपाल मूलचंदानी, महासचिव सचिव डैनी जेसवानी, मीडिया प्रभारी किशन रतनानी, महिला समिति की अद्यक्ष दक्षा जेसवानी व महासचिव पूनम रतनानी, सुनीता वृंदवानी, मनीषा जगवानी, पूनम सुखवानी, वर्षा संतवानी, कांता तेजवानी आदि ने किया।

व्यंजन प्रतियोगिता में कविता चंदानी प्रथम, लवीना चंदानी व पायल झामनानी द्वितीय, थाली सजाओं में प्राची प्रथम, जिया सेतिया, अनीषा व हनिका तलरेजा द्वितीय रहीं। दोनों प्रतियोगिताओं में 22 सांत्वना

पुरस्कार व व तीन तृतीय पुरस्कार भी विजेताओं को दिए गए। कार्यक्रम का संचालन किशन रतनानी व सुलेखा कटारिया ने किया। वही लगातार कवरेज करने पर कोटा के फेस फोटोग्राफर सुनील सेन और शिव सेन का भी पंचायत की ओर से सम्मान किया गया।

डॉ. किरण मिश्रा की पञ्च तत्व कविताएं

डॉ. किरण मिश्रा

क्षिति

अनंत समय से छिपे तुम्हारे गर्भ में हम
जीवन और मृत्यु के खेल के सहभागी,
हमारे मन की शुद्ध सचेतन के लिए
हे क्षिति !
हम तुम्हें करते है नमन।

हम तुम्हें छूते है और चुनते है
स्तोत्र जीवन के,
छूटते है ,फिर मिल जाते है तुम में।

हम भूल जाते है कि हम मिट्टी है
तृतीय पिण्ड की मिट्टी,
हमारा भविष्य तुम्हारे भविष्य से अविभाज्य है।

इसलिए हे क्षिति
कबीर तुम्हें सुनते है,
और हम कवि मन को।

जल

वायुहीन निःश्वास के परे
शून्य से उभरे जगत में
सत असत् रज भी अस्तित्व में नहीं था

तब भी तुम थे
अस्तित्ववान के अस्तित्व में आने की प्रतीक्षा में

ऋषि कर रहे थे शमन
बैठ कर कुश पर
पाद-प्रक्षालन के साथ

पूर्वज जानते थे
तुम्हारे हृदय को आर्द्र करना
देकर अर्घ्य
उन्होंने लिखे उद्गीथ
जीवन अंकुर और उसके मूल्य पर टिका है
तुम ने ही बताया
अन्न के लिए गाते उद्गीथ
उपनिषद रचयिता बोल पड़े
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

(तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय
जिन्वथ - अन्न आदि उत्पन्न कर प्राणीमात्र
को पोषण देने वाले हे दिव्य प्रवाह! हम
आपका सान्निध्य पाना चाहते हैं।)

पावक

सृष्टि के परे तुम उपस्थित थी
सर्वाग्नि बन*
तुम्हारी दीप्ति से जल
जल से क्षिति
अस्तित्व में आई

प्रकाश के अस्तित्व में समाई
आग्नेय ऊर्जा

डॉ. ऋतु जोहरी की पेंटिंग- पंचतत्व

स्त्रैण ऊर्जा से जा मिली
उत्पन्न हुआ अग्निबीज तपस

प्रकाश में नहाए
दिन - रात का गठबंधन हुआ
प्रदक्षिणम की अग्नि जा मिली, काम अग्नि से
और सृष्टि चल पड़ी

गृहस्थ धर्म निभाते
एक दिन अचानक
रुपं रुपं प्रतिरुपम
ध्वनि के साथ
तुम जल उठी आत्मा में

वाणी तत्व मुक्त हुआ मृत्यु बंधन से
और तुम में बदल गया,
मानव चेतना में,आंच बन प्रज्ञा की

पंचतत्वों को व्यक्त करती अनिल मोहनपुरिया की पेंटिंग

विश्व ऊर्जा की ध्वनि ,ॐ में बदल कर
अक्षर ब्रह्म हुआ

अग्निहोत्र करते
पूर्वज की कामनाओं को साधती जातवेद अग्नि
अगर न बदलती
क्रव्याद अग्नि में
तो मृत्यु पार के गीत
मानव कहां सुन पाता

(जातवेद अग्नि - अग्नि के वैदिक देवता अग्नि के एक विशेष रूप।
क्रव्याद अग्नि - अग्नि का वह रूप है जो लाशों का दाह संस्कार करता है।)

गगन

कृतज्ञता के भाव के साथ
देखता है मनुष्य तुम्हें
और तुम थाम लेते हो उसे

तुम्हारे परमव्योम में
निवास करती ऋचाएं
जो मनुष्य के हृदय में उतरने की
रखती हैं अभिलाषा
प्रकटन का मार्ग है

ध्वनि के सूक्ष्म रूप
'शब्द तन्मात्रा'* से विकसित
हर जगह उपस्थित तुम्हारे शब्द
हम सबको करते हैं आवृत

असांसारिक और सांसारिक
के बीच खड़े
अव्याख्येय की व्याख्या में रत
अनिवर्चनीय आकाश तुम्हें नमन

भारती प्रजापति, भूमि, कैनवास पर तेल, 36 x 60 इंच।

(तन्मात्रा - पंचभूतों का सूक्ष्म रूप—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)

समीर

जगत निधि के चरण पर
विश्व सांसे गीत गाती है
इन सांसों में कौन ठहरा है
कौन है जो बह रहा
धरती से नभ तक

तुम हो शिव रुपा
तुम में ही आनंदमय कोश
हम्सा, सोहम् मंत्र रमता
पंच प्रकारा वाणी रुपा

तुम गतिशील
तुम प्राण आधारा
तुम से ही कण कण रमता
तुम शिव रूपा, शिव रूपा

अन्नमय, प्राणमय ,मनोमय
विज्ञानमय ,आनंदमय पंच प्रकारा
तुम में ही प्रणव ध्वनि
तुम ही दिव्य सरुपा

(हम्सा - मैं वह हूँ। सोहम् - वह मैं हूँ।)

■

कीर्ति शेष लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी'
(अंश सम्पादन आचार्य प्रभुदयाल मिश्र)

तुलसी की विनय पत्रिका का अद्वैत दर्शन

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

विनय पत्रिका में तुलसीदास जी ने परमात्म तत्व के साथ ही संसार की दशा पर भी विचार किया है। लोक क्या है, हम क्या हैं, सुख क्या है, सुखी कौन है, परमात्मा का रूप क्या है, भक्ति तत्व क्या है, भक्त का भगवान से क्यों नाता है, इन प्रश्नों के काव्यमय उत्तर दिए हैं। भक्ति साधना से लेकर भक्ति सिद्धि तक उन्होंने जिस क्रम से गाया है उसमे भक्ति के अन्तर्लक्षण तथा बहिर्लक्षण के साथ भक्ति के क्रमिक विकास में भक्त की उत्तरोत्तर वृद्धि और भक्ति पथ पर अग्रसर होने की दशा का ऐसा क्रमबद्ध व्यवस्थित रूप खड़ा किया है जो भक्ति पथ के पथिकों को सदा प्रकाश देता रहेगा। भक्ति की अनुभूति का ऐसा मनोवैज्ञानिक क्रमबद्ध विश्लेषण अन्यत्र दुर्लभ है। मन की अवस्थाओं के जैसे सुन्दर स्वाभाविक चित्र इसमे अंकित हैं, वैसे अन्यत्र ढूंढने पर भी न मिल सकेंगे।

इसमें भक्ति तत्व गीतोक्त मूल भागवत धर्म के अनुसार है जिस पर किसी एक विशेष आचार्य द्वारा उपदृष्टि और प्रचलित किए किसी सम्प्रदाय विशेष का कोई अनुसरण नहीं है। जिस प्रकार गीता पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने अपने-अपने विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न भाष्य और टीकायें रची हैं, उसी प्रकार विनय पत्रिका की भी सम्प्रदाय परक अनेक टीकाएं रची गई हैं।

तुलसीदास जी ने गीतोक्त भागवत धर्म अनुसार परमात्म तत्व को एकमेवाद्वितीयं माना है और 'वासुदेव सर्वमिति' की भावना दृढ रखी है। लिखते हैं:

अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो।

(गीत ५६)

उन्होंने स्थल स्थल पर द्वैत भाव को भव का कारण अतएव त्याज्य कहा है। लिखते है :

१. द्वैत रूप तम कूप परों नहिं अस कछु जतन बिचारी (गीत सं.113)

२. सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी
सोड़ हरि पद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी (गीत सं. १६७)

3. द्वैत मूल भय सूल सोक फल भव तरु टरै न टार्यो
राम भजन तीछन कुठार लै सो नहि काटि निवार्यो। (गीत सं० २०२)

गीता के समान ही उन्हें परमात्मा की माया भी मान्य है। माया पति की कृपा के बिना माया से छुटकारा नहीं हो सकता, लिखते हैं:

-हो जड जीव इस रघुराया, तुम मायापति हो बस माया

(गीत सं० १७७)

इसी से वे माया पति परमात्मा श्री राम की शरण छोड माया विवश अन्यान्य देवों की शरण जाना लाभदायक नहीं मानते। लिखते हैं:

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया बिबस विचारे
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।

(गीत सं. १०१)

इसी से श्री राम के वरद हस्त की कामना करते हुए लिखते हैं:

सीतल सुखद छाँह जहि कर की मेटति पाप ताप माया
निसि वासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया।

(गीत सं० १३८)

वैसे तो आर्त, जिज्ञासु और अर्थ की अभिलाषा से भक्ति करने वाले प्रहलाद, ध्रुव और द्रोपदी आदि से सभी भक्त भाव की दृढता में विश्वमान्य हुए हैं, पर इनमें भी ज्ञानी भक्त जिसकी परमात्मा श्री राम में अहैतुक प्रेमासक्ति रहती है, वह सर्वश्रेष्ठ है। वह अवच्छिन्न प्रेमानुरागी परमात्मा श्री राम से अभिन्न हुआ रहता है। तुलसीदास जी लिखते है :

राम राम रटु राम राम रटु राम राम जपु जीहा
राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा
सव साधन फल रूप सरित सर सागर सलिल निरासा
राम नाम रति स्वाति सुधा सुभ सीकर प्रेम पिपासा
गरजि तरजि पाषान बरसि पवि प्रीति परखि जिय जाने
अधिक अधिक अनुराग उमग उर पर परमिति पहिचाने

(गीत संख्या ६५)

इस संसार की असारता पर विचार करते हुए वैराग्यवान तुलसीदास जी लिखते हैं:

मैं तोहि अब जानो संसार
बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रगट कपट आगार
देखत ही कमनीय कछु नाहिन पुन किये विचार
ज्यौ कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार
तेरे लिए जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार
महा मोह मृग जल सरिता महँ बोरयो हों वारिधि बार

सुन खल छल बल कोटि किए बस होहि न भगत उदार
तासों करहूं चातुरी जो नहि जाने मरम तुम्हार
सो परिहरै मरै रजु अहि बूझे नहिं व्यवहार
निज हित सुन सठ हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार
तुलसीदास प्रभु के दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार॥

(गीत संख्या १८८)

-हे संसार ! मैंने तुझे अब जाना छल कपट के स्पष्ट आगार, तू मुझे अपने कपट जाल में बाँध नहीं सकता क्योंकि मुझे श्री हरि का बल प्राप्त है। तू देखने भर में कमनीय है. परन्तु विचार करने से विदित हुआ कि तू कुछ भी नहीं असत् है। जैसे केले के पेड में छिलकों के सिवाय सार नहीं होता वैसे ही अन्वय व्यतिरेक से देखने पर तू निस्सार ही सिद्ध हुआ। तेरे लिए मैंने अनेक योनियों में अनेक जन्म लिए पर कभी तेरा पार न पाया। तू मुझे महा मोह रूपी नदी में बार-बार डुबाता ही रहा। बार-बार संसार के विषयों में लिप्त रखा। यहां कभी सुख सन्तोष प्राप्त न हुआ। रे शठ, करोडों प्रकार के छल बल करने पर भी उदाराशय भक्त तेरे बस में नहीं हो सकते। तू तो अपने सहायकों समेत उस हृदय में निवास कर जहां नंदकुमार श्री कृष्ण न बसे हों। तू उससे चतुराई कर जो तेरा मर्म न जानता हो।, जिसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त न होगा वही रज्जु में सर्प की प्रतीति कर डर कर मरेगा। रे शठ, यदि तू सपरिवार अपनी कुशल चाहता है तो छल न कर। अपने हित की बात सुन ले। तुलसीदास कहता है कि तू प्रभु श्री राम के सेवकों को छोड कर उनका अवलम्बन कर जहां अहंकार और काम वास करते हो। ईश्वर भक्त तो मेरा तेरा के अहंकार और सकल कामना वासना रूप काम से रक्षित हो जाते हैं।

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे
नाहित भव बेगारि महं परिहो छूटत अति कठिनाई रे
बाँस पुरान साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे
विषम कहार मार मद माते चलहिं न पाउं बटोरा रे
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे
कांट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउं बझाऊ रे
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे
तुलसीदास भव त्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे

(गीत सं० १८९)

अरे भाई। राम कहते चलो, राम कहते चलो, राम कहते चलो, नहीं तो संसार की बेगार में पड़ जाओगे जिससे छूटना फिर कठिन हो जायगा। किसी राजा अथवा सरदार की बेगार में पकड़े जाने से तो वो चार दिन ही में छुट्टी मिल जाती है पर संसार की बेगार में पड़ने से तो फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के चक्कर में पड़ना होगा। जब तक प्रवृत्तियों और वासनाओं का अन्त न होगा तब तक संसार का चक्र छूटेगा नहीं। राम कहते चलने से माया जन्य काम, मद, मोह आदि शत्रु तुझे बेगार में न पकड़ सकेंगे, क्योंकि राम के दास पर राम की माया का चक्र नहीं चलता। राजा का नाम ले लेने से जैसे राजा के कृपा पात्र को राज कर्मचारी बेगार में नहीं पकड़ते, इसी प्रकार राम का नाम लेने से उनका कृपा पात्र सेवक जन को न तो यमदूत ही और काम मोहादि भी संसार की बेगार में पकड़ सकेंगे। हमें हमारे कुटिल पूर्व जन्म कृत पाप कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त प्रारब्ध कर्म रूपी कार्य ने ही चन्द्र डोले के इस 'शरीर रूपी ऐसा खटोला डोला बिना मोल ही दिया है जिसमें अनादि काल से अविद्या और विषय वासना जन्य मोह का पुराना तो बाँस लगा हुआ है. जिसके सभी साज अंट सेंट हैं। इसकी बाल, युवा और वृद्ध अवस्थाएं प्रकृति, अहंकार और महत्त्व, तीन पाटियाँ और सत, रज, तम, तीन पाये हैं। यह शरीर खटोला सुख दुख रूपी सुतली से बुना गया है। इसके जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति, तीन कोण है। अज्ञानियों के लिए तो यह क्षणभंगुर शरीर ही एक सुखद डोला है. क्यों कि वे इस शरीर को सर्वस्व मान विषय वासना और मोह तथा लोभादि में इसे सुखप्रद मान रहे हैं। पर ज्ञानियों के लिए मिट्टी में मिल जाने वाला यह क्षणभंगुर शरीर जो मल मूत्र आदि की पिटारी है, सड़ा डोला है। इस शरीर रूपी डोले के पाँच कहार जिह्वा, नेत्र, नासिका, कर्ण और त्वचा, विषय है जब कि डोले में सम कहार चाहिए। उस पर वे काम मद को पीकर मतवाले बने हुए हैं। अर्थात रूप, रस, गंध शब्द और स्पर्श रूपी अपने-अपने विषयों के मतवाले हैं और जीवात्मा को शरीर खटोले में बैठाये अपनी-अपनी ओर खींचते चलते हैं। उनके पैर इसी से एक से सम नहीं पड़ते। नेत्र कहार सुन्दर रूप की ओर, जिह्वा कहार रसास्वादन की ओर, नाक कहार सुगंधि की ओर, कर्ण कहार रुचिर शब्द श्रवण की ओर, और त्वचा कहार स्पर्श जन्य व्यवहार सुख की ओर खींचते हैं। इस विषमता में इस मनमानी में कितना अंधेर और कैसा कष्ट हो रहा है। फिर इस संसार यात्रा के पथ में परापवाद, परधन हरण, परदारा हरण, परपीडा आदि नीच कर्म की इच्छा रूपी कीर्ति, मर्यादा और स्वर्ग आदि की दृष्टि से ऊंचे कर्म की इच्छा रूप ऊँची जगह तथा इष्ट वस्तु, मित्र, पत्नी, पुत्र आदि की हानि रुपिणी दरारें और जीवन काल की कठिन उलझी अवस्थाओं और विकट परिस्थितियों रूपी दल-दल है; इनके कडे झटके लगते है और दुःख होता है। फिर मार्ग में मोह ममता के कंकड़ गड़ते विषय के विषैले सर्प लिपटते और कर्म फल भोगों की कटीली झाडियों की उलझन होने से ठांव ठांव पर, पद-पद पर ठहरना पड़ता है। उस पद-पद पर रुकने से यात्रा और भी कठिन हो रही है। फिर इस यात्रा में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते है त्यों-त्यों साँसारिक विषय भोगों में लिप्त होते जाते हैं; त्यों-त्यों आत्म स्वरूप आनंद धाम स्थान दूर हो जाता है। कोई सन्त रूपी संगी साथी भी तो नहीं मिलता जिसके साथ जैसे तैसे वहां तक पहुंचा जा सके। मार्ग सब भांति अगम है। परमार्थ के मार्ग पर जाना अग्नि धार पर चलना है। साथ में मार्ग व्यय नहीं है। ऐसे सत्कर्म नहीं

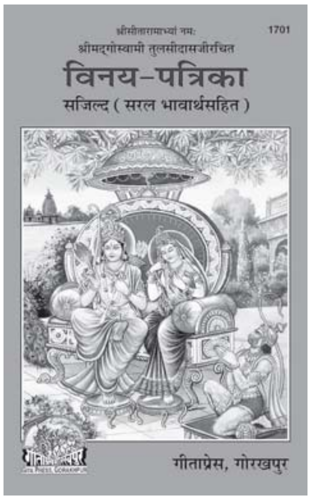

जिनके बल पर ज्ञान वैराग्य रूप द्रव्य प्राप्त होता जो संसार यात्रा में मार्ग व्यय के रूप में सुविधाजनक होता। इस पर अंधेर यह है कि लक्ष्य स्थान का नाम भी स्मरण नहीं रह गया। (आनंदधाम आत्म स्वरूप का स्मरण भी न रह गया) अतएव हे श्री राम जी. इस तुलसीदास के भव भय की आवागमन की दुःख यात्रा को आप ही कृपा कर दूर करें। सृष्टि प्रपंच के विषय में विनय पत्रिका का निम्न लिखित गीत अत्यन्त प्रसिद्ध है:

केशव कहि न जाय का कहिये
देखत तुव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये
अन्ध भीति पर चित्र रंग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे
धोये मिटत न मरइ भीति दुख पाइय एहि तन हेरे
रवि कर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माही
वदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि माने
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचाने।

(गी०सं. १११)

-हे केशव। क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। आप की अति विचित्र सृष्टि रचना को देख-देख मनही मन समझ कर रह जाता हूँ। निराकार परमात्मा (अशरीरी चित्रकार) ने निराकार शून्य अंतरिक्ष में माया की भीत पर ऐसे ऐसे चित्र खींचे जिनमें रंग का नाम भी नहीं है। माया जन्य प्रकृति के शून्याधार पर जिस पंच भौतिक रचना का प्रसार किया है, उसमें जितने स्थूल, कारण, सूक्ष्म शरीर हैं उनका कोई रंग रूप निश्चित नहीं, अतएव वे बिना रंग के है। अन्य लौकिक चित्र जो रंग से चित्रित होते हैं. धोने से मिट जाते हैं पर इसके आवागमन का रंग ज्ञान के प्रकाश में भ्रम तिमिर मात्र ठहरता है क्योंकि वह जल से धोए जाने पर भी नहीं मिटता। अन्य जड़ चित्र मृत्यु से भय भीत नहीं होते परन्तु यह नाम रूपमय सृष्टि चित्र मृत्यु के डर से मर रहा है। अन्य लौकिक चित्र देखने से सुख मिलता है पर इस सृष्टि के नियम को ध्यान से देखते ही दुःख की प्राप्ति होती है। ज्ञान दृष्टि से देखने पर द्वैत भय से पूर्व मृत्यु का ग्रास नश्वर संसार दुख मूल ही ठहरता है। प्रचण्ड सूर्य की उत्तम किरणों के रेत पर पड़ने से तापित बालु के दर्शन से मृग को जो मरने पर जल की प्राप्ति होती है उस मृग जल में मुखहीन काल रूप मगर रहता है। वह भ्रम से पानी पीने की इच्छा रखने वाले प्यासे चराचर को जो वहां पहुंचते है, लील लेता है। अविद्या जन्य मिथ्या संसार में जो सुख ढूंढना चाहते हैं, पुत्र कलत्र तथा धन सम्पति आदि से अपनी विषय अंध पिपासा शान्त करना चाहते हैं, उन्हें आत्म सुख की उपलब्धि तो होती नहीं परन्तु उसे विकल बनाने वाली प्रवृति में फंसे रहने से एक दिन मुख हीन अव्यक्त काल उन्हें कवलित कर लेता है। हे प्रभु, आपकी इस सृष्टि रचना को कोई सत्य, कोई मिथ्या और कोई सत्यासत्य मानते हैं। तुलसीदास अनुभव से कहते हैं कि जो तीनों भ्रमों का त्याग कर देता है और राम के शरणापन्न होता है. वही अपने आनन्दधाम स्वरूप को पहिचान पाता है।

1. अद्वैतवादी वेदान्ती 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या मानते हैं। वे सृष्टि रचना को रज्जु में सर्प की प्रतीति के समान भ्रममूलक मानते हैं।
2. पूर्व मीमांसा दर्शन द्वैतवादी और विशिष्टाद्वैत वादी कर्म प्रधान जगत को सत्य मानते हैं। स्मृतिकार धर्मशास्त्रियों मनु, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ आदि ने भी संसार को कर्म प्रधान दृष्टि से सत्य माना है।
3. महर्षि पातंजलि आदि योग शास्त्र विशारदों तथा श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के द्वैताद्वैत वादियों ने इस सृष्टि को सत्यासत्य मान कर विवेचना की है।

तुलसीदास के मत से कलियुग में ज्ञान, कर्म और योग की साधना शक्ति नष्ट हो गई है। इन तीनों को भ्रमवत त्याग कर जो परमात्मा श्री राम की शरण ग्रहण करता है. वही श्री राम की कृपा से अपने सहज आनदमय स्वरूप को उपलब्ध करता है। तुलसीदास जी ने मानस में भी सो जानहि जेहिं देह जनाई, जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई सिद्धांत रखा है। इसमें श्री भगवद् गीता के निम्न लिखित सिद्धान्त का अनुसरण है:

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

(गीता १८/६६)

यह भावना मात्र है, परमार्थतः सत्य नहीं है। यह समस्त संसार मन के संकल्प विकल्पात्मक द्वैत भाव से बनता है। मन की कल्पनाएं मिटते ही संसार चक्र रुक जाता है और आत्म बोध से नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप की उपलब्धि होते ही आवागमन के बंधन से छुटकारा हो जाता है। इस विषय को सुलझाते हुए तुलसीदास निम्नलिखित गीत में कैसे सरल रूप में गा उठते हैं:

जो निज मन परिहरै विकारा
तो कत द्वैत जनित संस्त्ति दुख ससय सोक अपारा
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्है बरि जाई
त्यागन गहन उपेक्षनीय अहि हाटक तृन की नाई
असन वसन पसु वस्तु विविध विधि सव मनि मह रह जैसे
सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे
विटप मध्य पुतरिका सूत मंह कंचुकि बिनहिं बनाये
मन महं तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये
रघुपति भगति बारि छालित चित विनु प्रयास ही सूझे
तुलसीदास कह चिद विलास जग बूझत बूझत बूझै

(गीत सं. १२४)

यदि अपना ही मन अविद्या अन्ध संकल्प विकल्प रूप, विकार को त्याग दे तो फिर द्वैत भाव से उत्पन्न संसारी दुख, भ्रम और अपार शीक कहाँ से हो। (यह संशय, शोक तो मन के विकारों के कारण की होते हैं) शत्रु, मित्र और उदासीन हम ने तीनों की कल्पना मन में ही हठ पूर्वक कर ली है। शत्रु को साँप के समान त्याग देना चाहिये, मित्र को स्वर्ण के समान ग्रहण करना चाहिए और उदासीन को तृण के समान उपेक्षणीय समझना चाहिए। ये सब मन की ही कल्पनाएं हैं। जैसे मणि में (मणि के मूल्य में) भोजन, वस्त्र, वाहन, पशु और अन्यान्य अनेक वस्तुएँ प्राप्त रहती हैं, वैसे ही इस मन में स्वर्ग, नर्क, जड़, चेतन

और बहुतेरे लोक सन्निहित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे मणि के हाथ में होने से उसे बेच कर अनेक इच्छित वस्तुएँ मोल ले ली जाती हैं वैसे ही मन रूपी माणिक्य के प्रताप से यह जीव स्वर्ग, नर्क तथा अन्यान्य लोकों में जाता है। यह मन ही सबका भंडार है। जैसे तरु काठ में पुतली और सूत में वस्त्र पूर्व से ही विद्यमान रहते हैं और इच्छा करते ही कारीगर काठ में से अनेक पुतलियों और सूत मे से अनेक वस्त्र बना लेता है, वैसे ही इस मन समय-समय पर अनेक शरीर जो कि उसमें पूर्व ही से लीन रहते हैं, संकल्प करते ही व्यक्त होते हैं। इसी से दार्शनिकों का मत यह है-भवो हि भावना मात्रो न भवो परमार्थतः। अर्थात भव भावना मात्र है, पर्मार्थतः संसार की सत्ता नहीं। मन की भावनाएं ही जन्मादि का कारण हैं। जैसी भावना होगी वैसा शरीर। राम भक्ति के जल से धुल कर निर्मल हुआ चित्त अनायास ही ज्ञान के प्रकाश में तत्व चमकने लगता है। तुलसीदास कहते है कि संसार में पड़ा जीव इस अखंड आत्मानंद को समझते-समझते समझने लगता है। क्रम-क्रम से ही वह आनंद प्राप्त होता है। उसका मिलना सहज नहीं है। तुलसीदास के मत से अविद्या, माया के भ्रम से निवृत्ति के हेतु ज्ञान की आवश्यकता है। भ्रम की निवृति के पूर्व ज्ञान जाग्रति की आवश्यकता है। लिखते हैं:

जैसे किसी तरु कोटर में रहने वाला पक्षी वहाँ से तरु काटने से नहीं मर सकता, वैसे ही अनेक साधनों के निरन्तर करते रहने पर भी अन्तरंग के विवेक के बिना यह मन शुद्ध होकर कभी एकाग्र नहीं हो सकता। हे तुलसीदास। श्री हरि गुरु कृपा के बिना विमल विवेक नहीं होता और बिना विवेक की नौका के घोर संसार समुद्र से कोई भी पार नहीं जा सकता। (गीत सं० ११५)

भक्ति ज्ञान के बिना नहीं हो सकती। माहात्म्य ज्ञान सापेक्ष भक्ति ही भक्ति है। परमात्म तत्व के माहात्म्य ज्ञान बिना भक्ति को आचार्यो ने जार प्रेम सम दूषित कर त्याज्य ठहराया है। भक्त जहानी हो ही कैसे सकता है। जिसे अखिल जान के अधिष्ठान परमात्म तत्व से अभिन्न अनुराग करना है। तुलसीदास जी लिखते हैं.:

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी
देह गेह नेह जानि जैसे जग जामिनी
सोवत सपनेहु संसृति संतापरे
बूड़यो मृग वारि खायो जेवरी का साँप रे
कहैं बेद बुध तू तौ बूझियत मांहिरे
दोष दुख सपने के जागे ही पे जाहि रे
तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूं ताप रे
रामनाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे

(गीत १७३)

-मूर्ख जीव, जाग जाग। इस संसार निशा को देख देह, गेह के नेह को ऐसा क्षणभंगुर समझ जैसे क्षण भर चमक कर फिर बादलों में छिप जाने वाली दामिनी की द्युति हो। तू सो जाने ही से स्वप्न संस्रति संताप सहता है। तू भ्रम से विषय में आनंद और तृष्णा के जाल में डुबा हुआ है और तुझ अनश्वर परमात्म तत्त्व को रस्सी का सर्प डस रहा है। वेद और विद्वान, तत्त्वदर्शी पुकार-पुकार कह रहे हैं, तू. अपने मन में विचार कर समझ ले कि स्वप्न के सभी दुःख दोष वास्तव में जागने ही पर नष्ट होते हैं। तुलसी कहते हैं कि दैहिक, दैविक और भौतिक ताप अज्ञान रूपी निद्रा से जागने पर ही नष्ट होते हैं और तभी श्री राम नाम के सहज स्वभाव से पावन प्रीति होती है। वे तो स्पष्ट लिखते हैं:

बहु उपाय संसार तरन कहं विमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसीदास मैं मोर गये बिनु जिय सुख कतहुँ न पावै

(गीत १२०)

वेद विमल वाणी से संसार सागर से पार होने के उपाय बतला रहे हैं, किन्तु तुलसीदास कहता है कि मैं और मेरा अहंकार और संकुचित भाव जब तक नहीं छूटता तब तक व्यापक ब्रह्म भाव में प्रवेश नहीं और बिना आत्म ज्ञान के जीव सुखी नहीं हो पाता।

तुलसी के मतानुसार जीव सच्चिदानंद रूप ही है। लिखते हैं.:

-हे जीव ! जबसे तू परमात्मा से पृथक हुआ तभी से तूने शरीर को अपना घर मान लिया। माया के बस होकर तूने सच्चिदानंद स्वरूप भुला दिया। इसी से भ्रम के कारण तुझे दारुण दुःख भोगने पड़े। हे जीव, तेरा निवास तो आनंद अंबु में है, तू सहज आनन्द स्वरूप ही है। तू उस अमृतमूल को विषय भोग के मरुस्थल में विषयानंद के मृगजाल से प्यास मिटाने भ्रम बश दौड़ रहा है। यहाँ तेरी प्यास बुझाने वाला जल नहीं है। तू ने अपने उस विशुद्ध अविनाशी और अविकारी परमानंद स्वरूप को त्याग दिया। जैसे कोई समर्थ राजा स्वप्न में राजच्युत हो बंदीगृह में पड़ जाता है और व्यर्थ ही स्वप्न संकल्प भाव से व्यथित होता है तथा बिना जागे व्यर्थ ही दुःख भोगता है, वैसी ही तेरी भी दशा है जो तू नित्य मुक्त होकर भी अपने को बंधन में बद्ध समझ दुःख का भागी बन रहा है। सच्चिदानंद स्वरूप को भ्रम बश भूले रहने ही से तू दुःख भाजन का हुआ है। (गीत सं. १३६)

इसी गीत में भक्ति की प्राप्ति के उपाय और भक्ति होने की दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं: भक्ति सत्संग के बिना प्राप्त नहीं होती और सन्त तभी मिलते है (जब रघुनाथ जी कृपा करते हैं। सन्तों के दर्शन, स्पर्श और सत्संग से पाप समूह समूल नष्ट हो जाते हैं। सुख दुख में सम बुद्धि हो जाती है। अमानिता आदि अनेक सद्गुण प्रकट हो जाते हैं तथा परमात्म तत्त्व का वास्तविक बोध हो जाने से मद, लोभ शोक क्रोध आदि विकार सहज ही दूर हो जाते हैं। तब देहात्म बुद्धि नष्ट होने पर शरीर संसर्ग से उत्पन्न हुए सब विकार छूट जाते हैं और आत्म स्वरूप में प्रवेश होता है जिससे अपने स्वरूप में अनुराग हो जाता है। उसकी दशा संसार में विलक्षण हो जाती है। संतोष, समता, शाति और इंद्रिय निग्रह उसमें स्वभाव से ही रहते हैं और देहात्म भाव का बोध नष्ट हो जाने से वह अपने आपको देहधारी मात्र नहीं मानता। वह संसार रोग रहित हो परमात्म स्वरूप में नित्य स्थित हो जाता है। फिर उसे हर्ष शौक आदि द्वन्द नहीं व्यापते। जिस जीव की ऐसी स्थिति हो जाती है वह विश्वरूप हुआ तीनों लोकों को पवित्र करता है। (गीत सं. १३६)

गोस्वामी तुलसीदास जी केवल वाक्य ज्ञान को कोई महत्व नहीं देते। वाक्य ज्ञान की सफलता तभी है जब वह अनुभवात्मक ज्ञान में परिवर्तित हो जाय। हृदय में अनुभूति हुए बिना सच्चिदानंद भाव की स्थिरता हो ही नहीं सकती। अनुभवात्मक ज्ञान से प्रतीति और प्रतीति से प्रीति होती है। ज्ञान के पीछे विज्ञान और विज्ञान के पीछे भक्ति भाव का पद है। यह विषय उनके निम्नलिखित दो गीतों में स्पष्टता से आया है। वाक्य ज्ञान को पढ़े या सुने वेदान्त, दर्शन तथा भक्तिवाद का पढ़ना और कहना ही कोई मूल्य नहीं रखता। वे लिखते हैं:

अस कछु समुझि परत रघुराया
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटे माया
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण भव पार न पावै कोई
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहि होई
जैसे कोउ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावे
चित्र कल्प तरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावे
जब लगि नहि निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माही
तुलसीदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहु सुख नाहीं।

(गीत संख्या १२३)

अंधेरे घर में दीप की बातों से प्रकाश नहीं होता। यथार्थ अनुभवात्मक तत्व ज्ञान होने पर ही भक्ति का प्रकाश होता है। वे लिखते हैं:

हरि निरमित मल ग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत।

वे तो स्पष्ट ही कहते हैं-

लोक विलोकि पुरान वेद बुधिन समुझि बूझि गुरु ज्ञानी
प्रीति प्रतीति राम पद पंकज सकल सुमंगल खानी

(गीत सं० ९९४)

राम भक्ति के विषय में निम्नलिखित मत बड़ा ही स्पष्ट और सैद्धान्तिक है। लिखते हैं:

रघुपति भगति करत कठिनाई
कहत सुगम करनी अपार जाने सोइ जेहि की आई
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी
सोइ हरि पद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी
सोक मोह भय हरष दिवस निशि देस काल तहं नाहीं
तुलसीदास यहि दसा हीन संसय निर्मल न पाहीं।

(गीत सं. १६७)

-श्री राम जी की भक्ति करने में कठिनता है। कहनी सरल है पर करनी कठिन है। उसे वही जानता है जिससे भक्ति करना बन पड़ा है। जो भाव योगी भक्त संपूर्ण दृश्य प्रपंच को अपने पेट में रखकर - चित्तवृत्ति निरोध द्वारा परमात्मा रुप कारण में कार्यरूप जगत् का लय करके जान रुपिणी निद्रा को त्याग कर परमात्म तत्व में सुषुप्ति गृहण करता है, वही द्वन्द्वातीत द्वैत भाव मुक्त हो वैष्णव पद के परमानन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति करता है। इस अवस्था में शोक, भय, हर्ष, दिन, रात, और देश, काल का जहाँ सर्वथा अभाव है, वहां वह पहुँच जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि जब तक जीवात्मा उक्त दशा को नहीं प्राप्त होता तब तक संशय का समूल नाश नहीं होता। इस भक्ति की साधना के अधिकारी बनने को अपने मन को सम्बोधित करते हुए वे लिखते हैं:

जो मन भज्यो चहै हरि सुर तरु
तो तज विषय विकार सारे भज अजहूँ जो मैं कहाँ सोड़ करु
सम सन्तोष विचार विमल अति सत संगति ये चारि दृढ करि धरु
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेश करि परिहरु
श्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु
नयननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीता वरु
इहे भगति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह शुभ वृत आचरु
तुलसीदास शिव मत मारग यहि चलत सदा सपनेहु नाहिन डरु

(गीत सं० २०५)

भक्ति पथ पर चलने के अभिलाषी गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं.:

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहोंगो
जथालाभ संतोष सदा काहू सो कछु न कहोंगो
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निवहोंगो
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहोंगो
विगत मान सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख सम बुद्धि सहोंगो
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहोंगो

(गीत सं. १७२)

-क्या मैं भी कभी हरि रहनी से रहूँगा ? कृपालु श्री राम की कृपा से संत स्वभाव को ग्रहण करूँगा ! जो कुछ कर्मानुसार मिलेगा उसी में सन्तुष्ट रहूँगा और किसी से कुछ भी न चाहूँगा । निरन्तर पर हित करने में निरत मन और वाणी से यम नियम का पालन करूंगा? अत्यन्त दुसह और कठोर वचनों को श्रवण करके भी क्रोधाग्नि से न दहूँगा! अभिमान त्याग कर सब में सम बुद्धि रखूँगा और मन को शान्त रखूँगा। पर गुण तो कहूँगा पर परदोष कभी देखूँगा। शरीर संबंधी चिंताएँ छोड़कर सुख और दुख को समान भाव से सहन करूंगा। शरीर संबंधी चिताएँ छोड़कर सुख और दुख को समान भाव से सहन करूंगा। हे नाथ! हे भगवान। इस सन्त मार्ग पर स्थिर रह कर मैं भी क्या कभी अटल हरि भक्ति प्राप्त करूंगा।

भक्ति सिद्धि के हेतु गोस्वामी तुलसीदास जी के मत में प्रपत्ति की आवश्यकता होती है। परमात्म प्रेम हृदय में रखने वाले साधक को परमात्मा की शरण लेना पड़ती है। जो सब प्रकार से परमात्मा की शरण लेता है उसका योग क्षेम स्वयं परमात्मा ही करते हैं। वे हृदय के विमल प्रेम को जान कर अनुरागी भक्त पर कृपा करते हैं और उसे संपूर्णतया शरणागत देख करुणावत्सल हो

उसका उद्धार करते हैं। इसके हेतु परमात्मा से दैन्य प्रार्थना और अपनी निर्बलता को दूर करने की पुकार की आवश्यकता है। जब तक सम्पूर्णतया अभिमान का त्याग कर जीव परमात्मा का दीन भाव से प्रार्थी नहीं होता तब तक भक्त वत्सल हरि उसे शरण में नहीं लेते। तुलसीदास जी कहते है:

नाथ गरीब निवाज हैं मैं गही गरीबी
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीवी

(गीत स. १४८)

-हे परमात्मन्। श्री राम जी, आप दीनों पर कृपा करने वाले दीनबन्धु हैं पर मैं ने अभिमान त्याग कर दीनता ग्रहण नहीं की। अब हे अनाथ नाथ, मुझ अनाथ पर अपने करुणामय शील की ओर देख कृपा करें। वे एक अन्य पद में यह स्पष्ट ही लिखते हैं:

रघुवर रावरि यहै बडाई
निदरि गनी आदर गरीब पर कृपा अधिकाई
यहि दरबार दीनको आदर रीति सदा चलि आई
दीन दयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई

(गीत १६५)

दीन बन्धु भगवान की दीन वत्सलता अपार है। वे दीन देख कर बिना सेवा आदि के द्रवित हो जाते हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं:

ऐसो को उदार जग माहीं
बिनु सेवा जो द्रवे दीन पै राम सरिस कोउ नाही
जो गति जोग विराग जतन कर नहि पावत मुनि ज्ञानी
सो गति देत गीध सबरी कहं प्रभु न बहुत जिय जानी
तुलसीदास सब भांति सकल सुख जो चाहति मन मेरो
तो भजु राम काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो (गीत सं. १६२)

लेखक : प्रधान सम्पादक तुलसी मानस भारती पत्रिका
संपर्क : भोपाल (मप्र) मोबा. 8839319901

‘कला समय’ पत्रिका के सदस्यता शुल्क में वृद्धि की सूचना

प्रिय पाठकों,

द्वैमासिक ‘कला समय’ एक अव्यावसायिक कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सांस्कृतिक पत्रिका है, जो विगत 29 वर्षों से अविरल रूप से कला/साहित्य जगत की सेवा कर रही है। आप इस तथ्य से परिचित हैं कि एक अव्यावसायिक कला-सांस्कृतिक पत्रिका निकालना बड़ा ही दुष्कर और श्रमसाध्य कार्य है। विगत कुछ वर्षों में मुद्रण, टंकण, कागज आदि की लागत में असामान्य बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में पत्रिका के नियमित प्रकाशन को आप तक पहुँचाने के लिए ग्राहक सदस्यता शुल्क में (फरवरी-मार्च 2025) अंक से वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। सदस्यों से अनुरोध है कि अब वे अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन सदस्यों की सदस्यता अवधि के 10 वर्ष पूरे हो चूके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुनः अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु ‘कला समय’ के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

फरवरी-मार्च 2025 से कला समय पत्रिका की बढ़ी हुई दरें हमने पूर्व में प्रकाशित की है। पुनः अनुरोध है कि माननीय सदस्यगण इन बढ़ी हुई दरों के अनुसार शेष सदस्यता अंतर राशि का भुगतान कर रजिस्टर डाक सहित पत्रिका प्राप्ति सुनिश्चत करें।

संशोधित सदस्यता शुल्क

प्रति अंक	-	100/-	(साधारण डाक)
वार्षिक	-	600 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	-	700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
द्वैवार्षिक	-	1200 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	-	1400 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
चार वर्ष	-	2300 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	-	2700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
आजीवन	-	10,000 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
(15 वर्ष के लिए)	-	12,000 (संस्थागत)	(साधारण डाक)

(कृपया सदस्यता शुल्क-ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा ‘कला समय’ के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : ‘कला समय’ की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

(नमूना प्रति ₹100/- , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/-) - संपादक

हनुमान शिल्प

पं. कैलाशचंद्र घनश्याम पाण्डेय

हनुमान शिव का अवतार है। शक्ति एवं ब्रह्मचर्य के मूर्तिमान स्वरूप वानर श्रेष्ठ हनुमान मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के परम मित्र, सहायक और भक्त। भक्ति के कठोर सेवक धर्म के आदर्श को देखकर स्वयं श्री राम ने उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया था कि वानरराज जब तक मेरी कथाओं का प्रचार रहें तब तक तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रसन्नता पूर्वक विचरण करते रहो। 'वानर श्रेष्ठ हनुमान वर्तमान में सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकप्रिय देवताओं में से एक है। यद्यपि इनके जन्म अथवा अवतार के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। कुछ पुराण इन्हें शिव का अवतार मानते है. कुछ इन्हें वायु का तो कुछ नन्दी का अवतार मानते हैं।

यथा- शिव पुराण में उल्लेख है कि शिव ने विष्णु के मोहिनी रूप को देखकर जो वीर्य छोड़ा उसे सप्तऋषियों ने तपस्यारत अंजनी के कान के माध्यम से गर्भ संक्रान्त कर दिया. इसी से हनुमान की उत्पति हुई। 'अगस्त संहिता में कहा गया है कि अंजनी के गर्भ से स्वयं भगवान शिव ने जन्म लिया। वृहधर्मपुराण का कथन है कि "शिव पार्वती रावण के रक्षार्थ लंका में रहते थे। वहाँ सीता के दुखों से दुखी पार्वती के आग्रह पर शिव ने हनुमान, ब्रह्मा ने जाम्बवान तथा धर्म ने विभीषण के रूप में अवतार लिया। 'भविष्यपुराण' के अनुसार शिव ने रौद्र तेज के रूप में केसरी के मुंह में प्रवेश कर अंजना के साथ विहार किया जिससे हनुमान का जन्म हुआ। 'आनन्द रामायण' भी इसी तथ्य की पुष्टी करती है। इस प्रकार ये पुराण यह सिद्ध करते है कि 'हनुमान शिव के अवतार हैं।

वाल्मिकी रामायण के अनुसार पवन देवता ने अंजनी को मानसिक संकल्प द्वारा पुत्र दिया जो हनुमान कहलाया। 'स्कन्धपुराण' के अनुसार अंजनी की तपस्या पर प्रसन्न होकर वायु देवता ने उससे कहा कि "मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हे विश्व-विख्यात कर दूंगा।" 'वायुपुराण' के अनुसार अंजनी के द्वारा वायु भक्षण कर तपस्या करने के कारण वायु देवता की कृपा से हनुमान का जन्म हुआ। 'आनन्दरामायण के अनुसार पुत्रेष्ठी यज्ञ की खीर का कुछ अंश एक चील. कैकयी से झपट कर आसमान में उड़ गयी। उसका कुछ भाग उसने आसमान से गिराया तो उसे पवन ने संभालकर तपस्यारत अंजनी की अंजली में डाल दिया जिससे हनुमान का जन्म हुआ। इस प्रकार कुछ पुराणों की मान्यता के अनुसार 'हनुमान पवन पुत्र हैं।

कहीं-कहीं पुराणों में हनुमान को नन्दी का अवतार भी बताया गया है। 'हनुमत्सहस्त्रनाम' के ८९ वे श्लोक में हनुमान का एक नाम ही नन्दी वर्णित किया गया है। स्कन्दपुराण के महेश्वर खण्ड में वर्णित है कि राम के प्रकट होने पर नन्दी हनुमान के रूप में अवतरित हुए। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में वर्णित एक कथा के अनुसार नन्दी ने रावण को श्राप दिया था कि "जाओ प्रजापति पुलत्स के वंश में मेरे मुख के मुख वाले तुम्हारा विनाश करेंगे।" इस प्रकार हनुमान 'नन्दी का अवतार भी सिद्ध होते हैं।

हनुमानजी के अवतार के सम्बन्ध में जितने मत हैं उतने ही उनकी जन्म तिथि के बारे में भी है। वायुपुराण के अनुसार इनका जन्म 'श्रावण माह की एकादशमी को हुआ था।

आनन्द रामायण के अनुसार उनका जन्म 'चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, मंगलवार के दिन हुआ था इसके अलावा और भी तिथियाँ हैं। लेकिन अधिकांशतः सभी सनातनी चैत्र माह में ही इनका जन्म दिवस मनाते हैं।

तलाई वाले बालाजी के नगर भ्रमण अवसर 01 अप्रैल, 2026 को सशरीर उपस्थित रहें। बालाजी की कृपा का स्वयं अनुभव प्राप्त हो जाएगा।

मढ़ अफजलपुर : बाढ़ से राहत की दरकार

पत्र-सम्पादक के नाम

मोरध्वज या मकरध्वज

अवतारों में भी बहुमत से पवन का अवतार ही माने जाते हैं। इसी प्रकार इन्हें 'वातात्मजः, वायुनन्दनः पवनसुत, पवन तनय आदि नामो से जाना जाता है। अंजना की बाल्या अवस्था में जन्म लेने के कारण ये "बालाजी बचपन में हनु टूटने के कारण हनुमान व वीरों में श्रेष्ठ होने के कारण ये महावीर नाम से विख्यात हैं।

मालवा में तो अति प्राचीन काल से ही हनुमान की उपासना होती आयी है। स्कन्दपुराण के अनुसार "स्वयं भगवान राम ने उज्जयिनी में "हनुमत्केश्वर लिंग" की स्थापना की थी।" इसी पुराण में वर्णित है कि स्वयं हनुमान ने ब्रह्महत्या के परिमार्जनार्थ नर्मदा तट पर 'हनुमत्केश्वर लिंग की स्थापना की थी। इन पौराणिक विवरणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में हनुमान को शिव का ही अवतार माना जाता था। इसी कारण शिव लिंग की भाँति हनुमान लिंग की स्थापना कर पूजा की जाती थी।

हनुमानोपासना के पौराणिक संदर्भ तो बहुत प्राचीन काल के मिलते हैं परन्तु प्रतिमा शास्त्रीय प्रमाणों का अभाव है। इसी कारण यह कहना कठिन है कि हनुमान शिल्प के माध्यम से जन मानस में कितने पूजित थे। हनुमान का प्राचीनतम अंकन देवगढ़ झाँसी, के मन्दिर में मिला है जो ५ वीं ६ टी शताब्दी का माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि पवनपुत्र का प्रतिमा स्वरूप कोई 1600 वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुका था।

खुदाई में हनुमान की विशाल प्रतिमा प्राप्त

इस समूह अंकन के अतिरिक्त किसी प्राचीन स्वतन्त्र प्रतिमा का तो अभाव ही मिला है। पर, आठवीं शताब्दी के बाद जब भारत में मुस्लिम आक्रमण प्रारंभ हुए तो हनुमान की प्रतिमाएँ स्वतन्त्र रूप से भी निर्मित की जाने लगीं। इस काल की एक प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में है। हनुमान की प्राचीनतम अभिलिखित प्रतिमा खजुराहो से प्राप्त हुई है जो ई. सन् ६२२ यानी १० वीं सदी की है।

सम्भवतः मुस्लिम आक्रमणों के दौरान जब भारत की ऐश्वर्यता रूपी सीता का पुन: पुन: हरण प्रारंभ हुआ तब भारतीयों में हनुमतोपासना का भाव धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। इसके पूर्व भी हनुमान ग्राम देवता के रूप से पूजित रहे होंगे। सुदर्शन संहिता के हनुमान स्त्रोत में वर्णित है कि "हनुमान आप प्रत्येक ग्राम में विराजमान हैं।" परन्तु मुस्लिम आक्रमणों का भारतीय जनमानस पर व्यापक प्रभाव पढ़ा। शक्ति व ब्रह्मचर्य की उपासना का महत्व बढ़ा और इसके आदर्श के लिये हनुमान सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हुए। विजयनगर साम्राज्य के शासक कृष्ण देवराय के गुरु श्री व्यासराय ने तो १५ वीं शताब्दी में भारत भ्रमण कर सम्पूर्ण भारत में ७३२ हनुमन्त विग्रहों की स्थापना की थी। हनुमानोपासना के व्यापक प्रचार का यह सबसे बड़ा व प्रथम प्रयास था।

मन्दसौर जिले में भारत की अनेकों प्राचीन व अनूठी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। अफजलपुर से प्राप्त सपक्ष हनुमान की विशाल प्रतिमा तो विश्व की सबसे दुर्लभ प्रतिमा है। १० फीट ऊँची ४६ इंच चौडी व ३२ इंच मोटी इस प्रतिमा में हनुमान द्विभङ्ग मुद्रा में उत्कीर्ण है। जटामुकुट बडी उभरी आँखें, खुला मुख, त्रिवलयों में लिपटी विशाल लांगुल, पीठ पर पंख, कमर में छूरी खोसे, गले में मुण्डमाला. द्विभुजी (दोनों खण्डित), सर्वागभूषण भूषित पाँव भग्न, लंगोटधारी पीठिका पर अपस्मार पुरुष व नीचे वाले भाग पर विभत्स मुखी देत्य वादन-गायन कार्य में संलग्न। १० वी शताब्दी के करीब निर्मित काले बलुआ पाषाण की यह प्रतिमा ग्रामीणों के द्वारा "राजा मोरध्वज" के नाम से जानी जाती थी क्योंकि यह गर्दन तक भूमि में गड़ी थी। १८८१ में मैंने अपने ग्राम-ग्राम पुरातत्वीय सर्वेक्षण के दौरान इसे देखा व तत्कालीन कलेक्टर रमेश दास (1981-1982) से प्रार्थना कर इसे खुदवाई व इसका फोटो प्रकाशित कर यह प्रमाणित किया कि यह प्रतिमा न तो राजा मोरध्वज राजा की है व नहीं मकरध्वज यानें कामदेव की है। वास्तव में यह प्रतिमा "सपक्ष हनुमान" की है।

सपक्ष हनुमान की एक प्रतिमा गंगा नदी के तट पर असी घाट पर भी विद्यमान है। इसका प्रतिभिज्ञान मैंने 1990 में अपने बनारस प्रवास के दौरान किया। यह प्रतिमा प्रख्यात प्रतिमा विज्ञानी डॉ. नी.पु. जोशी के घर के पीछे ही है परन्तु जोशी ने अपने ग्रंथ "प्रतिमा विज्ञान में इसका कहीं जिक्र नहीं किया है। इसी प्रतिमा के महाकवि तुलसीदास उपासक थे।

मेरे द्वारा अफजलपुर की प्रतिमा का उत्खनन् कराने के बाद भी ग्रामीण कई विद्वान् तथा पत्रकार इसे राजा मोरध्वज तथा मकरध्वज की प्रतिमा मानते रहे जिसका मैंने पुरजौर विरोध किया।

बाद में स्व पण्डित रामनारायण शर्मा, अनेक कलक्टरों, आयुक्ता म.प्र. पुरातत्व भोपाल, अनील गुप्ता आदि से इसे निकलाने व मन्दसौर स्थानान्तरित कराने का निवेदन भी किया परन्तु योजना सफल न हो सकी।

भानपुरा तहसील में स्थित हिंगलाजगढ़ परमार युग में शिल्प कला का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र था यहाँ से प्राप्त व इन्दौर संग्रहालय में संरक्षित हनुमान प्रतिमा एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। चपेट मुद्रा में पीत बलुआश्म से निर्मित इस प्रतिमा के दोनों हाथ भग्न है. सर्वागभूषण युक्त इस प्रतिमा में हनुमान ने कमर में छूरी खौस रखी है। बाँये पाँव के नीचे पूंछ में लिपटी एक प्रेतनी है। दायीं ओर एक वानर खड़ा है सम्भवतः यह मकरध्वज है जिसने हनुमान को पाताल में अहिरावण के नगर द्वार पर रोका था व हनुमानजी ने मुष्ठी प्रहार से उस पर वार किया था। यह दुर्लभ प्रतिमा ११ वी शताब्दी की है।

अनदेखी का हाल : न पुरातत्व विभाग और ना ही ग्राम पंचायत ने ली कोई सुध

हनुमान प्रतिमा की उपेक्षा

भानपुरा तहसील में गांधीसागर जलाशय की डूब में आया मोड़ी नामक ग्राम भी परमार काल में शिल्प कला का प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ १२ वीं शताब्दी की एक हनुमान प्रतिमा का उर्ध्व भाग प्राप्त हुआ है। इसमें हनुमान का दाहिना हाथ चपेट मुद्रा में है. तो बाँया ज्ञान मुद्रा में। विशाल गोल नेत्र खुला मुख, उन्नत वक्षस्थल, करण्डमुकुट हनुमान ने कमर में कटार लगा रखी है। प्रतिमा लगभग १२ वी शताब्दी की जान पड़ती है।

परमार युगीन एक विशाल एवं दुर्लभ प्रतिमा ग्राम डोराना (तहसील मन्दसीर) में प्राप्त हुई है। १.१८x ३०x १६ से. मी. मोटी इस प्रतिमा में हनुमान ने अपना बाँया पाँव प्रेतनी की छाती पर रखा है व पूंछ में एक अन्य प्रेतनी को आँधा लटका रखा है जो अंजली मुद्रा में लटकी है। इसी काल की एक विशाल प्रतिमा डोराना तहसील मन्दसौर में है। लगभग इसी काल की एक विशाल प्रतिमा क्यासरा (तहसील-डग, जिला-झालावाड़, राजस्थान) में है। यह प्रतिमा एक विशाल शिलाखण्ड पर उकेरी गई है।

१५-१६ वीं शताब्दी की एक विशाल प्रतिमा शंखोद्वार (तहसील मनासा) से मन्दसौर खुला पुरातत्त्व संग्रहालय के स्थानान्तरित की गई है इसमें हनुमान के बाँयें पाँव के नीचे एक व्यक्ति बैठा है इसके दाहिने हाथ में खड्ग तथा बाँये हाथ में पुष्प है। इसके पीछे एक स्त्री अंजली मुद्रा में खड़ी है। हनुमान का एक हाथ चपेट मुद्रा में व एक ज्ञान मुद्रा में है।

तंत्र ग्रन्थों में हनुमान के द्विमुखी व पंच मुखी रूपों का वर्णन भी मिलता है। पंचमुखी हनुमान की एक विचित्र व दुर्लभ प्रतिमा मन्दसौर के राम मोहल्ला स्थित पंचमुखी हनुमान मन्दिर में है। लाल बलुआश्म शिला पर उत्कीर्ण है इस प्रतिमा के मुख विद्यार्णव तन्त्र पचमुख हनुमत्प्रकरण के अनुसार टकित है. परंतु हाथों की संख्या १० के स्थान पर १२ तथा आयुधों की संख्या १४ है। डॉ. बाबुलाल शर्मा ने अपने एक लेख में इसकी वास्तविक जानकारी प्रस्तुत न कर कुछ भ्रामक तथ्य दिये हैं। इस प्रतिमा में दक्षिणा क्रम से इनके हाथो में कड़ा, सर्प, शख, अंकुश, चंवर व बाँये में त्रिशूल, शमशीर, खाँडा, पहाड़, फरसा, प्रेत व मुण्ड पकड़ रखा है। दाँये बाँये एक-एक हाथ से छाती पर मुट्ठी भींचे हनुमान कठोर भाव में खड़े हैं। बाँयें पाँव के नीचे एक प्रेतनी आँधी लेटी है। इस प्रतिमा में ऊपर की ओर रावण के १० मुख अंकित है। यह प्रतिमा १७ वीं सदी में निर्मित हुई जान पड़ती है। इस मन्दिर के पुजारी मोहनदास बैरागी के अनुसार यह प्रतिमा उनके १६ पीढी पूर्व डीडवाना (मारवाड-राजस्थान) से आये पूर्वजों द्वारा स्थापित की गई थी। इनके पास इस मन्दिर की अनेक सनदें है जिसमें सबसे प्राचीन सवत् १८२५ यानी १७६४ ई. की है।

मन्दसौर जिले से प्राप्त इन हनुमान प्रतिमाओं में विविधता का अभाव है लेकिन विशिष्टता अत्यधिक है। नौगाँवा (मन्दसौर तहसील), आगर (गरोठ तहसील) में क्रमशः विष्णुव महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमाएँ हनुमान के रूप में पूजी जाती है। नीमच तह. में हनुमान की प्रतिमाएँ ग्रामीण कलाकारों द्वारा निर्मित की गई है इनमें शास्त्रीय ज्ञान का अभाव है। जावद तहसील के घाट ऊपरी भाग में हनुमान की प्राचीन प्रतिमाओं का पूर्ण अभाव है लेकिन वर्तमान में मन्दसौर के कारीगरों द्वारा निर्मित हनुमान प्रतिमाएँ दूर-दराज तक पहुँच रही है व लोगों की आस्था का केन्द्र बन रही है।

स्रोत : दशपुर सहकारी समाचार
वर्ष 3, अंक-16: पृ. 14-17, मन्दसौर, 1 अप्रैल,
1985 प्रकाशक जिला सहकारी संघ मर्यादित, मन्दसौर
मोबा. 9424546019

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

–सम्पादक

प्रकृति के तीन जीवन

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

स्थूल भौतिक प्रकृति, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों की समष्टि है, जो सत, रज और तम तीन गुणों में स्वयं को बरतती है। मनुष्य का भौतिक अस्तित्व भी इन्हीं पंचतत्वों और तीनों गुणों की समग्रता है। प्रकृति में तत्वों का जितना अनुपात है, उतना ही मानव शरीर में भी है। यही समझना है।

हमें यह समझना चाहिए कि हम भी प्रकृति है उसी का एक भाग। उसी आयाम में जीवन की एक अभिव्यक्ति। यदि प्रकृति नष्ट होगी तो उसी तारतम्य और अनुपात में मनुष्य भी नष्ट होगा। जनजातीय समुदायों और जनपदीय ग्रामीण लोक संस्कृति के क्षेत्र में लम्बे समय तक कुछ कार्य करने के सिलसिले में, मेरी अभिरुचि इस ओर हुई थी कि आखिर आदिवासी समुदायों और लोक जीवन मनुष्य और प्रकृत्ति का क्या संबंध था। इस संबंध का रूप जीवन में कैसे प्रतिफलित होता था? क्या मानव और प्रकृति के इस संबंध ने ही उनकी जीवन शैली और धार्मिकता का रूप गढ़ा है?

दोनों ही क्षेत्रों में जीवन को एक सुदीर्घ परंपरा में 'मनुष्य' का 'प्रकृति के साथ संबंध 'अभिन्नता' और 'परस्परता के दो रूपों में समझा जा सकता है। जनजातीय समुदाय प्रकृति के साथ 'अद्वय' और अभिन्नता में हैं। वे प्रकृति को अपने से भित्र एक अलग जीवन रूप और सत्ता की तरह नहीं देखते और न ही अपने रहने जीने के परिवेश को 'प्रकृति' कहते हैं। न केवल उनकी भौतिक जीवनचर्या बल्कि आध्यात्मिक धार्मिक जीवन और देवता, मातृ-शक्तियां और पुरखे भी 'प्रकृति के जीवन में वास' करते उनके साथ अभिन्न रहते हैं। प्राकृतिक शक्तियों के ही रूप यहां देव और मातृशक्तियां हैं। 'प्रकृति की धार्मिकता' में धर्म एक जीवन अनुभव है, अलग से कोई धर्म सत्ता नहीं। 'जनजातीय देवलोक के शोध और अध्ययन से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। यहां प्रकृति एक 'विशाल निसर्ग है, जिसमें मनुष्य, प्रकृति और देवताओं के साथ रहता जीता है।

वहां प्रकृति इतनी पूर्ण होती है कि 'दिव्यता' का कोई अलग लोक और रूप नहीं होता। जीवन और जीवन के बोध के उन्मेष काल से लेकर अभी तक जनजातीय आरण्यक समुदायों में मनुष्य और प्रकृति की यह अभिनता अभी तक मौजूद है। ग्रामीण लोक समाजों में मनुष्य और प्रकृति की यह एकता टूट जाती है। यहां मनुष्य और प्रकृति पृथक है। मनुष्य उसका समादर करता, उसके अनेक रूपों की पूजा करता है। लोक के लौकिक' में प्राकृतिक शक्तियों के साथ एक विशाल पौराणिक धार्मिकता का अभ्युदय और विकास होता है, जिसमें 'लोक का जीवन' और 'दिव्यता' के स्वर्ग अलग हो जाते हैं। यहां पावन प्रकृति पूज्य और वंदनीय तो होती है लेकिन 'मनुष्य से पृथक हो जाती है। मानव और प्रकृति के इस संबंध में एक अद्भुत 'प्रेम' और 'परस्परता होती है और इसी से लोक समाजों में प्रकृति 'जीवन का आधार बनी रहती है, यह नष्ट नहीं की जाती। उससे इतना ही ग्रहण किया जाता है, जिसमें वह मनुष्य के जीवन को संभव करती अपना अस्तित्व कायम रख सके। उसका अलग से संरक्षण नहीं करना होता।

'परस्परता के इस अद्भुत जीवन संबंध में ही वास्तव में लोक का सहज धर्म, सांस्कृतिका परंपराएं और कला रूपों की रचना का मर्म समाहित रहता है। यह कृषि और पशुपालक समाजों की संस्कृति रचना का आधार है। इस जीवन रूप से ही 'हलधर' और 'गोपाल' का एक अद्भुत 'संश्लेष' प्रकट होता है।

नागर समाज रचना में मनुष्य और प्रकृति के पूर्वोक्त दोनों रूप धीरे-धीरे विदा हो जाते हैं। न तो मनुष्य प्रकृति के साथ अभिन्नता' में और न ही 'परस्परता' में रह पाता है। इसलिए उसमें रहने जीने वाले आदमी के पास 'प्रकृति का विराट् निसर्ग' और न ही 'आस्था की पावनता' का संबंध रखती प्रकृति बचती है। वह एक 'भौतिक' और 'जड़' साधन बनी रहती है।

अपने अहंकार और लालच में 'चेतन मनुष्य' जड़ प्रकृति का स्वामी हो जाता है. वह मनुष्य को ही 'सृष्टि' और 'जीवन' का केंद्र समझने लगता है। नागर सभ्यताओं को जीवन रचना में जब तक उत्पादन को पद्धतियां विभिन्न पारंपरिक कौशलों तक केंद्रित रहती है, तब तक भी प्रकृति अपने संतुलन में होती है, लेकिन जैसे ही मुनाफा' केंद्रित यंत्र उत्पादन में यह मानव सर्जना' सीमित और धीरे-धीरे नष्ट होती है, प्रकृति दोहन का विषय और एक जड़ संसाधन बना दी जाती है। अब तो वह 'प्रकृति' भी पूरी तरह कहां रह गई है। वह पर्यावरण का एक संकट भर बची है। इसी से मानव संकट में है। मनुष्य अपने हाथों रचे इस महानाश पर पुनर्विचार करें।

लेखक: म.प्र. आदिवासी एवं लोक कला अकादमी के पूर्व निदेशक हैं।

साभार : दैनिक भास्कर, भोपाल (म.प्र.)

फैक्ट : पांच तत्व या पंच महाभूत की तन्मात्राएं भी हैं, जो मनुष्य को इनसे जोड़ती हैं। ये हैं – गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द, जो शरीर से संबंधित हैं।

पुस्तक- समीक्षा

ओरछा की महिमा अयोध्या के समान

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक : ओरछाधीश

लेखक : श्री रामस्वरुप दास जी

समीक्षक : प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता, सागर

प्रकाशन : वीर भारत न्यास, मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग भोपाल (म.प्र.)

मूल्य : ₹300/-

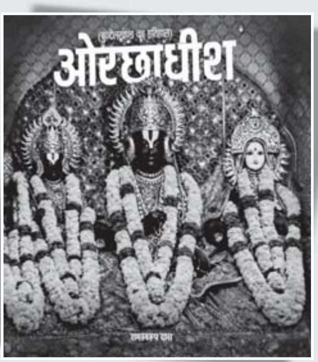

प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता

ओरछाधीश पुस्तक के रचयिता महर्षि अगस्त्य अलंकरण से संविभूषित, बुन्देलखंड की विरासत को संजोने वाले , गौ सेवा ,मातृवंदन, समाज व राष्ट्र मंगल के लिए सतत् संकल्पित अग्रपीठ मलूकपीठाधीश्वर श्री राजेंद्रदासजी देवाचार्य के पूज्य पिताजी श्री रामस्वरुप दास पांडे जी हैं। महर्षि कपिल महाराज और देवहूति से जिस प्रकार ऋषि कर्दम जन्मे और धन्यता को प्राप्त हुए उसी प्रकार श्री रामस्वरुप दास पांडे जी ने इस पुस्तक में ओरछा की महिमा को अयोध्या के समान बताते हुए अध्यात्म, धर्म, दर्शन , बुंदेलखंड ओरछा के इतिहास, समाज जीवन संरचना, लोकाचार, न्याय व्यवस्था ,ओरछा के राजाओं की भक्ति,साधना के साथ शूरवीरता का उज्जवल इतिहास और सांस्कृतिक परम्पराओं का सशक्त दस्तावेज प्रस्तुत किया है।

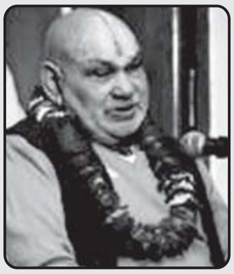

लेखक
श्री रामस्वरुप दास

इस पुस्तक में माननीय मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव जी का संदेश, डॉ. श्रीराम तिवारी जी की सम्पादकीय, श्री अग्रपीठ मलूकपीठाधीश्वर देवाचार्य श्री राजेन्द्रदास जी महाराज द्वारा भूमिका लिखी गयी। पं.प्रभुदयाल मिश्र जी ने प्राक्कथन में बुंदेलखंड की समृद्ध कला, साहित्य और बौद्धिक परम्पराओं का शोधपूर्ण विश्लेषण करके इस पुस्तक को श्रेष्ठता प्रदान की है। स्फुरण श्री गणेश दास जी भक्तमाली वृन्दावन धाम द्वारा आशीर्वचन तथा आत्मनिवेदन श्री रामस्वरुप दास पांडे जी ने लिखकर पुस्तक के औचित्य ओरछाधीश राजा श्री राम की कृपा, संतों महंतो के सत्संग से भावसंवेदन रचना स्थिति की विवेचना कर ओरछाधीश पुस्तक के माध्यम से बुंदेलखंड का इतिहास ही रच दिया। यह कृति उनके इसी सुयोग्य प्रकल्प का रूपांकन तथा बुंदेलखंड की संस्कृति के संरक्षण और संपोषण के प्रति प्रतिबद्धता एवं संकल्प का प्रतिफल है। पुस्तक का प्रकाशन - वीर भारत न्यास, मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग अधिष्ठान भोपाल द्वारा किया गया। पुस्तक के आवरण पर ओरछाधीश राजा श्रीराम के विग्रह का साक्षात् चित्र अंकित करके पुस्तक की महत्ता , आकर्षण एवं बुंदेलखंड धरा पर रामराज्य की परिकल्पना प्रतिष्ठित की है।

जयतु ओरछाधीशोः कौशल्यानन्दवर्धनो रामः।
मधुकर शाहार्चितपादः देवी कुंवर गणेश भक्तिवशः॥

गौ भक्ति में महाराजा दिलीप के चरित्र की साधना तपस्या को सार्थक करने में सिद्धहस्त सूर्यवंशी क्षत्रिय महाराजा प्रतापरुद्र जू देव ने ओरछा राज्य की स्थापना की। महाराजा मधुकरशाह तथा भक्तिमती महारानी कुँवर गणेशजू ने साक्षात् प्रभु श्रीराम को ओरछा के राजा बनाकर संतप्त हृदया कैकेयी की अभिलाषा पूर्ण की ओरछाधीश बनाया।

इस पुस्तक में पाँच भाग हैं। प्रथम भाग में तुंगारण्य शीर्षक से ऋषियों द्वारा वेदों पुराणों महाभारत में वर्णित बुंदेलखंड की महिमा, गरिमा का विशद विवेचन महाभारत वनपर्व अध्याय 85 में श्लोक 46 से 54 तक नौ श्लोकों के आधार पर किया है - पुण्य तीर्थ बुंदेलखंड तुंगारण्य में ऋषिगण,देवगण,वरुण,प्रजापति, नारायण, महादेव,ब्रह्मा जी आदि देवों ने आकर महर्षि भृगु जी को यज्ञानुष्ठान के लिए प्रेरित कर अपनी यज्ञाहुतियों से इस क्षेत्र को पावन किया। यह पुण्य तीर्थ तुंगारण्य अत्यंत पावन है। बुंदेल भूमि पर जन्म लेने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों के समस्त पाप ताप संताप नष्ट हो जाते हैं।

तुङ्गकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
वेदानध्यापयत् तत्र ऋषि सारस्वतः पुरा॥
तत्र वेदेषु नष्टेषु मुनेरन्गिरसः सुतः।
ऋषिणामुत्तरीयेषु सूपविष्टो यथासुखम्॥
ओङ्कारेण यथान्यायं सम्यगुच्चा रितेन।
येनयत् पूर्वमभ्यस्तं तत् सर्वं समुपस्थितम्॥

इसी तरह विंध्याचल पर्वत एवं बुंदेलखंड में सतत् प्रवहमान वेत्रवती - वेतवा नदी की चर्चा आयुर्वेद के ग्रंथ निघण्टु में तथा पद्मपुराण में की गयी है - भगवान शिव ने माता पार्वती को वेत्रवती की लोकोत्तर महिमा वर्णित की है। आचार्य केशवदास जी के शब्दों में-

नदी बेतवै तीर जँह तीरथ तुङ्गारण्य।
नगर ओड़छो बहुबसै धरनीतल में धन्य ॥
कैसोदास ओड़छा के आसपास तीस कोस।
तुगारण्य नाम वन वैरी को अजीत है ॥
निधि कैसो बन्धुवर बरन ललितबांध।
वानर बराह बहु मिल्लन कौं अभीत है ॥
जम की जमात जो कि जामवंत को सो दल।
महिष सुखद स्वच्छ रिच्छनको मीत है ॥
अचल अनवरत सिंधु सी सरित जुत।
संभु कैसौ जटाजूट परम पुनीत है ॥

ओरछा राज्य की वंश परम्परा के साथ भाग दो : स्थापना काल में बुंदेल राज्य परम्परा - हेमकरन,वीरभद्र से लेकर बुंदेल शिरोमणि महाराजा मधुकर शाह, रानी कुँअर गणेश की अनूठी भक्ति का वर्णन है। वृन्दावन की रसिक उपासना परम्परा में श्री स्वामी हरिदास जी ललिता सखी ,श्री ठाकुर बांके बिहारी के प्रकटकर्ता श्री हितहरिवंश तथा विशाखा सखी का अवतार श्रीहरिराम व्यास जी ओरछा बुंदेलखंड का गौरव थे।ओरछाधीश को राजा राम के रुप में प्रतिष्ठापित करने तक की गाथा को भक्तमाल में नाभादास जी ,प्रियादास जी ने अद्भुत वर्णन किया है। श्री नाभा गोस्वामी के भक्तमाल में भक्त का परत्व रुप - भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक - का उदाहरण श्रीहरिदास जी व्यास,उनके शिष्य महाराज मधुकर शाह और रानी कुँवरि गणेश में प्रगट हुआ। एक बार वृन्दावन से श्रीहितहरिवंश के शिष्य श्री नवलदास जी विचरण करते हुए ओरछा पधारे तो प्रातःकाल ब्रह्मबेला में अपने ठाकुर का उत्थाणन गीत रचा। भावविभोर हो व्यास जी नवल दास जी के साथ वृन्दावन चले गये।। उन्हें वृन्दावन से ओरछा चलने की प्रार्थना महाराजा मधुकर शाह ने इस छंद को गाकर की -

ओडछौ वृन्दावन सौ गाँव।
गोबरान सुख सील पहरिया ,जहाँ चरत तृन गाय।।
जिनकी पद रज उड़त शीश पर मुक्ति मुक्त हो जाय ॥
सप्तधार मिल बहत वेगवे जमना जल उनमान।
नारी नर सब होत पवित्र कर-कर के सन्नान॥
सो थल तुंगारण्य बखानो ब्रह्म वेदन गायो।
सो थल हियौ नृपति मधुकर कौ श्रीस्वामी हरिदास बतायो ॥

भाग तीन : बुंदेलखंड में ओरछा के प्रबल विस्तार के साथ राज्यशासन,चम्पतराय के पुत्र वीर छत्रसाल की अपने गुरु के प्रति निष्ठा साहित्य, संस्कृति, कला, स्थापत्य के क्षेत्र में स्वर्ण काल का विवेचन है। नौ वर्ष की उम्र में श्री हरिदास परम्परा के गौरीकुंज के शिष्य बनकर महा महाराजा छत्रसाल की अपने गुरु के प्रति भक्ति का वर्णन-

हाजिर रहत हुजूर में. हर हमेश छत्रसाल
लखत हर वखत रूपनिधि निधि दायक नन्द लाल ॥
मोर मुकुट मुरली लकुट, भृकुटि बनी वनमाल।
लाल त्रिभंगी चाल नित, लखत, खरौ छत्रसाल ॥
नृप अनन्य निधिवन नृपति, श्री ललिता हरिदास।
लाड़ लड़ावत लाल को, छत्रसाल हित आस ॥
स्वामी श्री हरिदास की, करत छत्र नित आस।
कुञ्जकेलि रस व्याय जो, हरत छगत की व्यास ॥

छत्रसाल की माँ श्रीमती लालकुँवरि ने पुत्र को देश व धर्म की रक्षा के लिए तैयार किया। बारह वर्ष की उम्र में छत्रसाल ने यवनों को मौत के घाट उतारा। अपने पिता के दुश्मनों को धूल चटाई। हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज बुलन्द की। महामति प्राणनाथ जी की आज्ञा से पाँच सवारों और पच्चीस सैनिकों की सीमित सेना के बल पर बुंदेलखंड का अधिकांश भाग विधर्मियों से मुक्त कराया।महाकवि भूषण की पालकी में कंधा लगाकर बुंदेलखंड के ओरछा नगर को यश,प्रतिष्ठा और कीर्ति दिलाई। महाराजा मधुकर शाह एवं रानी कुँवरि गणेशी की धर्मपरायणता ने अपने आराध्य को अयोध्यापति से ओरछाधीश रामराजा के रुप में विराजमान कर बुंदेलों के इतिहास को स्वर्णयुग बनाया।अन्तिम अध्याय में संघर्ष काल का वर्णन है जिस समय अकबर जहाँगीर के शासन में ओरछा के कवि केशवदास की प्रतिभा से प्रभावित होकर बीरबल ने इंद्रजीत महाराज का एक करोड़ जुर्माना अकबर से माफ कराया। महाराज इन्द्रजीत की प्रेयसी रायप्रवीण को जब राजा के दरबार में दिल्ली बुलाया तब रायप्रवीण ने एक दोहा लिखकर दिया -

विनती राय प्रवीन की सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, बारी वायस स्वान ॥

रायप्रवीण की वाक्पटुता से अकबर को परास्त होना पड़ा। भाग पाँच : पुनर्जागरण में स्थानांतरित राजधानी टीकमगढ़ के राजाओं एवं उनके साहित्य संस्कृति उत्थान के प्रयासों का वर्णन है। लेखक ने बड़ी सहजता, सरलता, तथ्यात्मकता, गाम्भीर्य का परिचय देते हुए समस्त राज्य व्यवस्था का अद्भुत चित्रांकन किया है। राजा विक्रमादित्य सिंह 1753- धर्मपाल सिंह, तेजसिंह सुजान सिंह,हमीरसिंह प्रतापसिंह जू देव वीरसिंह जू देव द्वितीय 1930-1965 तक की पूरी परम्परा के साथ ओरछा राज्य के दर्शनीय स्थलों का भी विस्तार से वर्णन किया है। बुंदेलखंड ओरछा राज्य की संत काव्य परम्परा में ग्यारहवीं सदी के कीर्तिवर्मा के राजकवि प्रबोधचन्द्रोदय कर्ता श्री कृष्णदास हुए। उत्तररामचरितम् के रचयिता भवभूति बुंदेलखंड के थे। वीरमित्रोदय जैसे विशाल ग्रंथ के रचयिता महाराज वीर सिंह देव के राजकवि रहे। आल्हा ऊदल जैसे वीरों के शौर्य से पावन महोबा की धरती पर जगनिक कवि ने योगदान दिया। गाँव, गाँव गली गली आज भी आल्हा की धूम मची रहती है खजुराहो का किंजर चंदेल शासकों के शक्ति केन्द्र रहे। बुंदेलखंड की महान विभूति संत श्री मथुरादास जी टीकमगढ़ जो 2005 से विरक्ति दीक्षा प्राप्त कर अखंड अयोध्या धाम में निवास कर रहे हैं। आप सुदीर्घ 90 वर्ष की उम्र में आपका जीवन आज भी हम सबके लिए प्रेरणा श्रोत बना हुआ है। इस प्रकार ओरछाधीश पुस्तक बुंदेलखंड के इतिहास का सशक्त प्रामाणिक दस्तावेज है । यह पुस्तक पूज्य पिताजी महाराज श्री रामस्वरुप दास जी की साधना, विलक्षण प्रतिभा का प्रतिफल है। बुंदेलखंडवासियों के लिए यह पुस्तक धर्मग्रंथ की तरह पठनीय है। बुंदेलखंड के हर घर में यह पुस्तक उपलब्ध हो। आज की युवा पीढी अपने बुंदेलखंड को जानें कि यह बुंदेलखंड की पावन धरा वैदिक काल से ऋषि मुनियों की साधना स्थली होने के साथ भारत देश का हृदयक्षेत्र है। यही आशा,आकांक्षा शुभेच्छा है कि बुंदेलों की वीरता, साहित्य, संस्कृति ,कलाओं के संरक्षण को जनमानस समझे, आने वाली पीढ़ी को विरासत संजोने प्रेरित करे। शुभमस्तु

समीक्षक - लेखिका प्राचार्य, पं दीनदयाल उपाध्याय,
शासकीय कला एवं वाणिज्य अग्रणी महाविद्यालय सागर.मध्यप्रदेश पिनकोड-470001

■

मानस में सनातन संस्कृति के सूत्र

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	मानस में सनातन संस्कृति के सूत्र
लेखक	:	आचार्य प्रभुदयाल मिश्र
समीक्षक	:	डॉ. प्रेम भारती
प्रकाशन	:	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
पृष्ठ	:	160 + 4 = 164
मूल्य	:	₹550/-
प्रथम संस्करण	:	2026

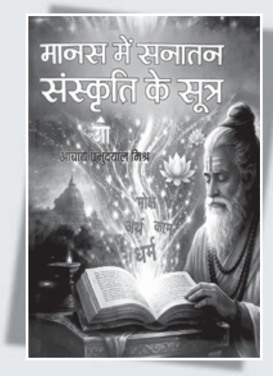

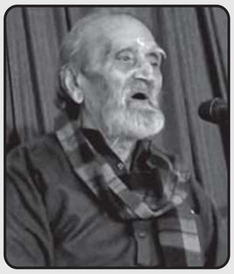
डॉ. प्रेम भारती

भारत की महान आध्यात्मिक संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान को आज पूरा विश्व आदर की दृष्टि से देखने लगा है। ऐसा इसलिए कि वह अक्षय नीर की भाँति सतत प्रवाहमान है। बस आवश्यकता है, उसके मूल तत्वों से समाज को समय-समय पर अवगत कराने की तथा समयानुकूल उसकी व्याख्या करने की। आचार्य प्रभुदयाल मिश्र की पुस्तक "मानस में सनातन संस्कृति के सूत्र" कुछ ऐसे ही भावों को लेकर सद्य: प्रकाशित पुस्तक है।

इस कालजयी रचना से तुलसी आज भी जीवित हैं। श्री मिश्र वेद, वेदांत और भारतीय ज्ञान साधना के समर्पित साधक हैं तथा अध्यात्म और संस्कृति की वाहक मासिकी 'तुलसी मानस भारती' के प्रधान सम्पादक हैं। इस पत्रिका के सम्पादकीय संकलन को इस कृति में ऐसे संजोया गया है कि जिसे पढ़कर भारती की सनातन संस्कृति शोधार्थियों के लिए बीज-ग्रंथ सिद्ध होगी।

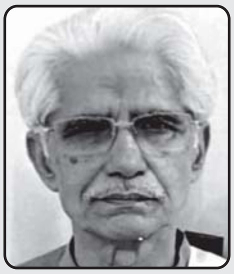
लेखक
आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

लेखक द्वारा इसमें राम-रावण युद्ध में धनुर्विद्या, मानस में आयुर्वेद, राम के जन्म के समय ज्योतिष-ज्ञान की परिपूर्णता, मिथिला अयोध्या वर्णन में स्थापत्य कला, पारिस्थितिक-ज्ञान के समन्वय सूत्र दिए गए हैं। षड्-दर्शन, भक्ति आंदोलन, इतिहास-पुराण, विज्ञान, रामराज्य की भूमिका और संदर्भ को विस्तार से समझाया गया है। परिशिष्ट के रूप में समसामयिक जानकारी भी दी गई है।

प्रख्यात संस्कृतज्ञ और मानस मर्मज्ञों के विमर्श भी दिए गए हैं। पूरी पुस्तक ज्ञान का अक्षय कोष है। हर तथ्य को बुद्धि की भट्टी में तपा कर (प्रयोग) किया गया है।

जैसे नदी-नाले और समुद्र जीवन के लिए जल-संग्रह करते हैं और बादल दूसरों के लिए बरसते हैं, वैसे ही हमें समाज के लिए ऐसे कार्य करने की प्रेरणा यह पुस्तक देती है। संक्षेप में कहा जाए तो राम के समान हमें भी यथाशक्ति मानव कल्याण की दिशा में कार्य करने और राष्ट्रभक्ति को साधन बनाकर कर्तव्य निर्वाह करने का अनुभव कराती हुई यह पुस्तक इसी धरा पर मोक्ष की अनुभूति कराती है।

सर्वथा अछूते विषय, प्रमाण पुष्ट सामग्री, खोजपरक निर्लिप्त-दृष्टि, गहन विपुल अध्ययन और सुबोध भाषा-शैली आदि इसके वैशिष्ट्य हैं। मेरा अनुरोध है पुस्तक स्वयं पढ़ें तथा नौनिहालों को भी पढ़कर समझाएं। आधुनिक भाषा में कहें तो यह पुस्तक भक्ति का करंट भी है, ज्ञान का इंटरनेट भी है और कर्म का ट्विटर भी है। सनातन संस्कृति का ऐसा 'टावर' है, जिसके सिग्नल कभी लुप्त नहीं होते। और ए आई का तो कमाल ही क्या जा सकता है!

किंबहुना, श्री मिश्र जी बधाई के पात्र हैं। इस सांस्कृतिक-यात्रा का सहभागी बनाने के लिए आचार्य मिश्र जी को बहुत-बहुत बधाई।

सम्पर्क: एफ ९१/४९, तुलसी नगर भोपाल
मो. 9424413190

■

पुस्तक- समीक्षा

बूंद में समुद्र

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक : गागर में सागर
लेखक : आचार्य डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
समीक्षक : आचार्य प्रभुदयाल मिश्र
प्रकाशन : वैभव प्रकाशन पुरानी बस्ती, रायपुर, छत्तीसगढ़
पृष्ठ : 238 + 4 = 242
मूल्य : ₹300/-
प्रथम संस्करण : 2018

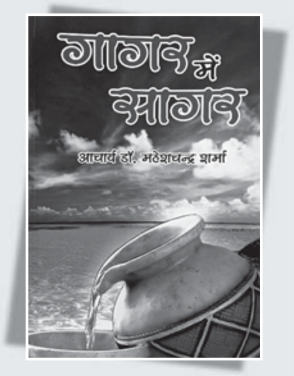

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

'गागर में सागर' शीर्षक से आचार्य डॉक्टर महेशचंद्र शर्मा की यह 238 पृष्ठ की कृति 'बूंद में समुद्र' भी कही जा सकती है क्योंकि इसका प्रत्येक आलेख जिनकी संख्या 109 है, का शीर्षक भाग एक श्लोक है जो भारतीय ज्ञान मंजूषा मैं संचित अपने आप में एक विश्व कोष या ज्ञान का शीर्ष संकेतक ही कहा जा सकता है। लेखक की यह ज्ञान निष्ठा की वह पहचान है जो छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश मैं बहुत लोकप्रिय देश बंधु समाचार पत्र में नियमित रूप से अनेक वर्ष प्रकाशित हुई है । आचार्य प्रवर डॉ शर्मा ने वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण, चाणक्यनीति, विदुर नीति, संस्कृत महाकाव्य और शुभाषितों से संग्रहीत श्लोकों पर समाधृत की है। विद्वान संस्कृतज्ञ की यह पद्धति इस अर्थ में विशेष है कि एक श्लोक से आरंभ कर लेखक त्रिकाल दृष्टि से अतीत, वर्तमान और भविष्य के जीवन बोध की परिभाषा और उसका विश्लेषण तथा वांछनीय विस्तार करता है। इस प्रस्तुतिकरण में इस प्रकार के शिल्प या कथन की कहीं कोई जकड़न भी नहीं है कि पहले कथन का संदर्भ, अर्थ और व्याख्या ही की जाएगी। लेखक ने अपनी मुक्त विचार प्रक्रिया में कभी आरंभ में अर्थ, कभी संदर्भ और कभी मध्य या अंत में इसे दिया है। इससे स्पष्ट यही होता है की लेखक का केन्द्रीय भाव वर्तमान जीवन और जगत को एक सम्पूर्णता में समेटकर उसे सर्वथा समीचीन और सकारात्मक दिशा प्रधान करना है।

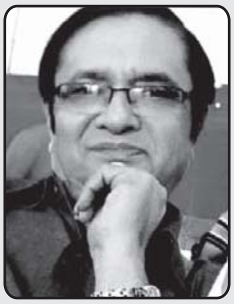
लेखक
आचार्य डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

इस सामग्री और इसके संकेतकों को देख और पढ़ कर यह आसानी से समझा जा सकता है कि भारतीय मनीषा और मनीषियों की जीवन दृष्टि कितनी परिपूर्ण और कितनी लक्ष्यभेदी थी। चाहे मनोविज्ञान हो, या अध्यात्म हो, समाजशास्त्र हो, या कि जीवन लक्ष्य, इन सूक्त संदर्भों में सभी को एक परिपूर्णता से समेट लिया गया है।

लेखक डॉक्टर शर्मा संस्कृतज्ञ तो है ही, उसकी बहुज्ञता और विश्लेषणकारी मेधा भी सराहे जाने योग्य है। जैसे कोई आकाश को धरती अथवा आध्यात्म को विज्ञान या ज्ञान को व्यवहार के धरातल पर एक संवाद कला में उतार रहा हो, यही उसका लाघव कौशल है।

पुस्तक के ध्येय को लेखक द्वारा पुस्तक की "प्ररोचना" के इस उद्धरण से अच्छी तरह से समझा जा सकता है –

"भारतीय संस्कृति में सच्चरित्र को योग्यता का आदर्श माना गया है। किसी पुरोधा, पुरोहित, नायक अथवा महानायक का आधारभूत गुण भी शालीन सच्चरित्रता को ही स्वीकार किया गया है। क्यों कि यह संसार अनुकरणशील है। श्रेष्ठ, आदर्श या वरिष्ठ व्यक्तित्व जैसा आचरण या व्यवहार करते हैं, शेष पश्चाद्वर्ती लोग उसी का अनुगमन करते है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने भी, देवर्षि नारद द्वारा उन्हें महाकाव्य रचने हेतु ब्रह्म निर्देश सुनाने पर भी यही प्रश्न किया गया था । उन्होंने पूछा था कि - 'चारित्रेण च को युक्तः ?' सदाचरण से कौन उपयुक्त है, जिस पर केन्द्रित महाकाव्य रचा जाय ?"

मैं लेखक को इस बहुज्ञ व्यवहार्य बोध प्रबोध के लिए प्रभूत साधुवाद प्रकट करता हूं।

संपर्क : अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल
agastyasansthanam@gmail.com

आचार्य शंकर का दर्शन भारतीय संस्कृति धर्म और आध्यात्मिक एकता का आधार : मुख्यमंत्री डॉ. यादव

'एकात्म पर्व' आधुनिक समाज और नई पीढ़ी को अद्वैत से जोड़ने का अभिनव और सफल प्रयास

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास, मप्र शासन संस्कृति विभाग द्वारा आचार्य शंकर प्रकटोत्सव के उपलक्ष्य में 'एकात्म पर्व' का आयोजन एकात्म धाम, ओम्कारेश्वर में 17 से 21 अप्रैल तक संपन्न हुआ। पर्व का शुभारंभ मुख्यमंत्री डॉ मोहन यादव, द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य सदानंद सरस्वती, विवेकानंद केंद्र कन्याकुमारी की उपाध्यक्ष पद्मश्री निवेदिता भिड़े, चिन्मय मिशन के आचार्य स्वामी शारदानंद सरस्वती, महामंडलेश्वर विवेकानंद पुरी, महामंडलेश्वर नर्मदानंद बापजी, स्वामी वेदतत्त्वानंद पुरी एवं अन्य पूज्य संतों की उपस्थिति में वैदिक अनुष्ठान के साथ हुआ।

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि अद्वैत ज्ञान के सूर्योदय के केन्द्र ओंकारेश्वर की चेतना की अनुभूति आज हम सबको हो रही है। ज्ञान और ध्यान की धरती मध्यप्रदेश ने ऐतिहासिक रूप से धर्म, संस्कृति और आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार किया है। हर युग में इसके प्रमाण विद्यमान हैं। श्रीरामचन्द्र जी वनवास मिलने पर मंदाकिनी माता के किनारे चित्रकूट के धाम पधारें और प्रभु श्रीराम का आगे का जीवन मानव मात्र के लिए पूजनीय हो गया, समाज ने रामराज्य का अनुभव प्राप्त किया। भगवान श्रीराम ने संस्कारों, व्यवहारगत मूल्यों, परस्पर संबंधों सहित शासन के ऐसे सूत्र प्रदान किए जो आज भी महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण, कंस वध के बाद शिक्षा ग्रहण करने उज्जयिनी स्थित सांदपिनी आश्रम पधारें। तत्पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मवाद का संदेश दिया, जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है। इसी क्रम में सनातन के कठिनकाल में कालड़ी केरल से चले 8 वर्षीय बालक शंकर ओंकारेश्वर पधारे, जहां परम पूज्य गुरु गोविंदपाद जी के आशीर्वाद से आदि शंकराचार्य बनकर सनातन धर्म की धारा को अविरल रूप से बहाने का आधार प्रदान किया। आदि शंकराचार्य का दर्शन भारतीय संस्कृति, धर्म और आध्यात्मिक एकता का आधार बना। यदि आज हमारी सनातन विरासत, शास्त्र और आध्यात्मिक परम्पराएं जीवित एवं जागृत हैं तो यह आदिगुरु शंकराचार्य के प्रयास और आशीर्वाद से ही संभव हुआ है।

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व और मार्गदर्शन में राज्य सरकार सनातन संस्कृति के सिद्धांतों के अनुरूप समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए समर्पित है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों में भी एकात्मता के भाव की अभिव्यक्ति होती है। इसी क्रम में राज्य सरकार अंत्योदय के सिद्धांतों के क्रियान्वयन के लिए प्रतिबद्ध है। उदारमना भारतीय सनातन संस्कृति में भक्षण को नहीं अपितु दूसरों के कल्याण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इस क्रम में पंच दिवसीय एकात्म पर्व में पधारे संत, मनीषी एवं विद्वान एकात्मता के वैश्विक संदेश को रेखांकित करेंगे। यह पर्व आधुनिक समाज और नई पीढ़ी को अद्वैत से जोड़ने का अभिनव और सफल प्रयास सिद्ध होगा।

एकात्म यात्रा तथा अद्वैत पर आधारित लघु फिल्मों का हुआ प्रदर्शन

मुख्यमंत्री डॉ.मोहन यादव ने अद्वैत लोक एवं अक्षर ब्रह्म प्रदर्शनी का लोकार्पण किया, साथ ही वे वैदिक अनुष्ठान में भी सम्मिलित हुए। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने संस्कृत सेवा फाउंडेशन पुणे के श्री रोहन अच्युत कुलकर्णी द्वारा लिखित पुस्तक वेदांत सिद्धांत चंद्रिका विद उद्गार का विमोचन किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने एकात्म धाम की यात्रा, प्रकल्प और भावी स्वरूप पर केंद्रित वेबसाइट www.oneness.mp.gov.in का भी लोकार्पण किया। कार्यक्रम में एकात्म यात्रा तथा अद्वैत लोक पर आधारित लघु फिल्मों का प्रदर्शन भी किया गया।

व्यक्ति विश्व को जानना चाहता है, लेकिन अपनी आत्मा से साक्षात्कार नहीं करना चाहता - जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी श्री सदानंद सरस्वती

श्री द्वारका शारदा पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी श्री सदानंद सरस्वती ने एकात्म धाम की संकल्पना को सराहा। उन्होंने कहा कि प्राणी मात्र में परमात्मा का दर्शन करने वाला ही एकात्मता सिद्ध कर सकता है। व्यक्ति में एकात्म बोध होना आवश्यक है। ब्रह्म, भगवान और आत्मा तीनों एक हैं। प्राणी मात्र में विद्यमान आत्म तत्व का ज्ञान ही एकता का आधार है। सद्-चित-आनंद का भाव ही एकता है। इस जगत से जगदीश्वर को प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है। उन्होंने कहा कि गौमाता, धरती माता और जन्म देने वाली माता का सम्मान होना आवश्यक है। गौमाता की सेवा और रक्षा को आवश्यक बताते हुए उन्होंने कहा कि हमारी संस्कृति, संस्कारों से समृद्ध होती है। व्यक्ति विश्व को जानना चाहता है, लेकिन अपनी आत्मा से साक्षात्कार नहीं करना चाहता है। प्राणी मात्र में आत्मा रूपी जो तत्व विद्यमान है, वहीं एकात्म है। तत्व को समझते हुए हमें अपने लक्ष्य और उसकी प्राप्ति की जानकारी होनी चाहिए। शरीर केवल भोग-विलास के लिए नहीं है, इस दृश्य जगत से हमें अदृश्य ईश्वर को प्राप्त करना है। वेदांत का आश्रय लेकर ही अद्वैत और एकात्मता को सिद्ध किया जा सकता है। वेदों में कही गई बातों का पालन करना चाहिए।

सभी के साथ एकात्मता का व्यवहार करना ही धर्म का आधार - पद्मश्री निवेदिता भिड़े

विवेकानंद केंद्र कन्याकुमारी की उपाध्यक्ष पद्मश्री निवेदिता भिड़े ने कहा कि हम सभी की आत्मा एक है, शरीर मात्र एक साधन है। मनुष्य शरीर, एकात्म का सबसे सुंदर उदाहरण है, शरीर में कई अंग है, लेकिन चेतना एक है। संपूर्ण विश्व में हम सभी ईश्वर की कोशिकाओं की तरह हैं, इन कोशिकाओं का प्राण ईश्वर ही है, जो सर्वथा एक है। हमारे वेदों में विद्यमान क्वांटम फिजिक्स और पर्यावरण के सिद्धांतों को विश्व आज समझ रहा है। दुनिया के लोग कहते हैं कि अगर मानव समाज की रक्षा करनी है तो भारत के वेद, उपनिषदों का अध्ययन करना होगा। स्वामी विवेकानंद ने विजन ऑफ वननेस की बात कही थी। हमारे ऋषियों ने कहा है कि सत्य बोलो और धर्मानुसार चलो। सभी के साथ एकात्मता का व्यवहार करना धर्म का आधार है, अत: हमारी वाणी लोगों को जोड़ने वाली होनी चाहिए। सृष्टि का भाग होने के नाते हमें अपने कर्तव्यों का पालन धर्मानुसार करना चाहिए। चिन्मय इंटरनेशनल फाउंडेशन वेलियानाड केरल से पधारे स्वामी शारदानंद सरस्वती ने कहा कि आदि शंकराचार्य विश्वगुरु हैं, उन्होंने संन्यास ग्रहण कर सनातन धर्म को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। आचार्य शंकर ने अद्वैत सिद्धांत के माध्यम से जीवन के लिए उचित पथ का दर्शन कराया। उन्होंने स्त्रोत साहित्य में योग-ध्यान की स्थितियों की व्याख्या की है।

आचार्य शंकर के जन्मस्थान से निकाली जाएगी एकात्म यात्रा

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास के प्रो.यज्ञेश्वर एस. शास्त्री ने कहा कि ओंकारेश्वर में एकात्म धाम के अंतर्गत आचार्य शंकर की 108 फीट एकात्मता की प्रतिमा का लोकार्पण 2023 में हो चुका है। ओंकारेश्वर में 2400 करोड़ की लागत से आचार्य शंकर का अद्वैत लोक संग्रहालय का कार्य प्रगति पर है। ओंकारेश्वर को ग्लोबल सेंटर ऑफ वननेस (एकात्मता का केंद्र) को बनाया जा रहा है। यहां अब तक दो हजार पौधे रोपे गए हैं। न्यास द्वारा अद्वैत जागरण शिविर और शंकर दूतों के प्रशिक्षण जैसी गतिविधियां संचालित की जा रही हैं। सिंहस्थ 2028 से पहले भारत में एकात्म बोध के जागरण के लिए जनवरी से अप्रैल 2027 तक आचार्य शंकर के जन्मस्थान से एकात्म यात्रा निकाली जाएगी। आचार्य शंकर के जीवन पर एक फिल्म का निर्माण भी किया जा रहा है। आचार्य शंकर पर शोध के लिए फेलोशिप दी जा रही है।

वेंकटेश्वर वेद विज्ञान पीठ तिरुमला से पधारे आचार्य श्री कोपाशिव सुब्रमण्यम अबधानी ने वैदिक अनुष्ठान के महत्व पर प्रकाश डाला। उनके मार्गदर्शन में पांच दिनों तक वैदिक अनुष्ठान, भाष्य पारायण,चतुर्वेद पारायण हुआ।

पहले दिन उड़िया बाबा पर आयोजित वैचारिक सत्र में अयोध्या से आए आचार्य मिथिलेशनंदिनीशरण ने कहा कि उड़िया बाबा जी जैसे महापुरुषों का वैभव सूर्य के समान है, जो स्वयं को प्रकाशित करने का प्रयास नहीं करते, बस उनके होने मात्र से अंधकार दूर हो जाता है। महाराज श्री ने स्वयं को केवल एक "माध्यम" माना जिसने उस प्रकाश को दुनिया तक पहुँचाया। इसी सत्र में माँ पूर्णप्रज्ञा एवं स्वामी प्रणवानंद सरस्वती ने भी विचार व्यक्त किये।

'अद्वैत एवं Gen Z' विषय पर आयोजित संवाद सत्र में विद्वान श्री ललितादित्य गन्नवरम् ने समकालीन युवा पीढ़ी की मानसिकता, चुनौतियों और संभावनाओं पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया। अपने वक्तव्य की शुरुआत उन्होंने इस मूल विचार से की कि "हर पीढ़ी अपने पूर्ववर्ती पीढ़ी की प्रतिक्रिया होती है" अर्थात् नई पीढ़ी अपने साथ कुछ नवीन सद्गुण लेकर आती है, तो वहीं कुछ अवगुण भी अनजाने में ग्रहण कर लेती है।

उन्होंने स्पष्ट किया कि विज्ञान के क्षेत्र में स्वतंत्र परीक्षण और तर्क उचित हैं, लेकिन वेदांत जैसे आध्यात्मिक विषयों में अनुभूत सत्य को समझने के लिए गुरु और परंपरा का मार्गदर्शन अनिवार्य होता है।

स्वामिनी ब्रह्मप्रज्ञानंद सरस्वती ने बताया कि सुख-सुविधाओं और संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद भी नई पीढ़ी के भीतर एक प्रकार का अधूरापन और खालीपन बना रहता है। अद्वैत वेदांत को इसका समाधान बताते हुए कहा कि वेदांत हमें यह सिखाता है कि संसार में रहते हुए भी व्यक्ति मोह-माया से परे रह सकता है। उन्होंने कहा कि वास्तविक सुख बाहरी साधनों में नहीं, बल्कि अपने भीतर की शांति और आत्मबोध में निहित है।

रामकृष्ण मिशन पर आधारित सत्र में स्वामी जापसिद्धानंद, स्वामी वेदतत्त्वानंद पुरी तथा स्वामी सर्वभद्रानंद ने सहभागिता की। इस सत्र में वक्ताओं ने रामकृष्ण परमहंस के जीवन, उनके अद्वैत दर्शन तथा मिशन की व्यापक भूमिका पर गहन विचार प्रस्तुत किए। स्वामी वेदतत्त्वानंद पुरी जी के अनुसार, रामकृष्ण मिशन को केवल एक संस्था के चश्मे से देखना इसकी व्यापकता को सीमित करना होगा। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि रामकृष्ण मिशन वास्तव में "श्री रामकृष्ण और उनके मिशन" का एक जीवंत विस्तार है। उन्होंने अपने विचारों को चार मुख्य स्तंभों, रामकृष्ण परमहंस का जीवन दर्शन, उनके शिष्यों का योगदान, संस्थागत ढांचा और समाज पर प्रभाव, में विभाजित कर प्रस्तुत किया। उन्होंने 'शिव ज्ञाने जीव सेवा' के मंत्र को समझाते हुए कहा कि सेवा केवल औपचारिकता नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव में शिव का दर्शन करना है। स्वामी सर्वभद्रानंद ने बताया कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने सन् 1897 में अपने शिष्यों के साथ मिलकर रामकृष्ण आश्रम की स्थापना की। उन्होंने यह भी कहा कि परमहंस जैसे संत विरले होते हैं, जो यह कह सकें कि वे ईश्वर के साक्षात दर्शन करा सकते हैं।।स्वामी जापसिद्धानंद ने अद्वैत की यात्रा पर प्रकाश डालते हुए तोतापुरी बाबा के योगदान को रेखांकित किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार तोतापुरी बाबा ने रामकृष्ण परमहंस को निर्विकल्पता की ओर अग्रसर किया। माँ काली के साकार रूप के कारण ध्यान में आने वाली बाधाओं के बावजूद, अंततः उन्होंने निर्विकल्प समाधि का अनुभव प्राप्त किया। स्वामी जी ने माँ शारदा देवी की पवित्रता का भी उल्लेख किया और बताया कि वे रामकृष्ण परमहंस की प्रथम

शिष्या थीं, जिनकी पवित्रता के कारण वे लंबे समय तक समाधि में स्थित रह सके।

दूसरे दिन देश के विभिन्न वक्ताओं एवं संतो की उपस्थिति में विभिन्न सत्रों का आयोजन हुआ, कार्यक्रम में **सिख संप्रदाय पर विशेष** सत्र हुआ,जिसमें गुरु ग्रन्थ साहिब से लेकर अद्वैत दर्शन की चर्चा हुई।

इस सत्र में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय,दिल्ली के प्रो.रामनाथ झा, पंजाब विश्वविद्यालय के पूर्व कुलाधिपति प्रो जगबीर सिंह एवं निर्मल अखाड़ा के संत दर्शन सिंह ने गुरु ग्रंथ साहिब, वेदांत और संत साहित्य के अटूट संबंधों पर प्रकाश डाला। उन्होंने जोर देकर कहा कि संतो की वाणी वास्तव में वेदों की ही अभिव्यक्ति है। उनके अनुसार, वेदों में निहित गूढ़ ज्ञान को ही संतों ने सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाया है। प्रो. रामनाथ ने गुरु ग्रंथ साहिब का उदाहरण देते हुए कहा कि इस पवित्र ग्रंथ में अनेक महान संतों की वाणी संकलित है, जो प्रत्यक्ष रूप से वेदों के मूल सिद्धांतों का ही विस्तार है। उन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि "वेद ही धर्म का मूल है" और सत्य का साक्षात्कार या अनुभव करना ही वास्तव में वेदांत है।

अध्यात्म की गहराई में उतरते हुए उन्होंने कहा कि "आत्मा ही राम है"। उन्होंने कबीर और वेदों के बीच सामंजस्य बिठाते हुए तर्क दिया कि जो सत्य वेदों में उद्घोष किया गया है, कबीर दास ने उसी सत्य को अपने अनुभव के आधार पर समाज के सामने रखा।

महंत दर्शन सिंह ने कहा कि गुरुनानक देव गुरुवाणी का मंगलाचरण अद्वैत से ही करते है। एक ओंकार की अनुगूँज सर्वप्रथम इसी ओंकारेश्वर की पुण्य भूमि से हुई है। उन्होंने कहा कि सभी शास्त्रों के पीछे की मूल शक्ति है एक ओंकार ही है। उन्होंने कहा कि गुरुवाणी में ब्रह्म के अनेक उदाहरण है, ब्रह्म ही इस संसार का आधार है।

अद्वैत एवं पर्यावरण विषय पर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम,नई दिल्ली के राष्ट्र प्रमुख डॉ. बालकृष्ण पिसुपति ने अपने वक्तव्य में 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या'का उदाहरण लेते हुए बताया कि पर्यावरण हमसे अलग नहीं है, अपितु यह हमारा ही एक हिस्सा है इसलिए किसी भी चीज को अलग समझना भ्रम है। उन्होंने कहा कि प्रकृति को बाहरी मानने के कारण ही संकटों की शुरुआत होती है। बालकृष्ण ने कहा कि पानी और जीव-ज गत किसी सीमा को नहीं मानते, लेकिन मनुष्य ने सदैव उन्हें बाँटने की कोशिश की है। यही सोच पर्यावरण समस्याओं को जन्म देती है। पिसुपति ने कहा कि हम पर्यावरण संसाधनों के मालिक नहीं हैं, बल्कि उसके संरक्षक हैं। उन्होंने सलाह देते हुए कहा कि बदलाव की शुरुआत हमें खुद से करनी चाहिए। उसका प्रभाव भले ही कम लगे, परंतु उसका सामूहिक प्रभाव एक बड़ा अंतर ला सकता है। उनसे पूछे गए एक सवाल के उत्तर में उन्होंने स्पष्ट किया कि इस वक्त विश्व के सामने समस्या ये है कि हमारे पास एक समस्या के कई समाधान है और उनमें से किसी एक को चुनना मुश्किल है, क्योंकि हर देश विकास का अपना तरीका चुनता है।

सौर गांधी के नाम से प्रसिद्ध चेतन सिंह सोलंकी ने अद्वैत एवं पर्यावरण विषय पर अपनी बात रखी।

इसी दिन रमण आश्रम पर आयोजित सत्र में डॉ. वेंकट एस. रमणन, प्रो.भूपेंद्र गोदारा और स्वामिनी सद्विद्यानंद सरस्वती महर्षि रमण के आत्म-विचार पर संवाद किया।

अद्वैत एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता (A.I.) आयोजित सत्र में स्वामी प रम शिवानंद, सर्वम एआई के संस्थापक डॉ. प्रत्युष कुमार, कल्याण मुत्तुराजन और प्रो. राहुल गर्ग (IIT दिल्ली) ए.आई. और चेतना के विषयों पर चर्चा की। अद्वैत एवं वैश्विक शांति विषय पर स्वामी परमात्मानंद सरस्वती, प्रो.प्रियंकर उपाध्याय एवं नीमा मजूमदार संवाद किया। इसी दिन सत्त्व, रज, तम कार्यशाला में मानव स्वभाव के गुणों पर आधारित विशेष सत्र में स्वामी वेदतत्त्वानंद पुरी एवं विशाल चौरसिया का संवाद सत्र हुआ। वहीं 'एक भारत: आचार्य शंकर के पदचिह्नों पर' आयोजित सत्र में अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल

भारत सरकार के अति. सॉलिसिटर जनरल एन. वेंकटरामन ने अपने वक्तव्य में जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के अद्वितीय योगदान को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि शंकराचार्य ने भारत की आध्यात्मिक और धार्मिक परंपराओं को न केवल व्यवस्थित किया, बल्कि उन्हें एक अखंड धारा के रूप में प्रवाहित भी किया। मंदिर परंपरा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि शंकराचार्य ने दिशाओं के आधार पर नहीं, बल्कि स्थानों की उपयोगिता के अनुसार मंदिर व्यवस्था विकसित की। उन्होंने ऐसी पूजा-पद्धतियाँ स्थापित कीं, जो आज भी पूरे देश में समान रूप से प्रचलित हैं। उदाहरणस्वरूप, उज्जैन के महाकालेश्वर मंदिर की प्रातःकालीन भस्म आरती और तिरुपति बालाजी की सुप्रभात सेवा आज भी उसी अनुशासन और विधि का पालन करती हैं। वेंकटरामन ने इसे भारत की प्राचीन “स्टैंडर्ड ऑपरेटिंग प्रोसीजर” की परंपरा बताया, जो सदियों से अक्षुण्ण बनी हुई है।

चतुर्थ दिवस में चिन्मय मिशन पर आयोजित सत्र में स्वामिनी विमलानंद सरस्वती ने कहा कि आदि शंकराचार्य ने अद्वैत की समृद्ध परंपरा स्थापित की, जबकि स्वामी चिन्मयानंद ने उसे जन-जन तक पहुँचाने का सशक्त कार्य किया। उन्होंने कहा कि आज देश में जब भी वेदांत की चर्चा होती है, तो उसका केंद्र अद्वैत ही होता है, और इसकी व्यापक स्वीकृति में चिन्मयानंद के प्रयासों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अद्वैत कोई वाद नहीं है, क्योंकि वाद का प्रतिवाद होता है, जबकि अद्वैत एक निर्विवाद सत्य है। चिन्मयानंद जटिल सिद्धांतों को भी इतनी सरल भाषा में समझाते थे कि बच्चे भी उसे सहजता से समझ सकें। एक प्रसंग साझा करते हुए उन्होंने बताया कि जब एक सभा में उनसे पूछा गया “क्या भगवान हैं? और यदि हैं तो वे कृष्ण हैं, राम हैं या कोई और?” तो उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया, “हैं भगवान, आप श्रोताओं के बीच बैठकर मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हैं?” यह उनके दृष्टिकोण की गहराई और सहजता को दर्शाता है। उन्होंने कहा कि बाहरी गुरु का उद्देश्य भीतर के गुरु को जागृत करना होता है, और

गुरु को केवल व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि गुरु-तत्त्व के रूप में समझना आवश्यक है।

स्वामी अद्वैतानंद ने चिन्मय मिशन के जनकल्याण कार्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि भारत को केवल कृषि प्रधान देश कहना पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह 'ऋषि प्रधान देश' है। उन्होंने बताया कि चिन्मयानंद ने स्वामी शिवानंद से प्रेरित होकर 100 विवेकानंद तैयार करने का संकल्प लिया और इसी उद्देश्य से चिन्मय मिशन की स्थापना की। आज मिशन के 75 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं और इसके 300 से अधिक केंद्र 25 से ज्यादा देशों में सक्रिय हैं।

एकात्म पर्व का समापन

वैशाख शुक्ल पंचमी 21 अप्रैल को आचार्य शंकर प्रकटोत्सव के अवसर पर जूनाअखाड़ा के आचार्य महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरि, चिन्मय मिशन के पूर्व वैश्विक प्रमुख स्वामी तेजोमयानंद सरस्वती, पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री मध्यप्रदेश शासन धर्मेंद्र सिंह लोधी, दक्षिणामूर्ति मठ के प्रमुख स्वामी पूर्णानंद गिरी, माँ पूर्ण प्रज्ञा, प्रख्यात शिक्षाविद् गौतम भाई पटेल, महंत मंगलदास त्यागी तथा वेंकटेश्वर वेद विज्ञान पीठम् के प्राचार्य ब्रह्मर्षि कुप्प शिव सुब्रमण्यम अवधानी की गरिमामयी उपस्थिति में हुआ।

वैशाख शुक्ल पंचमी पर जूनापीठाधीश्वर आचार्य महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरि एवं अन्य संतों की उपस्थिति में नर्मदा तट पर आयोजित दीक्षा समारोह में देश-विदेश के 700 से अधिक युवा 'शंकरदूत' के रूप में दीक्षित हुए।

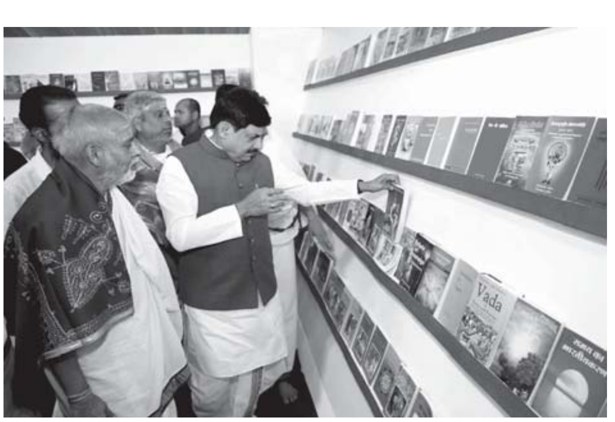

स्वामी अवधेशानंद गिरि ने अपने वक्तव्य में एकात्मता के वैश्विक संदेश को प्रसारित करने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि अब समय आ गया है जब शंकरदूत केवल भारत तक सीमित न रहें, बल्कि आचार्य शंकर भगवत्पाद का संदेश लेकर विश्व के प्रत्येक कोने तक पहुँचें। उन्होंने स्वीकार किया कि अब तक हम अपने धर्म और दर्शन का वैश्विक स्तर पर पर्याप्त प्रचार-प्रसार नहीं कर सके, परंतु अब यह सीमा तोड़ने का समय है। उन्होंने आचार्य शंकर के योगदान की तुलना द्वापर युग के वेदव्यास से करते हुए कहा कि जिस प्रकार वेदव्यास ने ज्ञान को व्यवस्थित किया, उसी प्रकार शंकराचार्य ने उसे पुनर्जीवित कर समाज तक पहुँचाया। कार्यक्रम में वीडियो माध्यम से जगद्गुरु श्रृंगेरी शंकराचार्य विधुशेखर भारती के आशीर्वचन भी प्राप्त हुए, उन्होंने कहा की ऐसे प्रकल्पों की आज अत्यंत आवश्यकता है, जो आदि शंकराचार्य के विचारों को वैश्विक स्तर तक पहुँचाएं। शंकराचार्य ने पूरे भारत को एक सूत्र में बाँधने के लिए चारों दिशाओं में आम्नाय पीठों की स्थापना की, जहाँ से एकता और अद्वैत का संदेश प्रसारित हुआ। आज उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ऐसे प्रयास जरूरी हैं, जो उनके दर्शन को जन-जीवन में स्थापित करें और विश्व पटल पर प्रभावी रूप से प्रस्तुत करें।

बीज वक्तव्य में स्वामी तेजोमयानंद सरस्वती ने अपने विचार रखते हुए कहा कि यदि शंकराचार्य का प्राकट्य न हुआ होता, तो ज्ञान अज्ञान के अंधकार में ही डूबा रहता। **"प्रकट न होते श्री शंकर तो, तमस में रहता ज्ञान, उनकी कृपा हो हम सब पर ही, और रहे कृपा का भान।"** यह संबोधन अद्वैत की गहराई को उजागर करने के साथ-साथ जीवन में एकत्व की भावना को अपनाने का संदेश देता है। अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए धर्मेंद्र सिंह लोधी ने कहा कि आज का दिन केवल उत्सव नहीं, भारत की पारंपरिक चेतना के पुनर्जागरण का अवसर है। मात्र 12 वर्ष की आयु में सभी शास्त्रों में पारंगत होना ,उनके ईश्वरीय स्वरूप का प्रमाण है। जब वह संन्यासी होकर निकले तो उनके दिव्य चरण यहीं ओंकारेश्वर की धरती पर आ पहुंचे। नर्मदा के तट पर जब गोविन्द भगवत्पाद ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो तो उन्होंने जवाब में कहा "चिदानंद रूपः, शिवोहम शिवोहम"। उन्होंने कहा कि एकात्म धाम को मप्र शासन द्वारा एकात्मता के वैश्विक केंद्र के रूप में विकसित करते हुए 2400 करोड़ की लागत से एकात्म धाम का निर्माण किया जा रहा है। वहीं स्वामी पूर्णानंद गिरि, प्रमुख, दक्षिणामूर्ति मठ, वाराणसी ने अद्वैत वेदांत की परंपरा और उसके साधना पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहा कि जब वर्तमान समय में पूरी दुनिया विनाश की कगार पर खड़ी है तब भी भारत विश्व में सुख और शांति का अनुभव कर रहा है। यह शंकराचार्य जैसे महान संतों के चरण विन्यास और उनके प्रभाव का ही फल है कि इस भूमि ने पवित्रता प्राप्त की है,और आज के समय में भी हम शांति की अनुभूति कर रहे हैं जो कोई साधारण बात नहीं है। स्वामिनी सद्विद्यानंद सरस्वती ने सभी सत्रों का सार प्रस्तुत करते हुए अद्वैत की समृद्ध परंपरा और विभिन्न संप्रदायों के योगदान को रेखांकित किया।

माँ पूर्णप्रज्ञा, आवासीय आचार्य, आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास ने कहा कि शंकराचार्य का जीवन केवल ज्ञान अर्जन तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने समाज में एकता, धर्म और आध्यात्मिक जागरूकता का संदेश भी फैलाया। उनका संपूर्ण जीवन त्याग, तपस्या और मानव कल्याण के लिए समर्पित रहा, जो आज भी करोड़ों लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

अद्वैत के आलोक स्तंभों का सम्मान

इस अवसर पर शैक्षणिक जगत की दो प्रखर विभूतियों को सम्मानित किया गया जिसमे चिन्मय मिशन के पूर्व प्रमुख स्वामी तेजोमयानंद जी को उनकी अखंड अद्वैत निष्ठा के लिए सम्मानित किया गया। पद्म भूषण से विभूषित स्वामी तेजोमयानंद सरस्वती ने 'उपनिषद गंगा' और विभिन्न ग्रंथों की व्याख्या के माध्यम से वेदांत को जन-जन तक पहुँचाया है। साथ ही प्रख्यात विद्वान प्रोफेसर गौतम भाई पटेल को संस्कृत वांग्मय और अद्वैत दर्शन में उनके अतुलनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया। प्रो. पटेल ने आचार्य शंकर की संपूर्ण कृतियों का पहली बार गुजराती भाषा में अनुवाद किया। साथ ही पंच दिवसीय एकात्म पर्व में वैदिक अनुष्ठान एवं श्रौत कर्मानुष्ठान हेतु हैदराबाद से पधारे परम पूज्य ज्येष्ठ ब्रह्मश्री वेदमूर्ति कुप्पा रामगोपाल वाजपेय तथा उनकी धर्मपत्नी कुप्पा कल्पकाम्बा सोमपीठनी को श्रुति परम्परा एवं वैदिक अनुष्ठान के प्रति उनके अपार समर्पण के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए न्यास द्वारा उन्हें आदिगुरु शंकराचार्य की प्रतिमा, जूना अखाड़ा के महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरी द्वारा भेंट स्वरूप प्रदान की गई।

वेदों से गुंजित हुआ एकात्म धाम

पांच दिवसीय एकात्म पर्व में प्रतिदिन सूर्य की किरणों के प्रस्फुटित होने के साथ ही नर्मदा के तट पर स्थित मांधाता पर्वत पर वैदिक अनुष्ठान एवं पारायण के मंत्रोच्चार से समृद्ध हुआ। यह अद्भुत वातावरण वेद मंत्रों से गुंजायमान है। वेद की नौ शाखाओं के पारायण से स्पंदित यह एकात्म पर्व आध्यात्मिक ऊर्जा का केंद्र बना हुआ है। वेंकटेश्वर वेद विज्ञान पीठ तिरुमला से पधारे आचार्य श्री कोपाशिव सुब्रमण्यम अबधानी के मार्गदर्शन में देशभर से आए श्रुति परंपरा के प्रकांड विद्वानों ने वैदिक अनुष्ठान, भाष्य पारायण, एवं चतुर्वेद की नव शाखाओं का पारायण किया।

ऋग्वेद की शाकल शाखा, **यजुर्वेद** की काण्व शाखा एवं माध्यंदिन शाखा, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा, **सामवेद** की कौथुम, जैमिनीय और राणायनीय शाखाओं के साथ ही अथर्ववेद की शौनक शाखा एवं पैप्पलाद शाखा का पाठ भी हुआ।

वेद की नौ शाखाओं का पारायण एक कठिन साधना है। इन नौ शाखाओं का पारायण बहुधा दक्षिण भारत में होता है। वेद की विभिन्न शाखाओं के पारायण का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक, मानसिक और लौकिक कल्याण है। पंच दिवसीय एकात्म पर्व भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने का दिव्य आयोजन रहा।

सांस्कृतिक प्रस्तुतियों से जीवंत हुआ आचार्य शंकर का दर्शन

पुण्य सलिला नर्मदा के तट पर आयोजित 'एकात्म पर्व' में आध्यात्मिक चेतना और कला का अद्भुत संगम देखने को मिला। कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण वे सांस्कृतिक प्रस्तुतियां रहीं, जिन्होंने आदि गुरु शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन और उनकी कालजयी रचनाओं को मंच पर जीवंत कर दिया।

आचार्य शंकर ने प्रकृति को ईश्वर का स्वरूप माना था। उन्होंने नदियों की दिव्यता को रेखांकित करते हुए गंगा, यमुना और नर्मदा पर कई स्तोत्रों की रचना की। कार्यक्रम में यह तथ्य प्रमुखता से उभरा कि हजारों वर्ष पूर्व, मात्र आठ वर्ष की अल्पायु में आचार्य शंकर ने ओंकारेश्वर की इसी पावन भूमि पर 'नर्मदाष्टकम्' की रचना की थी।

आज भी "त्वदीय पाद पंकजम्, नमामि देवी नर्मदे" के स्वर करोड़ों लोगों के कंठ में गूँजते हैं। इसी तरह, जब वे गंगा के तट पर पहुँचे, तो उन्होंने "देवी सुरेश्वरी भगवती गंगे" के माध्यम से गंगा की अलौकिकता का गान किया। ये स्तोत्र आज के समय में भी पर्यावरण संरक्षण और आध्यात्मिक शांति के लिए हम सभी के लिए प्रेरणा पुंज बने हुए हैं। प्रतिदिन शंकरदूतों द्वारा आचार्य शंकर विरचित स्तोत्रों का गायन भी किया गया।

सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में देश के प्रमुख कलाकारों की प्रस्तुति, सांस्कृतिक संध्या: 'रसो वै स: में गूंजे एकात्मता के स्वर

- **17 अप्रैल:** श्री जयतीर्थ मेवुंडी का शास्त्रीय गायन और शुभदा वराडकर की ओड़िसी प्रस्तुति 'एकम्'।
- **18 अप्रैल:** सुश्री जसलीन कौर की गुरु वाणी और डॉ. पद्मजा सुरेश का भरतनाट्यम 'शक्ति'।
- **19 अप्रैल:** पार्वती बाउल का 'मोनेर मानुष' और रमा वैद्यनाथन का भरतनाट्यम 'नमामि देवी'।
- **20 अप्रैल:** लता सिंह मुंशी का भरतनाट्यम और एस. ऐश्वर्या - सौंदर्या का कर्नाटक संगीत 'शिवोऽहम्'।

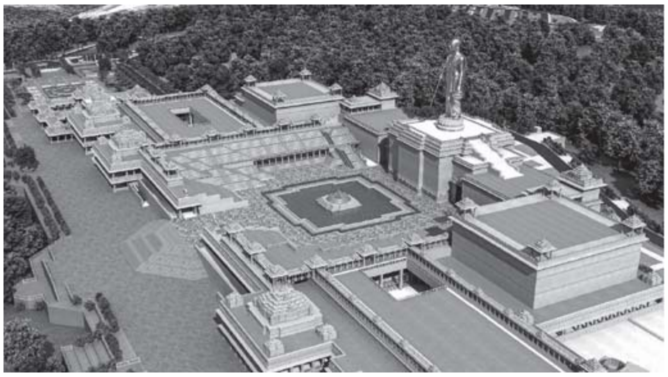

- **21 अप्रैल:** अभय घाट पर पद्मश्री हेमंत चौहान की 'निर्गुण वाणी' और मणिपुर नृत्य की प्रस्तुति।

विश्वभर से जिज्ञासु कर रहे अद्वैत जागरण शिविर के लिए पंजीयन

वेदांत दर्शन और आध्यात्मिक विरासत को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अभिनव पहल कर रही है। देश-विदेश के 18 से 32 आयु वर्ष के युवाओं एवं 32 वर्ष से अधिक आयु के नागरिकों के लिए 'अद्वैत वेदांत' के गहन अध्ययन और अनुभव हेतु न्यास द्वारा नियमित देश के विभिन्न आश्रमों एवं संस्थानों में प्रतिष्ठित आचार्यों के मार्गदर्शन में अद्वैत जागरण शिविर (Advaita Awakening Retreat) शिविरों का आयोजन किया जा रहा है।

इन शिविरों में देश-विदेश के युवा एवं नागरिक बड़ी संख्या में सम्मिलित हो रहे है। वर्ष 2020 से शुरू हुए इन शिविरों में अभी तक स्पेन, इंडोनेशिया, नीदरलैंड, बांग्लादेश, टर्की, नेपाल, अमेरिका एवं भारत के 25 से अधिक राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों के आईआईटीइन / प्रोफेसर्स/ प्रोफेशनल्स/डॉक्टर्स /आर्टिस्ट / वैज्ञानिक /आर्मी ऑफिसर्स/ प्रशासनिक अधिकारी /शोधार्थी सहित 1800 से अधिक युवा एवं जिज्ञासु सहभागिता कर चुके है।

अभी तक कुल 45 नियमित शिविर तथा 03 एडवांस्ड शिविरों का आयोजन हो चुका है, जिसमें लगभग 1800 से अधिक शंकरदूत तैयार हुए हैं। पंचम दीक्षा समारोह में देश-विदेश से लगभग 700 शिविरार्थियों को शंकरदूत के रूप में दीक्षा दी गई।

एकात्म धाम: एकात्मता का वैश्विक केंद्र

ज्ञात हो कि आचार्य शंकर ने भारतवर्ष का भ्रमण कर सम्पूर्ण राष्ट्र को सार्वभौमिक एकात्मता से आलोकित किया। अद्वैत वेदान्त दर्शन के शिरोमणि, सनातन वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक एवं सांस्कृतिक एकता के देवदूत श्री शंकर भगवत्पाद का जीवन एवं दर्शन अनंत वर्षों तक संपूर्ण विश्व का पाथेय बने, इस संकल्प के साथ आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास, मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग आचार्य की संन्यास एवं ज्ञान भूमि 'ओंकारेश्वर' में भव्य एवं दिव्य 'एकात्म धाम' के निर्माण के लिए संकल्पित है।

एकात्मधाम के अंतर्गत प्रथम चरण में आचार्य शंकर की 108 फीट की 'एकात्मता की मूर्ति' (स्टैचू ऑफ़ वननेस) की स्थापना की गई है। वहीं **द्वितीय चरण में 2400 करोड़ रुपए की लागत से आचार्य शंकर के जीवन और दर्शन पर केंद्रित अद्वैत लोक संग्रहालय का निर्माण किया जा रहा है।**

रिपोर्ट : डॉ. शुभम चौहान, सहायक निदेशक (9399783182)

वाकणकर स्मृति दिवस आयोजन में कला समय का 139वाँ विशेषांक रूपंकर समकालीन दृश्यकला (भाग-1) का लोकार्पण

पुरातत्व क्षेत्र में स्टार्टअप्स और इनक्यूबेशन सेंटर की आवश्यकता

डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर की पुण्यतिथि पर डॉ. वाकणकर पुरातत्व शोध संस्थान द्वारा व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में आयुक्त, पुरातत्व, अभिलेखागार एवं संग्रहालय मदन कुमार ने प्रदेश की प्राचीन धरोहरों के संरक्षण में नई तकनीक और स्टार्टअप्स की भूमिका पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि पुरासंपदा को सुरक्षित रखने के लिए इनक्यूबेशन सेंटर स्थापित करना समय की मांग है। कार्यक्रम में डॉ. नारायण व्यास और कैलाश चंद्र पाण्डे ने वाकणकर के पुरातत्व क्षेत्र में योगदान को रेखांकित करते हुए उनके साथ जुड़े अनुभव साझा किए। वक्ताओं ने भीमबैठका शैलचित्रों की खोज और मालवा क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षण कार्यों का उल्लेख किया। इस अवसर पर डॉ. नारायण व्यास और कैलाश चंद्र पाण्डे को सम्मानित किया गया। साथ ही 'द मोनूमेंट मैन' फिल्म के ट्रेलर और **'कला समय' पत्रिका** के विशेषांक का विमोचन भी किया गया। कार्यक्रम में पुरातत्व विभाग के अधिकारी, शोधकर्ता, प्राध्यापक और छात्र उपस्थित रहे। ■

समवेत

ध्रुपद की गूढ़ साधना और स्वर-अनुशासन का मिला प्रशिक्षण
चार दिवसीय कार्यशाला सम्पन्न

भातखण्डे संस्कृति विश्वविद्यालय, लखनऊ में पंडित विष्णु नारायण भातखंडे पीठ के अंतर्गत गायन विभाग द्वारा आयोजित चार दिवसीय ध्रुपद कार्यशाला का समापन अत्यंत गरिमामय, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायक वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस कार्यशाला में विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा संगीत प्रेमियों को ध्रुपद गायन की पारम्परिक साधना, उसके सैद्धान्तिक आधार और व्यावहारिक प्रस्तुति से गहराई से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

कार्यशाला के समापन अवसर पर विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो० मांडवी सिंह की गरिमामयी उपस्थिति रही। इस अवसर पर गायन विभागाध्यक्ष प्रो. सृष्टि माथुर, तालवाद्य विभागाध्यक्ष डॉ. मनोज कुमार मिश्र, सहायक आचार्य (नृत्य) डॉ. रुचि खरे सहित विश्वविद्यालय के शिक्षकगण, शोधार्थी एवं बड़ी संख्या में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता रही।

ध्रुपद की चार दिवसीय कार्यशाला के अंतर्गत विशेषज्ञ विदुषी प्रो० मधु भट्ट तैलंग ने शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों को ध्रुपद गायन की परम्परागत शैली, स्वर-साधना, आलाप की संरचना, ताल-व्यवस्था तथा रियाज़ की अनुशासित पद्धति के विविध आयामों का सप्रयोग प्रशिक्षण प्रदान किया। उन्होंने ध्रुपद की गम्भीरता, स्वर की शुद्धता तथा साधना की निरन्तरता के महत्व पर विशेष बल देते हुए विद्यार्थियों को इसके सूक्ष्म एवं गूढ़ पक्षों से अवगत कराया। प्रशिक्षण सत्र के दौरान विद्यार्थियों ने अत्यंत उत्साह एवं समर्पण के साथ भाग लेते हुए ध्रुपद की पारम्परिक प्रस्तुति शैली का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किया।

विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. मांडवी सिंह ने कहा कि ध्रुपद भारतीय शास्त्रीय संगीत की अत्यंत प्राचीन और गरिमामयी परम्परा है, जो हमारी सांगीतिक संस्कृति की गहराई और आध्यात्मिकता का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने इस कार्यशाला के सफल संपन्नता हेतु विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित विदुषी प्रो. मधु भट्ट तैलंग के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हुए कहा कि उनके गहन ज्ञान, अनुभव एवं सप्रयोग प्रशिक्षण से विद्यार्थियों को ध्रुपद की परम्परा को समझने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि इस प्रकार के प्रशिक्षण सत्र विद्यार्थियों की सांगीतिक साधना को नई दिशा प्रदान करेंगे।

विश्वविद्यालय की कुलसचिव डॉ. सृष्टि धवन ने अपने वक्तव्य में कहा कि विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित ऐसी शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि ध्रुपद जैसी प्राचीन गायन परम्परा को नई पीढ़ी तक पहुँचाने तथा उसके प्रति रुचि जागृत करने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय भविष्य में भी इस प्रकार के आयोजन निरंतर करता रहेगा।

कार्यशाला के समापन अवसर पर प्रतिभागियों ने अपने अनुभव साझा करते हुए इसे अत्यंत उपयोगी, प्रेरणादायक और ज्ञानवर्धक बताया। इस आयोजन के माध्यम से विद्यार्थियों को भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीन ध्रुपद परम्परा को समझने तथा अपनी साधना को और अधिक सुदृढ़ करने की प्रेरणा प्राप्त हुई।- (डॉ. सृष्टि धवन) कुलसचिव

बनारस के अंतर्राष्ट्रीय ध्रुपद मेले में विदुषी मधु भट्ट तैलंग की स्वर वर्षा

तुलसी घाट पर आयोजित 52वें अंतर्राष्ट्रीय ध्रुपद मेले की संगीत - सभा जयपुर की सुविख्यात ध्रुपद गायिका डॉ. मधु भट्ट तैलंग के नाम रही।

महाराजा बनारस विद्या मंदिर न्यास द्वारा आयोजित इस प्रतिष्ठित महोत्सव में डॉ. तैलंग ने अपनी गायकी से न केवल परंपरा का निर्वाह किया बल्कि अपनी शोधात्मक रचनाओं से विद्वानों को भी चकित कर दिया।

डॉ. मधु भट्ट ने कार्यक्रम का शुभारंभ अपने पूज्य पिता और गुरु पद्मश्री लक्ष्मण भट्ट तैलंग द्वारा सृजित राग 'जोगश्री' से किया। उन्होंने विलंबित आलाप के माध्यम से गंगा और शिव की महिमा का बखान कर पूरे वातावरण को शिवमय बना दिया। ध्रुपद के चारों चरणों (स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग) के विस्तार के बाद उन्होंने होरी धमार में "आज नंदलाल खेलत होरी" पेश की, जिसमें बोलबाँट और तिहाइयों की अद्भुत कलाकारी देखने को मिली। महेश्वर सूत्रों पर आधारित विशेष प्रस्तुति कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण राग शिवरंजनी में प्रस्तुत उनकी शोधात्मक रचना रही। उन्होंने शिव के नाम पर आधारित प्राचीन व अप्रचलित रुद्र ताल में 14 महेश्वर सूत्रों पर आधारित "नृत्यावसाने नटराज राजो" का गायन किया। इसके पश्चात् सूलताल में निबद्ध स्वरचित रचना "जोगी महादेव" को विभिन्न लयों में प्रस्तुत करते हुए जब वे अति द्रुत लय पर पहुँचीं, तो पूरा पंडाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

इस अवसर पर काशी - नरेश श्री अनंत विभूति नारायण सिंह जी विशेष रूप से उपस्थित रहे और कलाकारों का उत्साहवर्धन किया। संगतकारों में पखावज पर डॉ. अंकित पारिख एवं सारंगी पर विदुषी गौरी बनर्जी ने अपनी सधी हुई उंगलियों से गायन को पूर्णता प्रदान की।

डॉ. मधु भट्ट तैलंग को अहमदाबाद में आचार्यगोपीनाथ विद्वद् सम्मान

देश की वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका आकाशवाणी की टॉप ग्रेड ध्रुवपद गायिका विदुषी प्रोफेसर मधु भट्ट तैलंग ने दिनांक 20 अप्रैल को अहमदाबाद में आयोजित अखिल भारतीय अखण्ड भक्ति ज्योति रसोत्सव दया पर्व में लगभग 3 घंटे ध्रुवपद-धमार गायन की विविध प्रस्तुतियों की

अखण्ड ज्योत जलाई। गोस्वामी हवेली द्वारा वाग्गेयकार संगीतज्ञ आचार्य रणछोड़लाल जी के संयोजन में आयोजित समारोह में डॉ. मधु को आचार्य गोपीनाथ विद्वद् सम्मान से सम्मानित किया गया। यह सम्मान समारोह के विशिष्ट अतिथि राजकोट दूरदर्शन के पूर्व निदेशक एवं आगरा घराने के गायक श्वेतकेतु बोरा, मुख्य अतिथि प्रोफेसर विराज अमर, आभरणाचार्य एवं गुजराती फ़िल्म के कलाकार द्वारा प्रदान कर शॉल, नारियल ,नकद राशि, प्रशंसा पत्र से अलंकृत किया गया।ध्रुवपदाचार्य पद्मश्री लक्ष्मण भट्ट तैलंग की शिष्या डॉ. मधु ने राग मालगुंजी,जोगश्री में विस्तृत आलाप, एवं अपने गुरु द्वारा निर्मित एवं कुम्भनदास और स्वयं रचित ध्रुवपद धमार की विविध रचनाओं को प्रस्तुत किया जिसमें पखावज पर मथुरा के डॉ. अंकित पारिख एवं सूरत के अर्पित ने सारंगी पर संगत की। अंत में मधु ने मल्हार के 34 प्रकारों की रागमालाओं को एक ही रचना में पिरोकर नवाचार प्रस्तुत कर सभी को विस्मित एवं अभिभूत कर दिया।

विरासतों को बचाना है तो भविष्य की भावी पीढ़ी को बताना होगा - प्रख्यात पुरातत्व विद्वान एवं इतिहासकार श्री पाण्डेय

विबोध प्रीस्कूल के बच्चों ने पुरातत्व संग्रहालय भ्रमण किया

मन्दसौर। छोटे-छोटे बच्चों में बड़ी जिज्ञासा होती है और उसके बारे में सही जानकारी दी जाए तो जीवन में उपयोगी सिद्ध होती है इसी कड़ी में अभिनन्दन नगर स्थित विबोध प्रीस्कूल के स्कूली बच्चों से संवाद करते हुए राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त पुरातत्व विद्वान एवं इतिहासकार श्री कैलाश चन्द्र पाण्डेय ने

मंदसौर के यशोधर्मन पुरातत्व संग्रहालय भ्रमण करने पहुंचे बच्चों एवं स्टॉफ को जानकारी दी।

उत्साहित बच्चों ने पुरातत्व संग्रहालय विजिट में गुप्त कालीन, परमार कालीन, पिछली शताब्दियों से संरक्षित और संग्रहित प्रतिमाओं को देखा और जिज्ञासा के साथ सवाल भी किए।

शिक्षाविद एवं पुरावेत्ता श्री पाण्डेय ने स्वयं स्कूली बच्चों को संग्रहालय में स्थापित प्रतिमाओं से रूबरू कराया।

बच्चों ने देवी देवताओं की मूर्तियों के साथ गणेश, पार्वती, शिव, हनुमान, विष्णु , महावीर आदि प्रतिमाओं को पहचाना ओर प्रश्न पूछे , इनके साथ संग्रहालय के पूर्व सहायक संग्रहाध्यक्ष श्री जगदीश प्रसाद शर्मा ने भी अपनी जानकारी बच्चों एवं स्टॉफ को दी।

श्री पाण्डेय ने सन्तोष व्यक्त किया कि विबोध प्रीस्कूल का यह अभिनंदनीय प्रयास है क्योंकि हमारे देश की संस्कृति और विरासतों को बचाना है तो नन्हे-मुन्नों जो हमारा भविष्य है को बताना ही होगा। देखेंगे तो जानेंगे और जानेंगे तभी समझेंगे।

बच्चों और युवाओं को इतिहास , पुरातत्व और संस्कृति के माध्यम से देश के प्रति मजबूती से जोड़ा जा सकता है।

इस मौके पर श्री शर्मा ने बताया कि 1997 में तत्कालीन पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री डॉ. विजय लक्ष्मी साधो ने संग्रहालय का लोकार्पण किया , सुरक्षित और खंडित सदियों के कालखंड को प्रदर्शित करती प्रतिमाएं इतिहास बताती है जो महत्वपूर्ण है।

इसके पूर्व विबोध प्रीस्कूल प्रिंसीपल डॉ. श्रुति बटवाल ने अतिथियों का स्वागत किया और बताया कि हमारा ध्येय है कि सभी विशिष्ट पहचान क्षेत्रों तक स्कूल बच्चों को लेकर जाएं और ज्ञानवर्धन कराएं। ऐसे ही हम बैंक , पोस्ट ऑफिस , हॉस्पिटल , यातायात विभाग , रेलवे स्टेशन , तेलिया तालाब , दशपुर कुंज , रेडक्रॉस सोसाइटी , स्टेडियम , शोपिंग मॉल आदि स्थानों पर विजिट कराई है और इसके बारे जानकारी भी दे रहे हैं इसके बच्चों की लर्निंग में वृद्धि हुई है।

विबोध प्रीस्कूल स्टॉफ के साथ संग्रहालय केयर टेकर श्री रामेश्वर मेघवाल , श्री चतुर्वेदी , डॉ घनश्याम बटवाल , विक्रम सिंह सिसोदिया , भूमिका राठौर महेश चंद्र सहित अन्य प्रमुख उपस्थित रहे।

- मंदसौर से डॉ. घनश्याम बटवाल की रिपोर्ट

पूर्व कुलगुरु श्री अच्युतानंद मिश्र का सप्रे संग्रहालय भ्रमण

देश के वरिष्ठ पत्रकार एवं संपादक तथा माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के पूर्व कुलगुरु श्री अच्युतानंद मिश्र, विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलगुरु प्रोफेसर विजय मनोहर तिवारी, सप्रे संग्रहालय के संस्थापक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर, प्रोफेसर संजय द्विवेदी, स्वदेश अखबार के प्रधान संपादक श्री राजेंद्र शर्मा, दत्तोपंत ठेंगड़ी शोध संस्थान के निदेशक श्री मुकेश कुमार मिश्र तथा एकात्म धाम के न्यासी सचिव श्री मनीष पांडे के साथ ज्ञानतीर्थ माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय में भ्रमण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।इस अवसर पर सप्रे संग्रहालय के संस्थापक श्री विजयदत्त श्रीधर जी ने संग्रहालय में उपलब्ध विपुल ज्ञान-संपदा तथा वहाँ संरक्षित ऐतिहासिक सामग्री के संबंध में विस्तृत जानकारी प्रदान की।

कला समय प्रकाशन

संपादन
भँवरलाल श्रीवास

मूल्यः
रु. 300

'कला समय' के प्रकाशित विशेषांकों की श्रृंखला में पहली पुस्तक
'हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक और घरानेदार गायकी'
प्रकाशित ...।

कला समय प्रकाशन

कला समय प्रकाशन की नई प्रकाशित कृति

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आस्था का दिव्य महाकुंभ
पूरा विश्व देखेगा
उज्जैन का वैभव
नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री
30 करोड़ श्रद्धालुओं का स्वागत
उज्जैन नगरी का हो रहा अभूतपूर्व कायाकल्प
सुगम आवागमन ₹ 13,536 करोड़ से 581 कि.मी. मार्गों का चौड़ीकरण एवं निर्माण कार्य प्रगतिरत
पुल निर्माण ₹440 करोड़ के निर्माण से यातायात का बेहतर प्रबंधन
शुद्ध जल क्षिप्रा के लिये ₹ 919 करोड़ लागत की कान्ह क्लोज्ड डक्ट परियोजना एवं शहर में पेयजल आपूर्ति हेतु ₹1113 करोड़ के कार्य जारी
घाट निर्माण लगभग 29 कि.मी. घाटों का निर्माण जारी
ज़ीरो वेस्ट इवेंट जन भागीदारी से ज़ीरो वेस्ट इवेंट बनाने की पहल
मंदिरों का जीर्णोद्धार
सभी पौराणिक मंदिर जैसे हरसिद्धि, गढ़कालिका का विकास
आधुनिक तकनीक से प्रबंधन
भीड़ नियंत्रण से लेकर ट्रांसपोर्ट और कंट्रोल रूम तक एआई का उपयोग
कनेक्टिविटी विश्वस्तरीय उज्जैन हवाई अड्डा और सदावल में 4 हेलीपैड का निर्माण कार्य जारी
उज्जैन बनेगा मेडिकल हब
₹ 592.30 करोड़ लागत से मेडिसिटी एवं मेडिकल कॉलेज निर्माणाधीन
सिंहस्थ 2028
सिंहस्थ महापर्व 2028 करोड़ों भक्तों को सरल, सुलभ और नवीनतम सुविधाओं से युक्त विश्व-स्तरीय कुंभ का अनुभव प्रदान करना हमारा संकल्प है।
- डॉ. मोहन यादव
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
D19030/26

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक: भँवरलाल श्रीवास